प्रश्न पत्र -3 (MHIN 103)
हिन्दी नाटक एवं उपन्यास

समय - तीन घंटे **पूर्णांक : 80 (पत्राचार एवं रेगुलर परीक्षार्थी)** **पूर्णांक : 100 (प्राईवेट परीक्षार्थी)**

इस पाठ्यक्रम के अंतर्गत दो नाटकों तथा दो उपन्यासों का अध्ययन किया जाएगा।

पाठ्य विषय

व्याख्या एवं विवेचन के लिए निर्धारित

खण्ड-1

1. चन्द्रगुप्त : जयशंकर प्रसाद

पाठ्य पुस्तक : चंद्रगुप्त (नाटक), जयशंकर प्रसाद, भारतीय भंडार, इलाहाबाद।

खण्ड-2

2. अंधा युग : धर्मवीर भारती

पाठ्य पुस्तक : अंधा युग (नाटक), धर्मवीर भारती, स्वराज प्रकाशन दिल्ली।

खण्ड-3

3. गोदान : प्रेमचंद

पाठ्य पुस्तक : गोदान (उपन्यास), प्रेमचन्द, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद।

खण्ड-4

4. मैला आंचल : फणीश्वरनाथ रेणु।

पाठ्यक्रम पुस्तक : मैला आंचल (उपन्यास), फणीश्वर नाथ रेणू, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

आवश्यक निर्देश :

1. निर्धारित पाठ्यक्रम के आधार पर प्रत्येक खण्ड में से दो व्याख्याएं पूछी जाएंगी जिनमें से एक को व्याख्यायित करना अनिवार्य होगा।
2. निर्धारित पाठ्यक्रम के आधार पर प्रत्येक खण्ड में से दो आलोचनात्मक प्रश्न पूछे जाएंगे जिनमें से एक का उत्तर देना अनिवार्य होगा।
3. पूरे पाठ्यक्रम पर आठ अति लघुत्तरी प्रश्न पूछे जायेंगे जिनमें से आठ के ही उत्तर देने होंगे।

अंक विभाजन

चार व्याख्याएं 4 X 9 = 36 अंक, चार आलोचनात्मक प्रश्न 4 X 13 = 52 अंक

अतिलघुत्तरी प्रश्न 6 X 2 = 12 अंक। (प्राईवेट परीक्षार्थी) कुल अंक : 100

चार व्याख्याएं 4 X 7 28 अंक, चार आलोचनात्मक प्रश्न 4 X 10 = 40 अंक

अतिलघुत्तरी प्रश्न 6 X 2 = 12 अंक। (रेगुलर एवं पत्राचार परीक्षार्थी) कुल अंक : 80

अनुशंसित पुस्तकें

1. कुमार कृष्ण, हिन्दी कथा साहित्य : परख और पहचान, विभूति प्रकाशन, दिल्ली।

2. रामविलास शर्मा, प्रेमचन्द और उनका युग, राजकमल प्रकाशन दिल्ली।
3. राजेश्वर गुरु, प्रेमचंद एक अध्ययन, मध्य प्रदेश प्रकाशन समिति, भोपाल।
4 अशोक कुमार आलोक (सं.) फणीश्वरनाथ रेणू : रचना और सन्दर्भ, आधार प्रकाशन, पंचकूला।
5. हरिशंकर जी, फणीश्वरनाथ रेनू : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, विकास प्रकाशन।
6. गोविन्द चातक, प्रसाद के नाटक : स्वरूप और संरचना, साहित्य भारतीय, दिल्ली
7. डॉ. सरिता शुक्ला, धर्मवीर भारती, युगचेतना और अभिव्यक्ति, चिन्तन प्रकाशन, कानपुर।
8. भारत यायावर, मैला आंचल वाद-विवाद और संवाद, आधार प्रकाशन, पंचकूला।
9. डॉ. रेणू शाह, फणीश्वरनाथ रेणू का कथा शिल्प, राजस्थानी, ग्रंथकार, जोधपुर
10. डॉ. सत्यवती त्रिपाठी, आधुनिक हिन्दी नाटकों में प्रयोगधर्मिता, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली।
11. डॉ. शेखर शर्मा, समकालीन संवेदना और हिन्दी नाटक, भावना प्रकाशन, दिल्ली।
12. डॉ. सरोज प्रसाद, प्रेमचंद के उपन्यासों में समसामयिक परिस्थितियों का प्रतिफलन, रचना प्रकाल, इलाहबाद।

*****

इकाई–1

हिन्दी नाटक का उद्भव एवं विकास

संरचना

1.1 भूमिका

1.2 उद्देश्य

1.3 हिन्दी नाटक का उद्भव एवं विकास

1.3.1 भारतेन्दु युगीन हिंदी नाटक

1.3.2 प्रसाद युगीन हिंदी नाटक

1.3.3 प्रसादोत्तर हिंदी नाटक

स्वयं आकलन प्रश्न

1.4 सारांश

1.5 कठिन शब्दावली

1.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1.7 संदर्भित पुस्तकें

1.8 सात्रिक प्रश्न

इकाई-1

हिन्दी नाटक का उद्भव एवं विकास

1.1 भूमिका

पिछली कक्षा में हम हिन्दी गद्य साहित्य के अंतर्गत रंग आलेख एवं रंगमंच तथा हिन्दी उपन्यास एवं नाटक को विस्तारपूर्वक पढ़ चुके हैं। प्रस्तुत इकाई में हम हिंदी नाटक के एवं विकास का अध्ययन करेंगे। उद्भव एवं विकास के अंतर्गत हम भारतेन्दु युगीन हिंदी नाटक, प्रसाद युगीन हिन्दी नाटक और प्रसादोत्तर हिन्दी नाटकों का अध्ययन करेंगे।

1.2 उद्देश्य

इकाई पाठ का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि -

1. हिन्दी नाटक का उद्भव एवं विकास कैसे हुआ ?
2. भारतेन्दु युगीन हिन्दी नाटककार कौन-कौन से हैं ?
3. प्रसाद युगीन हिन्दी नाटककार कौन-कौन हैं ?
4. प्रसोदात्तर हिन्दी नाटकों की विशेषताएं क्या हैं ?

1.3 हिन्दी नाटक का उद्भव एवं विकास

नाटक का इतिहास बहुत पुराना है। सर्वप्रथम भरतमुनि ने 'नाट्यशास्त्र' में नाटक के विषय में कहा। हिन्दी में नाटक साहित्य का उद्भव 19 वीं शती से ही माना जा सकता है। इसी समय हिन्दी में विधिवत् नाट्य लेखन शुरू हुआ। हिन्दी नाटक-साहित्य में भारतेंदु और प्रसाद का विशिष्ट स्थान रहा है। उन्हीं के आधार पर नाटक के विकास को तीन भागों में बांटकर देखा जा सकता है:

1. **भारतेंदु युगीन हिन्दी नाटक**
2. **प्रसाद युगीन हिन्दी नाटक**
3. **प्रसादोत्तर हिन्दी नाटक**

1.3.1 भारतेंदु युगीन हिंदी नाटक

हिन्दी नाट्य-साहित्य की सशक्त परम्परा भारतेंदु युग से प्रारम्भ हुई है। इस युग में लगभग सभी रचनाकारों ने गद्य की विविध विधाओं में अपना योगदान दिया है। इस युग में मुख्य विधा नाटक को ही स्वीकार किया गया। प्राचीन संस्कृत, बंगला, मराठी, अंग्रेजी नाटकों के प्रभावस्वरूप हिन्दी नाटक का एक नया स्वरूप सामने आया। इस समय संस्कृत, बंगला, अंग्रेजी नाटकों के अनुवाद भी प्रचुर मात्रा में हुए। भारतेंदु को हिन्दी नाटक में जागरण सुधार युग की सम्पूर्ण चेतना को प्रतिष्ठित करने का श्रेय भी प्राप्त है। भारतेंदु से पहले महाराजा विश्वनाथ सिंह का आनन्द रघुनंदन और गोपालचन्द्र गिरिधरवास का नहुष नाटक भी उपलब्ध होते हैं। परन्तु यह ब्रजभाषा में हैं और नाट्य कला की कसौटी पर भी खरे नहीं उतरते। भारतेंदु जी के मौलिक नाटक है- वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, विषसय विषमौषध्म, चंद्रावली, भारतदुर्दशा, नीलदेवी, सतीप्रताप, अंधेरनगरी। संस्कृत के अनूदित नाटक- रत्नावली, पारखण्ड विडम्बन, मुद्राराक्षस, धनंजय विजय, कर्पूर मंजरी। बंगला से अनूदित - भारत जननी, विद्यासुन्दर, सत्यहरिश्चन्द्र। अंग्रेजी में शेक्सपियर के मर्चेंट ऑफ वेनिस का दुर्लभ बंधु नाम से अनुवाद किया है। भारतेंदु ने नाटक के द्वारा अपने समय की समस्याओं को जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया। सामाजिक बुराइयों, भ्रष्टाचार शासकीय अत्याचार पर व्यंग्य करते हुए उन्होंने राष्ट्रीयता के स्वर को बल दिया। उन्होंने प्राचीन और परम्परा का समन्वय किया। सस्कृत और अंग्रेजी दोनों नाट्य-शैलियों का उन्होंने नाटकों में प्रयोग किया। उनके नाटको के संवादों में गद्यात्मकता और पद्यात्मकता दोनों ही विद्यमान है।

भारतेंदु जी ने अपने समय के रचनाकारों को भी प्रभावित किया। इनके प्रभाव से अनेक सामाजिक, ऐतिहासिक, पौराणिक, राष्ट्रीयता परक, व्यंग्यात्मक नाटकों की रचना हुई। वहीं प्रेम प्रधान नाटकों की भी रचना की गई। इन सभी नाटकों में नौति पर अधिक बल दिया गया। पंडित प्रताप नारायण मिश्रा भारतेंदु को अपना आदर्श मानते थे। नाटकों में वे विनोद प्रवृत्ति और व्यंग्यात्मकता के लिए प्रसिद्ध था उनके प्रमुख नाटक गौ संकट, हमीर हठ, कलिकौतुक रूपक, जुआरी खुआरी प्रहसन अनके प्रमुख नाटक है। पंडित बालकृष्ण भट्ट ने पौराणिक, सामाजिक, ऐतिहासिक नाटक और प्रहसन दोनों ही लिखे दमयंती स्वयंवर वेणी संहार, किरातार्जुनीय बृहत्रला जैसा करम वैसा परिणाम, नई रोशनी का विष आदि इनके प्रमुख एकाकी है। इन्होंने मुख्यतः संस्कृत नाट्य प्रणाली को ही अपनाया है। राधाकृष्ण दास ने महाराणा प्रताप सिंह, महारानी पघ्मावती दु:खिनी बाला नामक नाटक लिखे। प्रथम दो ऐतिहासिक है और तीसरा दुखांत है। लाला श्री निवास दास का दुखान्त नाटक रणधीर प्रेम मोहिनी है। इस नाटक के गुजराती और उर्दू में अनुवाद हुए है। उनके पौराणिक नाटक संयोगिता स्वयंवर और प्रहलाद चरित्र है। राधाचरण गोस्वामी के नाटक हैं- अमर सिंह राठौर, श्रीदामा, तनमन धन गोसाई के अर्पण बूढ़े मुह मुहासे। देवकी नंदन खत्री के सीताहरण रूक्मिणी हरण, कस वध, बाल विवाह, स्त्री चरित सैकड़ों के दस-दस आदि नाटक लिखे। काशीनाथ खत्री ने एक अंक वाले लघु रूपकों की रचना की जिनमें ग्रामपाठशाला, निकृष्ट नीकारी सिंधु वेश की राजकुमारियाँ, और गुन्नौर की रानी प्रमुख है।

भारतेंदु युगीन नाटकों का उद्देश्य समाज सुधार रहा है। इन्होंने आदर्श की स्थापना अपने नाटकों द्वारा की। सामाजिक के द्वारा अनमेल विवाह पर्दाप्रथा, विधवा विवाह आदि के द्वारा स्त्री की दीन दशा का चित्रण किया गया है। ऐतिहासिक नाटकों के द्वारा भारतीय महापुरुषों के गौरव को आम व्यक्ति तक पहुंचाना और उनमें आत्म-गौरव की भावना को जगाना था। पौराणिक नाटकों में राम और कृष्ण की कथा को आधार बनाया गया। इन नाटकों के द्वारा आम से जन को उसकी संस्कृति से जोड़ा।

भारतेंदु युग में मौलिक नाटकों के अतिरिक्त संस्कृत, बंगला अंग्रेजी नाटकों के अनुवाद भी हुए। संस्कृत से हुए, अभिज्ञान शाकुन्तलम, प्रबोध चन्द्रोदय, उत्तर रामचरित मुद्राराक्षस, कर्पूरमंजरी, मृच्छकटिकम्, 'मालाविकाग्निमित्र' आदि उनके नाटकों के हिन्दी में अनुवाद किए गए। बालकृष्ण भट्ट ने बंगला के माइकल मधुसुदन दत्त के 'शर्मिष्ठा' और 'पद्मावती' का अनुवाद किया। ब्रजनाथ ने एक ही सभ्यता बोले का क्या इसी को सभ्यता कहते है। नाम से अनुवाद किया। लक्ष्मी नारायण चक्रवर्ती कि नाटक नवाब सिराजुदौला का अनुवाद शिवनंदन त्रिपाठी ने किया। ब्रहमनंदन सहाय ने सप्तम प्रतिभा और बूढ़ावर का अनुवाद किया। अंग्रेजी के शेक्सपियर के नाटको किंगलियर, ओथिली, मर्चेंट आफ वेनिस, एज यू लाइक इट, रोमियो एण्ड ज्यूलियट के हिन्दी अनुवाद हुए।

इस युग का नाटक साहित्य प्राचीन और नवीन प्रवृत्तियों का संगम है। रीतिकालीन परम्परा के अनुरूप पौराणिक प्रेम प्रधान नाटकों की रचना हुई तो दूसरी ओर नवीन चेतना के परिणामस्वरूप सामाजिक, ऐतिहासिक नाटकों की रचना हुई है। प्रहसन इस युग के नाटककारों की सामाजिक चेतना की सफल अभिव्यक्ति करता है। मूल रूप से इन नाटककारों का झुकाव यथार्थ के प्रत्ति है। लक्ष्मी नारायण वार्ष्णेय के शब्दों में- भारतेंदु युगीन हिन्दी नाट्य साहित्य में नवोत्थानकालीन भावना पूर्णतः मुखरित हो उठी थी। उसमें आधुनिक भारत का स्वर स्पष्टतः घोषित है। देशकाल की परिधि रहने पर भी उसमें युग-युग के जीवन को स्फूर्ति प्रदान करने वाली प्रेरक शक्तियों का अभाव नहीं है।

1.3.2 प्रसादयुगीन हिन्दी नाटक

भारतेंदु हरिश्चन्द्र के बाद काफी अरसे तक हिन्दी नाटक की दिशा वही रही जो भारतेंदु ने कायम की थी। द्विवेदी युग में नाट्य कर्म की गति मंद रही। यह वह समय था जबकि साहित्यकारों का रुझान नाटक की ओर नहीं रहा है। जयशंकर प्रसाद के आर्विभाव के साथ ही हिन्दी नाटक साहित्य का एक नया युग शुरू हुआ। भारतेंदु ने नाटकों में विद्यमान राष्ट्रीय, सास्कृतिक, सामाजिक चेतना का समग्र व उत्कृष्ट रूप प्रसाद के नाटकों में मिलता है। इतिहास, दर्शन

व संस्कृति को आधार बनाकर उन्होंने नाटक साहित्य को एक नई अर्थवत्ता दी। इतिहास को उन्होंने विशेष नाटकों में प्रस्तुत किया। उन्होंने इतिहास के प्रति अपने रुझान को विशाखा नाटक की भूमिका में स्पष्ट किया है– इतिहास का अनुशीलन किसी भी जाति का अपना आदर्श संघटित करने में अत्यन्त लाभदायक होता है। मेरी इच्छा भारतीय इतिहास के अप्रकाशित अंश में उन प्रकाण्ड घटनाओं का दिग्दर्शन कराने की है। हमारी। वर्तमान स्थिति को बनाने में महत्त्वपूर्ण योग दिया है। यह पंक्तिया प्रसाद की मनोवृत्ति और सोच का प्रस्तुत करती हैं। इनका नाटक के क्षेत्र में पदार्पण 1910–11 में हो गया था। इनके प्रमुख नाटक है– सज्जन, प्रायश्चित, कल्याणी परिणय, करूणालय राज्यश्री, विशाख, अजातशत्रु, जनमजेय का नागयज्ञ कामना, स्कन्दगुप्त, एक बूट चन्द्रगुप्त, धुव्रस्वामिनी।

प्रसाद का कथ्य व शिल्प सभी क्षेत्रों के प्रति विद्रोह अनेक नाटकों की विशिष्टता रही है। उन्होंने पूर्वी और पश्चिमी नाट्यों तत्त्वों को समाहित कर एक नयी नाट्य परम्परा की खोज की। जोकि हिन्दी नाटक–साहित्य को उनकी अमूल्य देन है। उनके नाटकों में राष्ट्रीय–सांस्कृतिक चेतना की गूंज मिलती है। देशभक्ति राष्ट्र प्रेम, साम्राज्यवादी शासन का विरोध नारी उद्धार आदि अनेक विषयों को नाटकों के माध्यम से प्रस्तुत किया। प्रसाद ने भाषा और संवादों में नवीनता का समावेश किया। उन्होंने संस्कृत प्रधान भाषा का प्रयोग किया जिसका कारण उनका सांस्कृतिक व ऐतिहासिक झुकाव कहा जाता है। प्राय: संवादों में उनके कवि–हृदय की छाप देखने का...... मिलती है। इन सबसे भिन्न उनके नाटकों की अभिनेयता आलोचकों के बीच विवाद का विषय रही है। इसका कारण नाटक का दृश्य–विधान भाषा और नाटक की रंगमचीयता को कहा जाता है। अभिनय की दृष्टि से कठिनाई तब आई थी जब हिन्दी का अपना कोई रंगमंच नहीं था। छठे दशक के बाद हिन्दी रंगमंच की शुरूआत होने पर यह कहा जाने लगा कि प्रसाद के नाटकों में रंगमंचीय संभावनाएँ विद्यमान हैं। तबसे उनके अनेक नाटकों का मंचन किया जाता है।

जयशंकर प्रसाद के समकालीन नाटककार हरिकृष्ण प्रेमी हैं। जिन्होंने सांस्कृतिकता को प्रमुखता दी। मध्यकालीन इतिहास से वर्ण्य–विषय को चुनकर हिन्दू–मुस्लिम एकता को आधार बनाया है। इन्होंने आम बोलचाल की भाषा को चुना इनके प्रमुख नाटक रक्षाबंधन, प्रतिशोध, स्वप्न भंग, आहुति है। इस युग में गीति नाट्यों की रचना हुई है। प्रसाद जी ने करूणालय के द्वारा इसकी शुरूआत की। अन्य गोति नाट्य हैं मैथिलीशरण गुप्त के अनघ उदयशकर भट्ट के विश्वामित्र, राधा, मत्स्यगंधा, सियारामशरण गुप्त के उन्मुक्त आदि। प्रसाद जी के समकालीन लक्ष्मीनारायण मिश्र ने इनसे विपरीत समस्या नाटक का प्रचलन किया। इन्होंने यथार्थवाद और बुद्धि को महत्त्व दिया। मिश्र जी के प्रमुख नाटक है– राक्षस का मंदिर, सिंदूर की होली, सन्यासी, मुक्ति का रहस्य आदि। इस युग में अनुवाद भी हुए। संस्कृत नाटकों के अनुवाद किए गए। मॉलियर, गाल्सवादर्दी आदि अंग्रेज नाटककारों के नाटकों के अनुवाद किए गए। मॉलियर, गाल्सवार्दी आदि अंग्रेज नाटककारों के नाटकों के अनुवाद हुए। बंगला के द्विजेंद्रलाल राय के नाटकों का भी हिन्दी में अनुवाद हुआ। इस युग में प्रमुख अनुवादक सीता राम माने जाते हैं।

1.3.3 प्रसादोत्तर हिन्दी नाटक

प्रसाद के उपरान्त हिन्दी नाटक ने एक नया मोड़ लिया। एकांकी नाटक का प्रचलन इस युग की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि मानी जा सकती है। इस दृष्टि से उपेन्द्रनाथ अश्क, रामकुमार वर्मा, जगदीशचन्द्र माथुर, विष्णु प्रभाकर, भुवनेश्वर, उदय शंकर भट्ट आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। हिन्दी नाट्य साहित्य में एक नया और अपेक्षाकृत पूर्व से सार्थक दौर चौथे दशक के अन्तिम चरण से शुरू हुआ है। द्वितीय युद्ध के उपरान्त यह स्थिति नाटक में देखी जा सकती है। इस समय राजनीतिक, सामाजिक क्षेत्र में जागरूकता देखी जाने लगी। जीवन और साहित्य की नई परिभाषाएँ सामने आई। ऐसे में रंगमंच और नाटक के सम्बन्धों के प्रति घनिष्ठता आई और अब इनकी उपयोगिता को गहराई से आंका जाने लगा। इस ढंग की अभिव्यक्ति उपेन्द्रनाथ अश्क में देखी जा सकती है। इन्होंने तो मध्यम वर्गीय लोगों की प्रतिदिन की जिन्दगी की समस्याओं व मुश्किलों को नाटक में व्यक्त किया। इसके लिए इन्होंने व्यंग्य का सहारा लिया। जिसमें इन्होंने गंभीर समस्या को भी पाठकों के सम्मुख हल्के–फुल्के ढंग से प्रस्तुत कर दिया। अश्क जी

ने आम लोगों की समस्याओं को आम बोलचाल की भाषा द्वारा ही अंकित किया। अभिनेयता की दृष्टि से भी इन्होंने नाटकों में संभावनाएँ रखी। 'अंजो दादीश 'स्वर्ग की झलक', 'छठा बेटा', 'कैद' 'उड़ान', 'अलग अलग रास्ते' आदि इनके प्रमुख्य नाटक हैं।

'अश्क' जी ने नाटक को रंगमंच से जोड़ने का सक्रिय प्रयास किया। इस प्रयास को जगदीश चन्द्रमाथुर ने आगे बढ़ाया है। हिन्दी नाटक में माथुरजी का 'कोणार्क' नाटक विशिष्ट स्थान रखता है। इसमें उन्होंने प्राचीन युग के द्वारा तदयुगीन सामाजिक व्यवस्था को व्यक्त किया है। 'शारदीया' 'पहला राजा' इनमें ऐतिहासिक नाटक हैं। 1955 ई. धर्मवीर भारती का 'अंधायुग' आया। इसमें कविता और नाटक दोनों का साथ अंकन किया गया। रंगमंच पर नाटक के अनेक सफल प्रदर्शन हो चुके हैं। दुष्यन्त कुमार ने भी इसी तरह का काव्य नाटक 'एक कण्ठ विषपायी' लिखा है। सुमित्रानंदन पंत ने भी 'शिल्पी' नामक काव्य-नाटक लिखा है।

हिंदी नाटक साहित्य में एक अन्य प्रमुख नाम मोहन राकेश का है। इन्होंने नाटक और रंगमंच के सम्बन्ध को ध्यान रखकर नाट्य सृजन किया। राकेश जी ने नाटकों में मुख्य रूप से मानवीय संवेदनाओं की अभिव्यक्ति की। 'आषाढ़ का एक दिन', 'लहरों का राजहंस' तथा 'आधे अधूरे' हिन्दी नाटक और रंगमंच की दृष्टि से विशिष्ट नाटक कहे जा सकते हैं। राकेश ने जीवन की गहन मार्मिक अनुभूतियों के तीखे बोध को अतीत और वर्तमान में एक साथ तलाश करने का सार्थक प्रयास हिन्दी नाटक में पहली बार इतनी सफलतापूर्वक किया गया। 'आधे अधूरे' नाटक के द्वारा राकेश ने मध्यवर्गीय परिवार के विसंगति बोध और अजनबीपन की मार्मिक व्यंजना की है। इसी समय हिन्दी नाटक में एक नया नाम जुड़ा लाला लक्ष्मी नारायण मिश्र इन्होंने नाटक और रंगमंच के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। इनके प्रमुख नाटक हैं- 'अंधा कुआ', 'तीन आँखों वाली मछली', 'मादा कैक्टस', 'तोता मैना' 'रातरानी', 'मिस्टर अभिमन्यु', 'दर्पण' आदि। विष्णु प्रभाकर भी रंगमंचीयता से प्रभावित रहे हैं। इन्होंने नाटक तो लिखे ही परन्तु साथ ही विभिन्न चर्चित व महत्त्वपूर्ण उपन्यासों व कहानियों का नाट्य रूपान्तर भी किया। इसके द्वारा उन्होंने हिंदी नाटक साहित्य को समृद्ध किया। प्रेमचन्द के 'गबन' और 'गोदान' का नाट्य रूपान्तर 'चंद्रहार' और 'होरी' नाम से किया। प्रभात कुमार मुखोपाध्याय की बंगला कहानी 'देवी' का नाट्य रूपान्तर इसी नाम से अर्थात् 'देवी' नाम से किया। इनके अतिरिक्त अन्य प्रमुख नाटककार और उनके नाटक इस प्रकार हैं। बिनोद रस्तोगी के 'नए हाथ', नरेश मेहता के 'सुबह के घन्टे', 'खण्डित यात्राएँ, लक्ष्मीकान्त वर्मा के 'खाली कुर्सी की आत्मा', शिवप्रसाद सिंह के 'घाटियों गूंजती हैं, मनु भंडारी के 'बिना दीवारों का घर', सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के 'बकरी', मुद्राराक्षस के 'तिलच्चट्टा' शंकर शेष के 'एक और द्रोणाचार्य' भीष्मसाहनी के 'हानुश' व 'कबीरा खड़ा बाजार में', सुरेन्द्र वर्मा के 'सूर्य की अन्तिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक', मणि मधुकर के 'रस गन्धर्व' आदि।

वर्तमान समय में नाटक के क्षेत्र में अनुवाद का महत्त्व बढ़ा है। नाटक के विकास में अनुवाद में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। सगीत नाटक अकादमियों व राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय तथा विविध व्यावसायिक संस्थाओं द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले बहुत से नाटक अनुदित होते है। मराठी, बंगला, गुजराती, तमिल, तेलुग, कन्नड़, मलयालम आदि अनेक भारतीय भाषाओं से नाटक बहुत बड़ी संख्या में हिन्दी में अनदित कि नाटक बहुत बड़ी संख्या में हिन्दी में अनूदित किए जा रहे हैं और उनका मंचन मंच पर हो रहा है। साथ ही अनेक अंग्रेजी के नाटकों को भी हिन्दी में अनुविद किया गया है। इस तरह से हिन्दी नाटक साहित्य की धरोहर बढ़ी है। रवीन्द्रनाथ, 'ंभुमित्र, गिरीश कर्नाड, विजय तेंदुलकर, बादल सरकार, मोलियर, टॉल्सराय, इब्सन, चेखव, शेक्सपियर आदि अनेक विश्व प्रसिद्ध नाटककारों के नाटक हिन्दी भाषी दर्शक और पाठक को उपलब्ध हुए है। 1960 के पश्चात नाटक और रंगमंच के क्षेत्र में नवीनता और नई उपलब्धियों को अपनाया जाने लगा। जीवन की बुनियादी व गंभीर समस्याओं को गंभीरता और व्यापक स्तर पर प्रस्तुत करने के लिए नाटकों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निर्वाह किया। स्त्री पुरूष सम्बन्धों के बदलते स्वरूप और उनका विश्लेषण भी इन नाटकों में उपलब्ध होता है। नाटक को रंगमंच से जोड़ने के लिए अनेक प्रयास किए गए है। जहाँ एक ओर महानगरों

में रंग मंच की उपयोगिता को बढ़ाया गया वहीं छोटे शहरों में भी इसके महत्त्व को स्थापित किया गया है। सत्यदेव दुबे, जालान, प्रतिभा अग्रवाल, हबीब तनवीर, अमाला अल्लाना, बलराम पंडित, दीनानाथ, ओमशिव पुरी, इब्राहिम अल्काती अनेक सफल नाट्य निर्देशकों द्वारा नाटकों का रंग मंच पर सफल मंचन किया गया। साठ के बाद से नाटक की परम्परागत पद्धतियों के साथ-साथ लोक-नाट्य शैलियों को भी काफी लोकप्रियता प्राप्त हुई है। इन क्षेत्र में हबीब तनवीर का योगदान अविस्मरणीय है। छत्तीसगढ़ी, नाया शैली, करनिक की यक्षगान शैली, उत्तर प्रदेश की नौटंकी शैली, राजस्थान की ख्याल शैली आदि अनेक शैलियों को नाटकों के क्षेत्र में सफल प्रस्तुतियाँ हुई है।

हिन्दी नाटकों में अनूदित नाटकों में महत्त्वपूर्ण व चर्चित नाटक है- गिरीश कर्नाड का 'तुगलक' 'हयवदन, आद्य रंगाचार्य का 'सुनोजनमेजय', विजय तेंदुलकर का 'खामोश अदालत जारी है'..'घासी राम कोतवाल', 'सखाराम बाइडर, बादल सरकार का 'जुलूस', टाल्सटाय के 'पाप और प्रकाश' ब्रेख्त का 'खड़िया का घेरा', मॉलियर का 'कंजूस', 'बीबियों कमदरसो, शेक्सपियर का 'वरनम वन आदि। आज के समय में हिंदी नाटकों में अनूदित नाटकों की संख्या बहुतायत से बड़ी है और उसी स्तर का मंचन भी रंगमंच पर किया जा रहा है। प्राय: अनूदित नाटकों का रंगमंच पर प्रस्तुतीकरण सफलता के साथ किया जा रहा है। वर्तमान समय में नाटकों में नुक्कड़ नाटकों का प्रचलन भी बढ़ा है। कहीं किसी नुक्कड़ पर दर्शकों को इकट्ठा करके वही जगह मंच बन जाती है। इसी तरह के नाटकों के प्रदर्शन से नाटकों का प्रचलन आम व्यक्ति के बीच किया जा रहा है। साथ ही कोई गहन समस्या या संदेश को सहजता से आम जन तक पहुंचाया जा सकता है। गली, मोहल्ले या पार्क के किसी भी कोने में बिना किसी औपचारिकता के इन नाटकों का अभिनय किया जाता है। लोकनाट्य की तरह इनमें भी जनता को आधार बनाया जाता है। आज रेडियो नाटकों का प्रचलन भी बढ़ गया है। केवल ध्वनि के द्वारा नाटकों को प्रस्तुत किया जाता है। इससे नाटक ऐसे लोगों तक भी पहुंचा है जो मंच पर होने वाले नाटकों को देख नहीं पाते हैं। कहना चाहिए कि उनकी पहुँच थियेटरों तक नहीं थी। रेडियो नाटकों के द्वारा एक गरीब व्यक्ति भी नाटक से परिचित हो सका है। इसी के साथ दूरदर्शन पर भी नाटक दिखाए जाने लगे हैं। इस तरह भी अनेक दर्शक नाटकों के हो गए है। दूरदर्शन-रेडियो के द्वारा आसानी से दर्शकों तक पहुँचा जा सकता है। इस प्रकार वर्तमान परिप्रेक्ष्य में नाटक और रंगमंच का महत्त्व बढ़ा ही है।

अन्त में इतना कहा जा सकता है कि पूर्ण रूप से भारतेंदु युग से आज तक नाटक साहित्य का अवलोकन से ज्ञान होता है कि हिन्दी नाटक साहित्य निरन्तर विकास की दिशा की ओर सक्रिय है। परम्परागत स्वरूप व ढाँचे को यथा संभव स्वीकारते हुए नाटक के क्षेत्र में अनेक प्रयोग किए जा रहे हैं। नवीनता को स्थान देने पर लेखन के साथ-साथ रंगमंच के महत्व को भी स्वीकारा गया और इस क्षेत्र में भी अनेक सक्रिय कार्य किए गए। इस तरह यह निश्चित है कि नाटक और रंगमंच दोनों ही ने उत्तरोत्तर उन्नति की है। नाटक के दर्शकों की संख्या भी बढ़ी है।

स्वयं आकलन के लिए प्रश्न

प्र. 1 हिन्दी नाटक के विकास को कितने भागों में बांटा जाता है ?

प्र. 2 अंधेर नगरी किसका नाटक है ?

प्र. 3 प्रेमचन्द के उपन्यान 'नग्न' का नाट्य रूपांतर का नाम क्या है ?

1.4 सारांश

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भारतेंदु युग से आज तक नाटक साहित्य का अवलोकन से ज्ञात होता है कि हिन्दी नाटक साहित्य निरंतर विकास की दशा की ओर सक्रिय है। परम्परागत स्वरूप व ढांचे को यथासंभव स्वीकारते हुए नाटक के क्षेत्र में अनेक प्रयोग किए जा रहे हैं। नवीनता को स्थान देने पर लेखन के साथ-साथ रंगमंच के महत्व को भी स्वीकारा गया है।

1.5 कठिन शब्दावली

(1) सम्मुख - सामने, आगे

(2) समन्वय - नियमित क्रम, संयोग

(3) प्रवृत्ति - स्वभाव, आदत

1.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

प्र. 1 उत्तर - तीन भागों में

प्र. 2 उत्तर - भारतेन्तु हरिश्चन्द्र

प्र. 3 उत्तर - चंद्रहार

1.7 संदर्भित पुस्तकें

(1) आधुनिक नाटक का मसीहा - गोविन्द चातक

(2) आधुनिक हिन्दी नाटक और रंगमंच - नेमिचन्द्र जैन

(3) हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास - डॉ. दशरथ ओझा

1.8 सात्रिक प्रश्न

प्र. 1 हिन्दी नाट्यकला के विकासक्रम पर प्रकाश डालिए।

प्र. 2 भारतेन्दु की नाट्यकला पर प्रकाश डालिए।

*****

इकाई–2

जयशंकर प्रसाद : जीवन एवं सृजित साहित्य

संरचना

2.1 भूमिका

2.2 उद्देश्य

2.3 जयशंकर प्रसाद : जीवन एवं सृजित साहित्य

- जीवन साहित्य
- रचना संसार

स्वयं आकलन प्रश्न

2.4 सारांश

2.5 कठिन शब्दावली

2.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

2.7 संदर्भित पुस्तकें

2.8 सात्रिक प्रश्न

इकाई–2
जयशंकर प्रसाद : जीवन एवं सृजित साहित्य

2.1 भूमिका

इकाई एक में हमने हिन्दी नाटक के उद्‌भव एवं विकास यात्रा की विस्तारपूर्वक जानकारी प्राप्त की। इकाई दो के अन्तर्गत हम जयशंकर प्रसाद के जीवन एवं सृजित साहित्य का अध्ययन करेंगे।

2.2 उद्‌देश्य

इकाई दो का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि

(1) जयशंकर प्रसाद का जन्म कहाँ पर हुआ ?

(2) जयशंकर प्रसाद की प्रमुख रचनाएँ कौन–कौन सी हैं ?

(3) प्रसाद की पारिवारिक पृष्ठभूमि कैसी थी ?

2.3 जयशंकर प्रसाद : जीवन एवं सृजित साहित्य

● जीवन साहित्य

हिंदी के कालिदास शेक्सपीयर और ठाकुर के नाम से विख्यात कविवर जयशंकर प्रसाद हिन्दी साहित्य की अमर विभूति है। वे त्रिकालदर्शी रचनाकार प्रमाणित हुए है।

प्रसाद जी का जन्म सन् 1889 ई० में काशी के एक सम्पन्न परिवार में हुआ। इनके पितामह श्री शिवरत्न साहू बड़े दयालु और दानी व्यक्ति थे। वे इतने उदार और पुण्यात्मा थे कि नित्य–प्रति गंगा स्नान करके लौटते समय निर्धनों को अपने मूल्यवान वस्त्र और पात्र आदि भी दे डालते थे। अनेक निर्धन विद्यार्थी, असहाय विधवाए और विद्वान ब्राह्मण इनसे नियमित सहायता प्राप्त करते थे। इनका तम्बाकू का व्यापार था। इन्होंने पान के मसाले के रूप में प्रयुक्त होने वाली एक विशेष प्रकार की सुर्ती गोली बनाई थी जिस कारण ये सुंघनी साहू नाम से प्रसिद्ध थे। प्रसाद जी के पिता श्री देवी प्रसाद जी में भी ये वंश परंपरागत गुण विद्यमान थे। जो विद्वान, कवि, कलाकार आदि काशी नरेश की सभा में जाते थे वे लौटते समय इनसे अवश्य भेंट करते थे। विद्वत्समाज में यह बात बहुत प्रसिद्ध थी कि काशी में गुणी जनों का आदर दो ही स्थानों पर होता है एक काशी नरेश के यहां और दूसरे सुधनी साहू के यहां। इसी से प्रसाद जी की वंश–परम्परा एवं गरिमा का परिचय मिल जाता है।

अपने परिवार में सबसे छोटी सन्तान होने के कारण प्रसाद जी को माता–पिता का विशेष स्नेह प्राप्त था। इसका एक कारण यह भी था कि इनसे पूर्व इनके बड़े भाई–बहन असमय ही मृत्यु का ग्रास बन चुके थे। अत: माता–पिता के हृदय में इनके प्रति विशेष अनुराग था, किन्तु विधाता ने प्रसाद जी से यह स्नेह–सुख शीघ्र ही छीन लिया। जब उनकी अवस्था बारह वर्ष की थी, तो इनके पिता जी का स्वर्गवास हो गया। तीन वर्ष पश्चात् ही इनकी माता भी परलोक सिधार गई। और इनके दो ही वर्ष के भीतर इनके एकमात्र संरक्षक और अभिभावक बड़े भाई शम्भुरत्न का भी देहान्त हो गया।

बालक प्रसाद ने इस घोर दैवी आपदाओं के बीच भी अपना धैर्य बनाए रखा। पिता की मृत्यु के उपरान्त पारिवारिक सम्पत्ति के उत्तराधिकार और विभाजन को लेकर गृह कलह ने भीषण रूप ले लिया। पिता और पितामह द्वारा अर्जित लाखों रूपये मुकद्दमेबजी में स्वाहा हो गए। परिणामत: जब इनके बड़े भाई भी चल बसे, तो दुकान के नाम बहुत बड़ा ऋण था। प्रसाद जी ने अपने कठोर परिश्रम और संतुलित मस्तिष्क से यह सब कुछ सहा और धीरे–धीरे स्थिति सम्भाल ली। इस प्रकार की विषम परिस्थितियों में भी प्रसाद जी किस प्रकार स्वाध्याय चालू रख सके और किस प्रकार प्राचीन और आधुनिक गन्थों का गम्भीर अध्ययन कर अपनी साहित्य साधना में संलग्न रहे यह सचमुच बड़े ही आश्चर्य का विषय है।

प्रसाद की प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई। इन्होंने बड़ी से संस्कृत, अग्रेजों और उर्दू को शिक्षा प्राप्त की। दस वर्ष की अवस्था में से कवीस कॉलेज में प्रविष्ट हुए, किन्तु पारिवारिक परिस्थितियों के कारण, दो वर्ष पश्चात् ही कॉलेज को छोड़ने को मजबूर हुए। । ज्यों ही फिर स्थिति सामान्य हुई इन्होंने फिर समय निकालकर नियमित रूप से स्वाध्याय आरम्भ कर दिया। काशी के प्रसिद्ध विद्वान दीन बन्धु ब्रह्मचारी से इन्होंने संस्कृत के प्राचीन साहित्य का गहन ज्ञान प्राप्त किया। इसके साथ ही उर्दू और अंग्रेजों का भी इन्होंने अध्ययन किया। इससे एक ओर जहां प्रसाद जी भारत के प्राचीन सांस्कृक्तिक आर साहित्यिक वैभव से परिचित हो सके, वहा नवीन साहित्यिक गतिविधियों से भी ये अपरिचित नहीं रहे। वर्तमान की आंखों से अतीत को देखना ओर अतीत की कसौटी पर वर्तमान को परखना प्रसाद जी की इसी व्यापक अध्ययन प्रवृत्ति का परिणाम है।

पुस्तकीय अध्ययन के साथ-साथ प्रसाद जी ने व्यावहारिक जगत का भी सम्यक अध्ययन किया। इन्होंने ग्यारह वर्ष की अवस्था में ही अपनी माता के साथ धारा क्षेत्र ओंकारेश्वर, पुष्कर, उज्जैन, जयपुर, ब्रजमण्डल, अयोध्या आदि ऐतिहासिक स्थलों की यात्रा करके इनके पीछे निहित प्रथाओं को समझा। इन्हें अमरकटक पर्वत माला की यात्राओं बहुत समय तक प्रकृति के भव्य परिवेश में रहने का अवसर मिला। घघल चन्द्र-ज्योत्स्ना में नर्मदा नदी में नौका विहार करते समय इनका हृदय कोमल कल्पनाओं से अभिभूत हा उठा। इसी प्रकार जब इन्होंने भुवनेश्वर और जगन्नाथपुरी को यात्रा के समय सागर उत्ताल तरंगों-लहरों का नर्तन देखा तो सागर की असीमता की भान्ति ही इनका ज्ञान क्षेत्र भी पर्याप्त विस्तृत हो गया। इसके अतिरिक्त इन्होंने परिवार में ही अनेक उतार-चढ़ाव देखकर जीवन की यथार्थ पुस्तक को गहराई से पढ़ा और समझा। माता-पिता और बड़े भाई के अभाव में इन्हें अपने विवाह की सम्पूर्ण व्यवस्था स्वयं ही करनी पड़ी संयोगवश कुछ ही वर्षो में इनकी पत्नी की मृत्यु हो गई। मित्रों एवं परिजनों के आग्रह पर इन्होंने दूसरा विवाह किया, किन्तु प्रथम सन्तान के जन्म के समय ही मां और शिशु दोनों ही परलोक सिधार गए। कहने की आवश्यकता नहीं जीवन के इन कठोर आघातों ने प्रसाद जी को प्रकृति की उत्तरोत्तर गम्भीर, दार्शनिक और अन्तर्मुखी बना दिया। यद्यपि वह अपनी भाभी के उत्कट आग्रह और मनसंतोष के लिए इन्होंने फिर विवाह किया और इससे इन्हें रत्नशंकर नामक पुत्र रत्न की प्राप्ति भी हुई, तथापि इनका हृदय सांसारिक मोह-माया से विरक्त रहकर जीवन के शाश्वत मूल्यों की ओर उन्मुख रहा।

प्रसाद जी के व्यक्तित्व में विद्वता, व्यवहार कुशलता और उदारता का अद्‌भुत समन्वय था प्राचीन के प्रति गहरी आस्था होते हुए भी वे रुढ़िवादी नहीं थे। नवीन के प्रति जिज्ञासा और प्रशंसा के भाव रखते हुए भी ये अत्याधुनिकता के मतवाले नहीं थे। इतिहास का गहरा अध्ययन इनका सर्वप्रिय विषय रहा परन्तु इन्होंने इतिहास की घटनाओं या नामावलियों की सारणी दुहराने में ही संतोष नहीं किया, अपितु इनके पीछे छिपे हुए जीवन मर्म तथा सार तत्व के अनुसंधान का प्रयास किया। इनकी अन्तर्मुखी प्रवृत्ति का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि इन्होंने अपने जीवन काल में कभी आत्म विज्ञापन पसन्द नहीं किया। ये कभी किसी समारोह में भाग लेने या भाषण देने नहीं गए। प्रातः ब्रह्म-मुहूर्त में उठकर, कुछ समय लेखन-कार्य में लीन रहना, तदुपरान्त नियमित प्रातः भ्रमण करना, उसके बाद स्नान-सन्ध्या वन्दन आदि दैनिक कृत्य पूर्ण कर दुकान पर आ बैठना, दोपहर को भोजन और विश्राम करके पुनः व्यावसायिक कारोबार की देखभाल करना तथा सन्ध्या के उपरान्त समय निकालकर साहित्यिक बन्धुओं से विविध विषयों पर चर्चा करना, यही उनकी दिन चर्या थी।

कठोर कर्म साधना और अविराम शारीरिक परिश्रम का प्रसाद जी के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। सन् 1937 ई० में इन्हें सामान्य ज्वर हुआ, जिससे कुछ दिनों में राजयक्ष्मा (तपेदिक) का विकराल रूप धारण कर लिया। अन्ततः नवम्बर 1937 ई0 में इनका देहावसान हो गया। 48 वर्ष की अल्पायु में ही प्रसाद जी का दुखद निधन हिन्दी साहित्य के लिए वस्तुतः एक अपूरणीय क्षति थी।

● **रचना संसार**

जयशंकर प्रसाद का घराना 'सूंघनी साहु' बनारस का उदार घराना था। उनके यहाँ अनेक विद्वतजनों का आना-जाना लगा रहता था। प्रसाद के प्रारभिक सृजनकाल में मुन्शी कालिन्दी प्रसाद और दूसरे रीवा निवासी श्री रामानन्द से उनकी घनिष्ठता थी। प्रसाद की श्री प्रेमचंद, मैथिलीशरण गुप्त, सुमित्रानन्दन पंत, 'निराला', महादेवी वर्मा, रामचंद वर्मा, केशव प्रसाद मिश्र, बालकृष्ण शर्मा, शांतिप्रय द्विवेदी आदि विद्वान तथा प्रतिष्ठित साहित्यकारों से मित्रता थी। उनकी नागरी प्रचारिणी सभा के डॉ. श्यामसुंदर दास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, लाला भगवानदीन, अयोध्या सिंह उपाध्याय, 'हरिऔंध', केदारनाथ पाठक आदि से अनेक बार भेंट-वार्तालाप होती रहती थी। प्रसाद को काशी के अनेक विद्वानों के सहवास का लाभ मिला। उनमें रूप नारायण पाण्डेय, श्री शिवपुजन सहाय, श्री गोविन्द वल्लभपत, प. विश्वभरनाथ जिज्जा, उग्र, प. नन्ददुलारे वाजपेयी, डॉ. राजेन्द्र नारायण शर्मा, वाचस्पति पाठक, 'बेढब' बनारसी, बेनीपुरी, पं लक्ष्मी नारायण मिश्र, सुमन, द्विज तथा पद्मनारायण आचार्य आदि विद्वानों को साहित्यिक गोष्ठियों में वे अपनी रचनाएँ सुनाते थे। हिंदी के समवर्ती कवियों तथा साहित्यकारों से उनकी अच्छी जान-पहचान थी। प्रसाद सदा ही साहित्यकारों के तारापुंज में ध्रुवतारे के समान चमकते थे।

काव्य

जयशंकर प्रसाद की काव्य रचनाएं दो वर्गों में विभक्त हैं काव्य पथ अनुसंधान की रचनाएं और प्रसिद्ध रचनाएं 'आंसू', 'लहर' तथा 'कामायनी' दूसरे वर्ग की रचनाएं हैं। उन्होंने काव्य रचना 'ब्रजभाषा' में आरंभ की और धीरे-धीरे खड़ी बोली को अपनाते हुए उस दिशा में इतनी निपुण हो गाए कि खड़ी बोली के मूर्धन्य कवियों में उनकी गणना की जाने लगी। वह युगवर्तक कवि के रूप में प्रतिष्ठित हुए उनके लिखे निम्नलिखित काव्य ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध हुए।

- कानन कुसुम
- महाराणा का महत्व
- झरना
- लहर
- कामयानी
- प्रेम पथिक

उन्होंने हिंदी काव्य में छायावाद की स्थापना की जिसके द्वारा खड़ी बोली के काव्य में 'कमनीय' मधुर की रसीद धारा प्रवाहित हुई और वह काव्य की शुद्ध भाषा बन गई उनकी सर्वप्रथम छायावादी रचना 'खोलो द्वार' 1914 ई० में इंदु में प्रकाशित हुई।

वे छायावाद के प्रति स्थापक ही नहीं अपितु छायावाद पद्धति पर सरस संगीत में गीतों के लिखने वाले श्रेष्ठ कवि भी हैं। उन्होंने हिंदी में करुणालय द्वारा गीत नाटिका भी आरंभ किया। उन्होंने भिन्न तुकांत का भी लिखने के लिए मौलिक छंद चयन किया और अनेक छंद का संभवत उन्होंने सबसे पहले प्रयोग किया। उन्होंने नाटकीय ढंग पर काव्य, कथा शैली का मनोवैज्ञानिक पद पर विकास किया। साथी कहानी कला की नई तकनीक का सहयोग काव्य कथा कराया।

कहानी

कथा, कहानी के क्षेत्र में जयशंकर प्रसाद आधुनिक ढंग की कहानियों के आरंभ कर्ता के तौर पर जाने जाते हैं। सन 1912 में 'इंदु' उनकी पहली कहानी ग्राम प्रकाशित हुई। उन्होंने कुल 72 कहानियां लिखी हैं।

कहानी संग्रह–

- छाया
- प्रतिध्वनि
- आकाश दीप
- आंधी
- इंद्रजाल

उपन्यास

जयशंकर प्रसाद के तीन उपन्यास हैं। 'कंकाल' में नागरिक सभ्यता का अंतर यथार्थ उद्घाटित किया गया है। तितली में ग्रामीण जीवन के सुधार के संकेत हैं। प्रथम यथार्थवादी उपन्यास है। दूसरे में आदर्श उन्मुख यथार्थ है। इन उपन्यासों के द्वारा प्रमाद जी हिंदी में यथार्थवादी उपन्यास लेखन के क्षेत्र में अपनी गरिमा स्थापित करते हैं। 'इरावती' ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर लिखा गया इनका अधूरा उपन्यास है। जो रोमांस के कारण ऐतिहासिक रोमांस के उपन्यासों में विशेष आदर का पात्र है। इन्होंने अपने उपन्यासों में ग्राम नगर प्रकृति और जीवन का मार्मिक चित्रण किया है। जो भावुकता और कविता में पूर्ण होते हुए प्रौढ़ लोगों की शैल्पिक जिज्ञासा का समाधान करता है।

नाटक

- **रचना संसार**
- स्कंद गुप्त
- चंद्रगुप्त
- ध्रुवस्वामिनी
- जन्मेजय का नाग यज्ञ
- राज्यश्री
- कामना
- एक घूंट

निबंध–

प्रसाद ने आरंभ में समय–समय पर 'इंदु' में विविध विषयों पर सामान्य निबंध लिखे। बाद में उन्होंने शोध परक ऐतिहासिक निबंध यथा सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य, प्राचीन आर्यवर्त और उसका प्रथम सम्राट आदि भी लिखे हैं। यह उनकी साहित्यिक मान्यताओं की विश्लेषणात्मक वैज्ञानिकता प्रस्तुत करते हैं। विचारों की गहराई भावों की प्रबलता तथा चिंतन और मनन की गंभीरता के यह जा जबल प्रमाण है।

स्वयं आकलन के लिए प्रश्न

प्र. 1 जयशंकर प्रसाद का जन्म कब हुआ था ?

प्र. 2 जयशंकर प्रसाद के बड़े भाई का क्या नाम था ?

प्र. 3 'झरना' का प्रकाशन वर्ष क्या है ?

2.4 सारांश

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि जयशंकर प्रसाद कवि, नाटककार, कहानीकार, उपन्यासकार तथा निबंध लेखक थे। वे हिन्दी के छायावादी युग के चार प्रमुख स्तंभों में से एक थे। प्रसाद ने अपनी लेखनी द्वारा हिंदी नाट्य साहित्य को एक नई दिशा प्रदान की।

2.5 कठिन शब्दावली

(1) दयालु – दया करने वाला, रहम दिल

(2) क्षय रोग – तपेदिक, टी.वी. रोग

(3) प्रायश्चित – पछतावा, दोषमुक्ति के लिए दु:ख योजना

2.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

प्र. 1 उत्तर – सन् 1890 ई. में

प्र. 2 उत्तर – शंभूरत्न

प्र. 3 उत्तर – सन् 1918 ई.

2.7 संदर्भित पुस्तकें

(1) प्रसाद और उनका साहित्य – विनोद शंकर व्यास

(2) हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास ‘ सं. डॉ. गणपति चंद्र गुप्त

(3) प्रसाद साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि – डॉ. प्रेम दत्त शर्मा

2.8 सात्रिक प्रश्न

प्र. 1 जयशंकर प्रसाद के व्यक्तित्व तथा कृतित्व पर प्रकाश डालिए।

प्र. 2 प्रसाद की नाट्यकला पर प्रकाश डालिए।

प्र. 3 प्रसाद एक उत्कृष्ट नाटककार हैं, कथन की समीक्षा कीजिए।

*****

इकाई-3
चन्द्रगुप्त नाटक का सार एवं उद्देश्य

संरचना

3.1 भूमिका
3.2 उद्देश्य
3.3 चन्द्रगुप्त नाटक : सार
3.3.1 चंद्रगुप्त : उद्देश्य
स्वयं आकलन प्रश्न
3.4 सारांश
3.5 कठिन शब्दावली
3.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर
3.7 संदर्भित पुस्तकें
3.8 सात्रिक प्रश्न

पाठ-3

चन्द्रगुप्त नाटक का सार एवं उद्देश्य

3.1 भूमिका

इकाई दो में हमने जयशंकर प्रसाद के जीवन एवं सृजित साहित्य का अध्ययन किया। इकाई तीन के अंतर्गत हम प्रसाद कृत 'चंद्रगुप्त' नाटक के सार एवं उद्देश्य का अध्ययन करेंगे।

3.2 उद्देश्य

इकाई तीन का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे

1. जयशंकर प्रसाद कृत 'चंद्रगुप्त' नाटक का सार क्या है ?
2. चन्द्रगुप्त नाटक का उद्देश्य क्या है ?

3.3 चंद्रगुप्त नाटक : सार

प्रथम अंक - चंद्रगुप्त नाटक का प्रारम्भ तक्षशिला के गुरुकुल में चाणक्य और उसके शिष्यों-चन्द्रगुप्त और सिंहरण के मध्य वार्तालाप से होता है। प्रारम्भिक वार्तालाप में ही आर्यावर्त पर छाये हुए आपत्तियों के मेघों तथा तत्कालीन राजनीतिक स्थितियों का आभास मिलता है। इसी बीच में तक्षशिला के राजकुमार आम्भीक तथा अलका का प्रवेश अत्यन्त नाटकीय ढंग से होता है। पर्वतेश्वर के विरुद्ध यूनानियों के साथ आम्भीक के सहयोग से विवाद शुरु हो जाता है। सिंहरण आम्भीक द्वारा किए गए इस षड्यन्त्र का रहस्य खाल देता है तो सिंहरण उसे बंदी बनाने की धमकी देता है। इनके वाग्युद्ध में चन्द्रगुप्त बीच में आ जाता है और आम्भीक द्वारा किए गए अचानक प्रहार से सिंहरण की रक्षा करता है। आम्भीक को अलका ले जाती है। इसके उपरान्त आचार्य चाणक्य सिंहरण और चन्द्रगुप्त यवन आक्रमणकारियों से आर्यवर्त की रक्षा करने का निश्चय करते हैं। चन्द्रगुप्त और सिंहरण तक्षशिला को छोड़कर अन्यत्र चले जाते है।

मगध की राजधानी कुसुमपुर मगध सम्राट की विलासिता का केन्द्र बना हुआ है, यहाँ युवक और युवतियों की प्रेम-क्रीड़ाएँ होती हैं। उस समय मगध की जनता अत्यन्त दुखी और पीड़ित है परन्तु मगध सम्राट नन्द अनेक प्रकार की विलास-कीड़ाओं में निमग्न दिखाई देते हैं। यहीं सुवासिनी को राजनर्तकी और राक्षस को अमात्य पद पर विभूषित किया जाता है।

इसके बाद चाणक्य तक्षशिला से लौटकर पाटिलपुत्र में आते हैं और उन्हें मालूम पड़ता है कि उनके पिता को राजाज्ञा से निर्वासन-दण्ड दे दिया गया है तथा उसका समस्त परिवार राजकोप की अग्नि में भस्म हो गया है तथा अमात्य शकटार की सुपुत्री सुवासिनी नर्तकी बन गई है।

चतुर्थ दृश्य में सुवासिनी और राक्षस दोनों के दर्शन होते हैं। यहीं राजकुमारी कल्याणी अपनी सखियों के साथ प्रवेश करती है। यहीं एक राजा अहेरी चीते से राजकुमारी कल्याणी की रक्षा करता है। दोनों की प्रेम भावना का परिचय भी यहीं से मिलता है।

पंचम दृश्य में मगध सम्राट की राजसभा होती है और उसमें चाणक्य भी उपस्थित है। उसी समय पचनद के नरेश पर्वतेश्वर नन्द की कन्या कल्याणी से विवाह की अस्वीकृति की सूचना पाकर नन्द अत्यन्त क्रोधित हो उठता है। वह पर्वतेश्वर से प्रतिकार लेने की ठान लेता है। आचार्य चाणक्य यहीं नन्द को यह सूचना देते हैं कि यवनों की विशाल सेना निषध पर्वत तक पहुँच गई है। और तक्षशिला की भी उसमें अभिसन्धि है। चाणक्य और चन्द्रगुप्त पर्वतेश्वर की सहायता करने का परामर्श देते हैं तथा कल्याणी भी अपनी वीरता प्रदर्शित करके पर्वतेश्वर को प्रभावित करना चाहती हैं पर नन्द किसी की बात को स्वीकार नहीं करता हैं। चाणक्य यही पर नन्द वंश के विनाश की प्रतिज्ञा करता हैं और बन्दी बन जाता हैं।

छठे दृश्य में अलका, मालविका और सिंहरण रंगमंच पर उपस्थित होते हैं। मालविका अलका को एक उदयाण्ड का एक मानचित्र देती हैं। सिंहरण अलका की सहायता से सिन्धु पर बने सेतु के मानचित्र को लेकर मालविका के साथ मानव चला जाता है। अलका गांधार में विद्रोह करने के लिए निकल पड़ती है अलका को राजद्रोही समझकर बन्दी बना लिया जाता हैं और गांधार नरेश के पास चली जाती हैं।

सातवे दृश्य में चाणक्य बन्दी अवस्था में राष्ट्र-कल्याण और आर्यावर्त के गौरव की रक्षा के लिए चिन्तित है। बन्दीगृह के वररूचि और राक्षस उसे समझाने जाते हैं परन्तु वह स्पष्ट कह देता हैं कि 'जाना तो चाहता था-तक्षशिला पर तुम्हारी सेवा के लिए नहीं और सुनो, पर्वतेश्वर का नाश करने लिए तो कदापि नहीं।' उसी समय चन्द्रगुप्त उन्हें बन्दीगृह से मुक्त कराता हैं।

आठवें दृश्य में गान्धार नरेश अलका और आम्भीक प्रवेश करते हैं। अलका बन्दिनी रूप में अपन पिता से दण्ड मिलने की आज्ञा चाहती है। अन्त में वह राष्ट्र-प्रेम का दीप प्रज्वलित करती हुई अपने भाई को कुलद्रोही बताती हुई राष्ट्र-रक्षा के लिए पिता से आज्ञा मांगकर घर त्यागकर चली जाती है।

नवं दृश्य में पर्वतेश्वर की सभा का वर्णन है। उसमें केवल चाणक्य और पर्वतेश्वर का ही वार्तालाप है। चाणक्य की उद्धत बातों से क्रोधित होकर पर्वतेश्वर उसे अपनी राज्य-सीमा से बाहर निकल जाने को आज्ञा देता हैं।

दसवें दृश्य में अलका और सिल्यूक्स की भेंट होती है। इसी समय चाणक्य और चन्द्रगुप्त आते हैं। इन दोनों का साक्षात्कार सिल्यूक्स से होता है। बाघ से अपनी रक्षा सिल्यूक्स द्वारा हुई मानकर चन्द्रगुप्त उसके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता है। अलका इसके उपरान्त महात्मा दाण्ड्यायन के आश्रम में चली जाती हैं।

ग्यारहवें दृश्य में दाण्ड्यायन ऋषि का आश्रम है जो महान भारतीय दार्शनिक है। इसी समय यवर सैनिक आतें हैं और ऋषि दाण्ड्यायन निर्भीकतापूर्वक सिकन्दर के पास जाने के लिए मना कर देते हैं। इसी मध्य में आचार्य चाणक्य, चन्द्रगुप्त और अलका का प्रवेश होता हैं। अंत में महात्मा दाण्ड्ध्यावर चन्द्रगुप्त को भारत के भावी सम्राट होने के विषय में भविष्यवाणी करते हैं। यहीं पर यह दृश्य समाप्त हो जाता है।

द्वितीय अंक

द्वितीय अंक के प्रथम दृश्य में सिंधु तट पर वृक्ष के नीचे कार्नेलिया अकेली बैठी है उसका हृदय भारतीय प्राकृतिक शोभा पर विमुग्ध है। भारत भक्ति एव राष्ट्र-भावना से प्रेरित होकर 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' यह गीत बड़ी हो भावविभार होकर गाती हैं। उसी समय कामातुर फिलिप्स ने अपने कामवासना की पूर्ति हेतु बल प्रयोग करना चाहा। तभी चन्द्रगुप्त आकर उसकी फिलिप्स से रक्षा करता हैं। सिकन्दर उसकी सहायता करना चाहता है परन्तु चन्द्रगुप्त उसे स्वीकार नहीं करता वरन् यवनों को 'लुटेरे' और 'हत्या-व्यवसायी' शब्द कह कर उनका अपमान कर देता है। वह आम्भीक से कहता है अनार्य! देशद्रोही! आम्भीक! चन्द्रगुप्त रोटियों के लालच से, घृणाजनक लोभ से सिकन्दर के पास नहीं आया हैं।' अंत में चन्द्रगुप्त फिलिप्स, आम्भीक तथा एनिसक्रिटीज को घायल करके शिविर से बाहर निकल जाता है।

दूसरे दृश्य में झेलम-तट का वन-प्रदेश हैं। यहाँ पर चाणक्य, चन्द्रगुप्त, अलका, सिंहरण और कल्याणी पुनः एकत्र होते हैं। यहाँ चाणक्य अपनी भावी योजना के संबंध में कहता हैं कि सिहरण और अलका को नट-नटी तथा चन्द्रगुप्त को सपेरा और ब्रह्मचारी बनाना होगा तथा पर्वतेश्वर की सेना में तुम सबका कार्य-व्यापार होगा, उसी सेना में मगध राजकुमारी कल्याणी पुरुष-वेश धारण करके अपनी पृथक छावनी डाले हुए है।' यहाँ चन्द्रगुप्त और कल्याणी एक दूसरे को पहचान लेते हैं।

तृतीय दृश्य में युद्धक्षेत्र का वर्णन हैं। सिकन्दर और पर्वतेश्वर के युद्ध में पर्वतेश्वर को बन्दी बनाया जाता हैं और अंत में दोनों के बीच संधि हो जाती हैं। चन्द्रगुप्त और कल्याणी वहाँ से चले जाते हैं। सिंहरण और अलका को सिंहरण आकर बंदी बनाता हैं और उन्हें सिकन्दर की सहमति से पर्वतेश्वर के शिविर में रखा जाता हैं।

चौथे अंक में मालव में सिंहरण के उद्यान का एक दृश्य हैं। यहाँ मालविका और चन्द्रगुप्त का वार्तालाप होता है। इसी बीच में वहाँ चाणक्य का प्रवेश होता हैं। चन्द्रगुप्त शूद्रकों की सेना का सेनापति बनता हैं। अंत में मालविका और चन्द्रगुप्त के संवाद से यह दृश्य समाप्त हो जाता है।

पंचम दृश्य में रंगमंच पर मगध में नन्द की रंगशाला हैं, जहाँ की नन्द प्रवेश करता हुआ हमें दृष्टिगत होता हैं। यद्यपि नंद और सुवासिनी बातचीत करते हैं, लेकिन नंद का हृदय आशंकित हैं, क्योंकि उसको उससे यह सूचना मिलती है कि उसने सेनापति मौर्य को आजीवन अन्धकूप का दण्ड दिया है। इसलिए वह राक्षस के अभाव को भुलाने के लिए मदिरा पीकर उन्मत्त हो जाता हैं। इसके साथ ही-यह भी स्पष्ट हो जाता है कि सुवासिनी राक्षस से प्रेम करती हैं और नंद से वह घृणा करती है। अंत में संकटकाल से प्रेमी राक्षस सुवासिनी को रक्षा करता हैं।

पष्ठ दृश्य में कुसुमपुर का प्रान्त भाग दिखलाया जाता है जहाँ कि चाणक्य मालविका और अलका वार्तालाप कर रहे हैं। चाणक्य मालविका को नृत्य कला के आश्रय से नर्तकी बनाकर नन्द की रंगशाला में राक्षस की मुद्रा से मुद्रित जाली पत्र प्रेषित करता है। चाणक्य को पूर्ण विश्वास है कि मगध की विजय अवश्य होगी। कुसुमपुर को देखकर उसको अपना बचपन याद आ जाता है और वह लम्बा स्वगत-कथन कह जाता है। और, तब वहीं पर सुरंग तोड़कर शकटार रहस्यमय ढंग से प्रवेश करता है। शकटार की वेदना भरी अभिव्यक्ति के बाद शकटार और चाणक्य मंगध शासन को उलट देने को प्रतिज्ञा कर लेते हैं। यहीं पर दृश्य समाप्त हो जाता है।

सप्तम दृश्य के प्रारम्भ में नन्द के राजमन्दिर को एक प्रकोष्ठ दिखलाई देती है, जहाँ नन्द एकांत में विचारमग्न दिखलायी देता है। उसी समय वररुचि को साथ लिए हुए चन्द्रगुप्त की माता अपने पति और पुत्र के लिए न्याय की याचना करने आती है जिसे नन्द ठुकरा देता है। इस पर सेनापति की पत्नी उसे 'तोरनपुत्र' और रक्त रंगे हाथों से महापम नन्द को हत्यारा होने का उलाहना देती हैं। इस पर नन्द उसे अपमानित करना चाहता है परन्तु वररुचि उसकी रक्षा करता है और नन्द दोनों को षड्यन्त्रकारी समझकर उन्हें बन्दी बना लेता है। इसी समय अमात्य राक्षस की जाली मुद्रा वाले पत्र की सूचना मिलती है। इसी अभियोग में मालविका को भी बन्दिनी बना लिया जाता हैं। अंत में नन्द विचलित भाव से सोचता हुआ मंच पर रह जाता है। यहीं पर यह दृश्य की समाप्ति हो जाती है।

अष्टम दृश्य के प्रारम्भ में पर्वतेश्वर की सीमान्तर की सूचना चाणक्य को देता हैं तथा यह भी बतलाता है कि द्वन्द-युद्ध में फिलिप्स मारा गया है और समस्त उत्तरापथ में इस समाचार से बहुत प्रसन्नता व्यक्त की जा रही हैं। इसी समय सिकन्दर की मृत्यु का भी समाचार मिलता हैं। तभी अलका प्रवेश करती हैं, जो नन्द के प्रकोष्ठ में हुई घटनाओं की सूचना देती हैं। इसके साथ-साथ वह नगर भर में नन्द के अत्याचारों का भी वर्णन करती है। तभी बंदी बंदीगृह से गुफा के रास्ते निकलकर चाणक्य से मिलकर प्रतिशोध लेने के लिए तत्पर हो जाते हैं। इसी समय वहां चन्द्रगुप्त प्रवेश करता है और उसके साथ हो नन्द के अत्याचारों से पोड़ित नागरिक भी प्रवेश करतें हैं। शकटार की रक्षा करने का उत्तरदायित्व चन्द्रगुप्त अपने ऊपर ले लेता हैं। अंत में वररुचि चाणक्य की परिस्थिति- जन्य बाते होती हैं। इसके साथ ही दृश्य समाप्त हो जाता हैं।

नवम् दृश्य के प्रारम्भ में नन्द की रंगशाला दृष्टिगत होती है जहाँ सुवासिनी और राक्षस बन्दी वेश में प्रवेश करते हैं। राक्षस नन्द को यह विश्वास दिलाता है कि यह पत्र उसने नहीं लिखा है लेकिन, मुद्रा दिखलाकर नन्द उसका मुहँ बंद कर देता हैं। उसी समय सारे नागरिक उत्तेजित हो जाते हैं और नन्द पर अनेक आरोप लगाते हैं। इसी समय चाणक्य प्रवेश करता है, जो अपनी खुली हुई चोटी दिखलाता अंत में नंद अपनी प्यारी बेटी कल्याणी को सामने देखकर क्षमा मांगता हैं। पर, इतने में ही शकटार वध कर देता है। उसी समय सर्वसम्मति से चन्द्रगुप्त का सिहासनाभिषेक कर दिया जाता है।

तृतीय अंक

तृतीय अंक में नौ दृश्य हैं। इसमें नदंकुल के उन्मूलन की कथा है। चाणक्य अपनी कूट-बुद्धि के बल से एक और चन्द्रगुप्त को सर्वशक्ति समपन्न बनाता है तो दूसरी ओर राक्षस को छलता है। सुवासिनी को बन्दी बनाने का असत्य

समाचार फैला दिया जाता है। चाणक्य चतुराई से राक्षस की मुद्रिका ले लेता हैं। साथ ही एक ओर वह पर्वतेश्वर को आत्महत्या से रोककर उसे स्वपक्ष में मिला लेता है तो दूसरी ओर सिकन्दर को सम्मानपूर्वक विदाई देकर उस स्थान का भार सिंहरण को सौंप दिया जाता है। अलका तथा सिंहरण का विवाह सम्पन्न होता है। चाणक्य अपने बुद्धि-चातुर्य से मगध में जन-क्रान्ति हंतु शकटार, मौर्य सेनापति तथा चन्द्रगुप्त की माता के साथ मगध में उपस्थित होता है और राक्षस की मुद्रिका की सहायता से वह राक्षस तथा सुवासिनी को विद्रोही प्रमाणित कर देता है। एक ओर चाणक्य नन्द को मूर्ख बनाता है तो दूसरी ओर जनता में जागृति पैदा करता है। जनता नन्द को नृशंसता का विरोध करती है। आवेश में आकर शकटार अपने सात पुत्रों की हत्याओं का बदला लेने हेतु नन्द का वध कर देता है। इसके बाद च्रन्द्रगुप्त मगध का सम्राट पद सुशोभित करता है।

चतुर्थ अंक

चतुर्थ अंक में चौदह दृश्य हैं। इसमें चन्द्रगुप्त द्वारा राज्य शासन को निष्कटक बनाने और उसे साम्राज्य का वृहद रुप देने की कथा है। नन्द की पुत्री कल्याणी पहले पर्वतेश्वर का वध करती है. फिर चन्द्रगुप्त के प्रति अपना प्रेम अभिव्यक्त करके अपने पिता को हत्या के विरोध में स्वयं भी आत्महत्या कर लेती है। दूसरी ओर चन्द्रगुप्त का विजयोत्सव न मनाए जाने के कारण से रुष्ट हुए चन्द्रगुप्त के माता-पिता वन चले जाते हैं। आचार्य चाणक्य इसकी परवाह नहीं करते वह कहते हैं 'परिणाम में भलाई ही मेरे कार्यों की कसौटी है' चाणक्य चन्द्रगुप्त के प्राणों की रक्षा का भार मात्तविका को सौंपते हैं। गिल्यूक्स राक्षस को अपने साथ मिलाकर चंद्रगुप्त पर आक्रमण की योजना बनाता है परन्तु चाणक्य की दूरदर्शिता के कारण उसे परास्त ही होना पड़ता है। चन्द्रगुप्त की शय्या पर मालविका को सुलाया जाता है। आम्भीक सिल्यूकस से युद्ध करता हुआ वीरगति को प्राप्त होता है। चन्द्रगुप्त तथा सिल्यूकस में संधि होती है। भारत तथा ग्रीक में मैत्री, सद्भाव और सौहार्द की कामना से चाणक्य सिल्यूकस की पुत्री कार्नेलिया का विवाह चन्द्रगुप्त से करा देते हैं और स्वयं राजनीतिक क्षेत्र से विदा लेते हैं।

इस प्रकार चन्द्रगुप्त का कथानक पच्चीस वर्षों के इतिहास को समेटे हुए है। प्रसाद ने अत्यधिक कुशलता से नन्दवश के उन्मूलन, सिकन्दर के आक्रमण और चन्द्रगुप्त के राज्यारोहण की कथा को विस्तार दिया है। सिंहरण तथा अलका को कथा, पर्वतेश्वर की कथा, राक्षस तथा सुवासिनी की कथा तथा आम्भीक की प्रासंगिक कथाएँ मुख्य कथा के विकास में सहायक सिद्ध हुई हैं। समग्र रुप में नाटक की कथावस्तु आकर्षक सुसम्बद्ध और रोचक है। ऐतिहासिकता के साथ-साथ नाटककार ने इसमें कल्पना का समावेश करके इसे अधिक रोचक बना दिया है।

डॉ. गोविन्द चातक के शब्दों में 'यह मानना पड़ेगा कि प्रसाद ने इस नाटक को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में जिस रूप में परिकल्पित किया है उसमें उन्हाने ऐतिहासिक तथा समसामयिक चेतना को पकड़ने का पूरा प्रयत्न किया है।'

3.3.1 चन्द्रगुप्त नाटक : उद्देश्य

प्रत्येक साहित्यिक कृति का काई न कोई उद्देश्य होता है। नाटक का भी कोई न कोई उद्देश्य अवश्य होता है। नाटक का मुख्य उद्देश्य पाठकों का मनोरंजन कर उन्हें आनंदित करना, रसासिक्त करना है। प्रसाद जी के समस्त नाटकों का उद्देश्य भारतीय इतिहास के महत्त्वपूर्ण अप्रकाशित अंशों का चित्रण करना है। इस सम्बन्ध में स्वयं प्रसाद जी ने लिखा है, 'मेरी इच्छा भारतीय इतिहास के अप्रकाशित अंशों में से उस प्रकाण्ड घटनाओं का दिग्दर्शन करने की है, जिन्होंने हमारी वर्तमान स्थिति को बनाने का बहुत कुछ प्रयत्न किया है और जिस पर कि वर्तमान साहित्यकारों की दृष्टि कम पड़ी है।'

चन्द्रगुप्त नाटक के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

1. राष्ट्र-प्रेम का संदेश- चन्द्रगुप्त नाटक राष्ट्र-प्रेम एवं स्वदेश-प्रेम की भावना से ओतप्रोत है। बाबू गुलाबराय ने लिखा है कि 'चन्द्रगुप्त नाटक में तत्कालीन इतिहास को राष्ट्रीयता के ढाँच में ढालने का सफल प्रयास किया गया है।' वर्तमान के लिए, प्रसाद जी का संदेश था-भारतीय अतीत का गौरवगान और राष्ट्रीयता की भावना का प्रसार करना।

प्रसाद जी भारत के प्राचीन गौरव का गान करने वाले राष्ट्रीयता के चटक रंग में रंगे ऐसे कुशल नाटककार हैं जिन्होंने भारतीय इतिहास के उन्नत हिन्दूकाल की मुख्य घटनाओं को अपने नाटकों की कथावस्तु के लिए चुना है। यह भारत का अतीत काल, वह स्वर्ण-युग है, जिस पर कोई भी देख गर्व कर सकता है। इस सम्बन्ध में डॉ. शान्तिस्वरूप का मत द्रष्टव्य है-'प्रसाद के नाटक एक और अतीत की स्वर्णिम झाँकी देकर हमारी सोई हुई राष्ट्रीय-भावना जाग्रत करते हैं। अतीत के प्रति गौरव जगाकर हम में आत्म-विश्वास जगाते है और दूसरी ओर अतीत की समस्याओं को वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में देख यथासम्भव उनका समाधान भी देते हैं, हमें चेतावनी देते हैं कि हम पुरानी भूलों को न दोहराये। वह वर्तमान की विभीषिकाओं और विषमताओं से भागकर अतीत की सुखद, विश्रान्तिमय गोद में नहीं बैठे हैं। इस के विपरीत उन्होंने अपने नाटकों द्वारा अतीत के पटल पर एक स्वतन्त्र और सगठित राष्ट्र की योजना रंगने का प्रयास किया है। चन्द्रगुप्त नाटक में एक देश, एक राष्ट्र का संदेश है।'

चन्द्रगुप्त नाटक के पात्र भी राष्ट्रीय-भावना से भरे पड़े है। प्रसाद ने स्त्री और पुरुष दोनों ही पात्रों को देश-भक्त एवं राष्ट्र भक्त के रूप में प्रस्तुत किया है। इस नाटक के चाणक्य सिंहरण चन्द्रगुप्त और अलका के माध्यम से प्रसाद जी ने अपनी राष्ट्रीय-भावनाओं को साकार रूप प्रदान किया है। नाटक के आरम्भ में ही सिंहरण का देश प्रेम देखिए 'मालवों को उतनी अर्थशास्त्र की आवश्यकता नहीं जितनी अस्त्र-शस्त्र की है। चाणक्य अपने शिष्यों को राष्ट्रीयता की शिक्षा देते हुए कहते हैं जो प्रान्तीयता तथा साम्प्रदायिकता से ऊपर हैं-'तुम मालव हो और यह मागध यही तुम्हारे मान का अवसान है न? परन्तु आत्म-सम्मान इतने से सन्तुष्ट नहीं होगा। मालव और मागध को भूलकर जब तुम आर्यव्रत का नाम लोगे तभी यह मिलेगा।' आर्यावृत की वह बालिका अलका अपने भाई आम्भीक का विरोध करती है क्योंकि वह विदेशी शत्रुओं का सहायक है। वह राजमहलों के वैभव-विलास को त्यागकर जनमात्र में स्वदेश-प्रेम की भावनाएँ जाग्रत करती है। 'वीर नागरिकों। देश-पद दलित होने जा रहा है। 'इतना ही नहीं, वह स्वतन्त्रता की पुकार बताती हुई कहती है-

हिमाद्रि तुग श्रृंग से,
प्रबुद्ध शुद्ध भारती,
स्वयंप्रभा समुज्ज्वला
स्वतन्त्रत्ता पुकारती।

सिंहरण अपनी देश-भक्ति का परिचय देता हुआ, कहता है 'मेरा देश मालव नहीं गान्धार भी है। यही क्या समग्र आर्यवर्त है।' इससे स्पष्ट है कि नाटककार ने 'चन्द्रगुप्त' नाटक के माध्यम से अपने स्वदेश-प्रेम को साकार करते हुए राष्ट्रीयता एवं स्वदेश-भक्ति का पावन संदेश दिया है।

2. भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता को उजागर करना - प्रसाद जी हिन्दी के प्रथम ऐतिहासिक सांस्कृतिक नाटककार हैं। इस विषय में आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी लिखते हैं, 'प्रसाद जी के सभी नाटक सांस्कृतिक हैं. वे देश के समृद्धि के प्रतिरूप हैं। उनमें केवल यथातथ्य चित्रण नहीं है, उनका सांस्कृतिक पक्ष भी है। उनमें वर्तमान और भविष्य की छाया विराजमान है। प्रसाद जी में चरित्र-निर्माण द्वारा भविष्य में भी उनकी छाया फैंकने का सामर्थ्य था। उनके पात्र मृत्त अतीत के दिग्दर्शक नहीं हैं वर्तमान के लिए भी वे संदेश लायें हैं।'

प्रसाद ने ग्रीक और भारतीय संस्कृति का संघर्ष चित्रित करके अन्त में भारतीय संस्कृति की विजय दिखाई है। सिंहरण और चन्द्रगुप्त के चरित्र के माध्यम से एक ओर भारतीयों की वीरता, साहस, निर्भीकता. दृढ़ संकल्प आदि का चित्रण किया गया है तो दूसरी ओर भारतीय मानवता पर प्रकाश डाला गया है। आचार्य चाणक्य, चन्द्रगुप्त और सिंहरण को समझाते हुए कहते हैं-'तुम लोगों को समय पर शस्त्र का प्रयोग करना पड़ेगा परन्तु अकारण रक्तपात नीति-विरूद्ध हैं।' चन्द्रगुप्त आचार्य चाणक्य को आश्वासन देते हुए कहता है-'आर्य। संसार भर की नीति और शिक्षा का अर्थ मैंने यही समझा है कि आत्म-सम्मान के लिए मर मिटना ही दिव्य जीवन हैं। गुरूदेव यह चन्द्रगुप्त आपके चरणों की

शपथपूर्वक प्रतिज्ञा करता है, कि यवन यहाँ कुछ न कर सकेंगे।' इस प्रकार गुरू-शिष्य के वार्तालाप द्वारा नाटककार ने भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता ही प्रतिपादित की है। भारतीयों के गुणों पर प्रकाश डालता हुआ चन्द्रगुप्त सिल्यूकस से कहता है-'भारतीय कृतघ्न नहीं होते।' इसी प्रकार 'आर्य लोग किसी निमन्त्रण को अस्वीकार नहीं करते।' आचार्य चाणक्य के माध्यम से ब्राह्मण-धर्म की श्रेष्ठता प्रतिपादित करने के साथ-साथ श्रेष्ठ गुरू की महानता का भी उल्लेख किया गया है। आचार्य चाणक्य निर्भीकतापूर्वक आम्भीक से कहते है-'राजकुमार! ब्राह्मण न किसी के राज्य में रहता है और न किसी के अन्न से पलता है, स्वराज्य में विचारता है और अमृत होकर जीता है। प्रकृति के कल्याण के लिए अपने ज्ञान का दान देता है।'

महात्मा दाण्ड्यायन के माध्यम से ब्राह्मण तप, त्याग, शील और निस्पृहता आदि गुणों की व्याख्या की गई है। एनिसाक्रोटीज जब अपने राजा सिकन्दर का संदेश लेकर महात्मा दाण्ड्यायन के आश्रम में पहुंचता है। तब दाण्ड्यायन कहते हैं 'मुझ से कुछ मत कहो। देखते हो कोई किसी की सुनता है? मैं लोभ से, सम्मान से या भय से किसी के पास नहीं जा सकता। मेरी आवश्यकताएँ परमात्मा की विभूति प्रकृति पूरी करती है। उसके रहते दूसरों का शासन कैसा ? 'मेरी स्वतन्त्र आत्मा पर तुम्हारे देवपुत्र का भी अधिकार नहीं हो सकता।

अलका, कल्याणी और मालविका आदि नारी पात्रों के माध्यम से भारतीय नारी की देशभक्ति, कर्तव्यपरायणता और स्वामिभक्ति पर प्रकाश डाला है। प्रसाद ने विदेशी पात्रों द्वारा भारतीय संस्कृति की प्रशंसा कराकर अपने उद्देश्य को साकार रूप दिया है। सिकन्दर के शब्द दर्शनीय हैं- 'मैं भारत का अभिनन्दन करता हूँ।', मैं तलवार खींचे हुए भारत में आया हृदय देकर जाता हूँ। विस्मय-विमुग्ध हूँ।'

3. नैतिकता सम्बन्धी उद्देश्य - नैतिकता का पाठ पढ़ाना भी शिक्षा का एक उद्देश्य है। चाणक्य, चन्द्रगुप्त, सिंहरण और अलका के चरित्रों से हमें नाटककार ने नैतिक शिक्षा दी है। सिल्यूकस चन्द्रगुप्त की बाघ से रक्षा करता है। इसलिए वह उसके प्राण नहीं लेता। वह उससे पूछता है-'यवन सेनापति मार्ग चाहते हो या युद्ध? मुझ पर कृतज्ञता का बोझ है। तुम्हारा जीवन।' सिकन्दर के घायल हो जाने पर सिंहरण सिल्यूकस से युद्ध न करके सिकन्दर की सेवा का आदेश देता है। सिंहरण कहता है-'यवन दुस्साहस न कर। तुम्हारे सम्राट की अवस्था सोचनीय है, ले जाओ इनकी सुश्रुषा करो।' चन्द्रगुप्त द्वारा कार्नेलिया की रक्षा आदि के उदाहरण नैतिक शिक्षा का प्रतिपादन कर रहे है।

4. युग-बोध का चित्रण एवं युग-समस्याओं का समाधान - लेखक ने चन्द्रगुप्त नाटक में उस युग की अनेक समस्याओं को उजागर किया है। प्रस्तुत नाटक में प्रसाद जी ने राज्यों के पारम्परिक वैमनस्य देश-वासियों का शत्रु समर्थन, राजाओं की विलासिता उच्छृंखलता, धार्मिक संघर्ष और वर्णाश्रम कलह आदि को उठाया है। तथा उनका समाधान भी प्रस्तुत किया है। राज्यों के पारस्परिक वैमनस्य को नाटक के शुरू में सिंहरण के शब्दों में व्यक्त किया है कि 'उत्तरापथ के खण्ड-राज्य द्वेष से जर्जर हैं।' आम्भीक द्वारा यवन पक्ष का समर्थन कराकर लेखक ने देशवासियों की कायरता, गद्दारी आदि का चित्रण किया है। अलका भाई के कुकृत्यों के परिणामों की ओर इंगित करती हुई अपने पिता गांधार-नरेश से कहती है-'कुलपुत्रों के रक्त से आर्यवत की भूमि सिंचेगी। दानवी बन कर जननी जन्मभूमि अपनी संतान को खाएगी। महाराज! आर्यावर्त के सब बच्चे आम्भीक जैसे नहीं होंगे। सब बचे हुए क्षताङ्ग वीर गाधांर को-भारत के द्वार रक्षक को-विश्वासघाती के नाम से पुकारेंगे और उनमें नाम लिखा जाएगा मेरे पिता का। 'नन्द की विलासिता और उच्छृंखलता द्वारा शासक की अयोग्यता सिद्ध की गई है। राक्सस और चाणक्य द्वारा बौद्ध तथा ब्राह्मण-धर्म का संघर्ष चित्रित किया गया है। नंद और चाणक्य के विवाद द्वारा ब्राह्मण-क्षत्रिय कलह दर्शाया गया है।

डॉ. जगन्नाथ शर्मा का कथन है कि 'चन्द्रगुप्त ने जिस प्रकार राष्ट्रीय जागरण का चित्रण उन्होंने किया है और उसका जैसा विस्तार संगठित हुआ है उसके मूल में आधुनिक राष्ट्रीय आन्दोलन का रूप झलकता है। आर्य-पताका लेकर जो अलका देश-प्रेम का अलख जगाती फिरती है, उसमें आधुनिकता का सच्चा रूप दिखाई पड़ता है। चाणक्य, चन्द्रगुप्त और सिंहरण के बीच जिस राष्ट्रीय-भावना की चर्चा होती है, उसका भी यही रूप है। पुरूषों की भांति स्त्रियां

भी जो इतना अधिक देशव्रत का संकल्प लिए दिखाई पड़ती है तथा पुरूषों की चिरसंगिनी बनकर उनके उद्योग में योग दे रही हैं। उसके मूल में भी वर्तमान युग की प्रवृत्ति ही है। बौद्ध-वैदिक धर्मों की ओट में जो नन्द की मूर्ख प्रजा नचाई जा रही है, वह हिन्दू-मुस्लिम भेदभाव का अच्छा चित्रण हैं।'

डॉ. जगदीश चन्द्र जोशी लिखते हैं कि 'गाँधी जी ने विदेशी बहिष्कार के समय कहा था कि हमें ब्रिटिश साम्राज्यवाद से घृणा हो सकती है, ब्रिटेन या अंग्रेज से नहीं। उन्हें हम प्रेम से जीतेंगे और इस संघर्ष में अस्त्र होगा-अहिंसा। यह उक्ति स्वतः ही हमारा ध्यान चाणक्य की उस महान राजनीतिक विषय की ओर आकृष्ट करती है, जिसमें सिकन्दर भारत छोड़कर गया अवश्य, परन्तु भारत से मैत्री का हाथ बढ़ाकर, सिल्यूकस हारकर यूनान लौटा सही, किन्तु भारत को कार्नेलिया के स्नेह-बंधन में बाँधकर भारतीय युद्ध करना जानते हैं, द्वेष नहीं। इन शब्दों में प्रसाद ने भारत के राजनीतिक भविष्य को देख लिया था।'

5. क्षात्र-धर्म के महत्त्व को प्रदर्शित करना - चन्द्रगुप्त नाटक में प्रसाद जी ने क्षात्र-धर्म को सर्वश्रेष्ठ स्वीकार किया है। आचार्य चाणक्य ने नन्द से कहा कि ''समय आ गया है कि शुद्र राजसिंहासन से हट जाएं और सच्चे क्षत्रिय मूर्धाविषिक्त हों।'' चाणक्य एक स्थल पर पर्वतेश्वर को समझाते हैं ''आर्य-क्रियाओं का लोप हो जाने से इन लोगों का वृषलत्व मिला, वस्तुतः ये क्षत्रिय है। बौद्धों के प्रभाव में आ जान इनके श्रौत संस्कार छूट गए हैं अवश्य परन्तु इनके क्षत्रिय होने में कोई संदेह नहीं।' एक जगह चंद्रगुप्त सिल्यूकस से कहता है ''स्वागत सिल्यूकस! अतिथि की सी तुम्हारी अभ्यर्थना करने में हम विशेष सुखी होते परन्तु क्षात्र-धर्म बड़ा कठोर है।'' निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि नाटककार ने प्रस्तुत नारक में क्षत्रिय धर्म को प्रतिष्ठा स्थापित की है।

आक्रमणकारियों के मुख से भी भारत की प्रशंसा कराई है और भारतीय संस्कृति की महत्ता प्रतिपादित की है।

6. आध्यात्मिकता का चित्रण-'चन्द्रगुप्त' नाटक में आध्यात्मिकता का चित्रण भी हुआ है। वैसे भी भारतीय संस्कृति में वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम का विशेष महत्त्व है। प्रसाद जी की विशेषता है कि वे अपनी कृति के अन्त में 'समरस' होने की प्रेरणा अवश्य देते हैं। आचार्य चाणक्य जो 'चन्द्रगुप्त नाटक के कर्णधार और राजनीति के सूत्रधार हैं। अन्त में 'ब्रह्म में लीन' होने के लिए महात्मा दाण्ड्यायन के तपोवन में पहुँच जाते हैं। तपोवन में पहुँच कर सभी को आनन्द की प्राप्ति होती है। सुवासिनी राक्षस से कहती है-''आर्यो का तपोवन इन राग-द्वेषों से परे है।'' वहाँ चाणक्य को 'ब्रहा में लीन' देखकर राक्षस को आश्चर्य होता है परन्तु सुवाधिनी समझाती हैं कि 'यही तो ब्राह्मण की महत्ता है राक्षस! यों तो मूर्खों की निवृत्ति भी प्रवृत्तिमूलक होती है। देखो, यह सूर्य-रश्मियों का-सा रस-ग्रहण कितना निष्काम, कितना निवृत्तिमूलक है।'' यह देखकर राक्षस के मन का कालुष्य, ईर्ष्यो और द्वेष सब समाप्त हो जाता है। वह कहता है-''मेरी इच्छा होती है कि चलकर महात्मा के सामने अपना अपराध स्वीकार कर लूँ और क्षमा माँग लूँ।'' ध्यानस्थ चाणक्य जब आँखे खोलते है तो उन्हें आभास होता है कि, ''मुख्य वस्तु आज सामने आई। आज मुझे अपने अन्तर्निहित ब्राह्मणत्व की उपलब्धि हो रही हैं। देव! आज मैं धन्य हूँ। वास्तव में जिसे प्रभु की अनन्त शक्ति का आभास हो जाए उसका जीवन धन्य हो जाता है। महात्मा दाण्ड्यायन यही तो कहते हैं-''भूमा का सुख और उसकी महत्ता का जिसको आभास मात्र हो जाता है। उसको ये नश्वर चमकीले प्रदर्शन नहीं अभिभूत कर सकते।''

चन्द्रगुप्त के पिता मौर्य ध्यानस्थ चाणक्य का वध करना चाहते हैं परन्तु वे सफल नहीं हो पाए। चन्द्रगुप्त उनके इस नीच कर्म की निन्दा करता है परन्तु चाणक्य क्षमा कर देते हैं और अन्त में उन्हें अपने मार्ग का अनुयायी बनाते हुए कहते हैं-''काषाय ग्रहण कर लो, इसमें अपने अभिमान को मारने का अवसर मिलेगा।'' इतना ही नहीं (मौर्य का हाथ पकड़कर) 'चलो अब हम लोग चले' कहकर वे उन्हें अपने ही साथ ले जाते हैं। इस प्रकार नाटककार ने महात्मा दाण्ड्यायन और आचार्य चाणक्य के माध्यम से 'ब्रह्म शक्ति में लीन होने' की प्रेरणा दी है। अतः आध्यात्मिकता का संदेश भी प्रमुख हैं।

7. विवाह-प्रसाद ने अपने नाटकों में स्त्री-पुरूष के स्वतन्त्र प्रणय का-चाहे वह विवाह-सम्बन्ध में परिणत हुआ या नहीं-पर्याप्त वर्णन किया है। 'चन्द्रगुप्त' में अलका, सुवासिनी, कल्याणी, मालविका और कार्नेलिया के प्रणय-प्रसंग इसके प्रमाण हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि विवाह से पूर्व प्रेम के संबंध में स्त्री और पुरूष दोनों स्वतन्त्र थे। उन दिनों जाति-पाति और देशकाल से परे पारस्परिक प्रेम का हो सम्भवत: अधिक महत्त्व था। ''प्रणायार्थी को कन्या के रूप और गुण का ग्राहक, सच्चा ग्राहक होना चाहिए'' क्योंकि ''विवाह एक सामाजिक नियम का बन्धन है।'' परन्तु विवाह सम्बन्ध में कुल गौरव का भी उस समय ध्यान रखा जाता था। इसीलिए पर्वतेश्वर अपने ''लोक विश्रुत कुल'' की कुमारी का विवाह कायर आम्भीक से नहीं करता और वह स्वयं भी बौद्ध और शुद्र राजा नन्द की कन्या से अपना विवाह करने को तैयार नहीं होता। ''पर्वतेश्वर की कई रानियाँ थी'' यह कथन उस समय प्रचलित बहु विवाह-प्रथा की ओर भी संकेत करता है।

8. उत्सव-भारत के प्राचीन सामाजिक जीवन में उत्सवों का बड़ा महत्व था। 'चन्द्रगुप्त' नाटक के अनुसार नागरिकों के मनाविनोद के लिये आयोजित उत्सवों को 'समाज' कहा जाता था। 'वसन्तोत्सव' की रानी जैसे उल्लेखों से ज्ञात होता है कि सुवासिनी जैसी किसी कला-कुशल सुन्दर स्त्री को उक्त उत्सव की रानी का पद प्रदान किया जाता था औ और उसकी आज्ञा सबको शिरोधार्य होती थी। उस समय में प्रचलित क्रीड़ा-विनोदों में 'अहेर' 'वन-विहार' 'स्वांग' 'नर क्रीड़ा' साधनों का स्पष्ट उल्लेख नाटक में हुआ है।

9. शासन-व्यवस्था - प्रसाद के नाटकों से स्पष्ट हैं कि राज्य राज्य शक्ति आती पिता से पुत्रों के हाथो में आती थी। राजकुमारों को विशेष शिक्षा के लिए पाँच वर्ष तक तक्षशिला जैसे विद्यापीठों में अध्ययन करना पड़ता था। कभी-कभी युवराज या अन्य व्यक्ति राजा का वध करके भी राज्य सत्ता हथिया लेते थे। नंद के प्रसंग में यही बात सिद्ध होती है। 'चन्द्रगुप्त' नाटक में नंद वध के पश्चात चाणक्य राक्षस से कहता है ''सिंहासन शून्य नहीं रह सकता। अमात्य राक्षस सम्राट का अभिषेक कीजिए। और राक्षस ''चन्द्रगुप्त का हाथ पकड़कर सिहासन पर बिठाता है'' परन्तु परम्परा के अनुसार अशौच की अवस्था में कोई भी सिंहासनासीन नहीं हो सकता। अत: चन्द्रगुप्त का यह राज्याभिषेक भारतीय परम्परा के अनुसार नहीं है। इसके अतिरिक्त राज्याभिषेक के समय जिस राजकीय वैभव भी का प्रदर्शन किया जाता था उसके दर्शन भी ''चंद्रगुप्त'' नाटक में नहीं होते।

शासन व्यवस्था में 'परिषद्' का स्थान महत्वपूर्ण होता था। राज्य सक्रान्ति के अवसरों पर शासन चलाने से लेकर राजा परिवर्तन तक के सभी निर्णयों का अधिकार परिषद को था राजा एक मंत्री की सम्पत्ति को भले ही ठुकरा दें, परन्तु परिषद् की आज्ञा के बिना वह कोई महत्त्वपूर्ण कार्य नही कर सकता था। परिषद् का सबसे बड़ा काम राजा को स्वेच्छाचारी होने से रोकना था। चाणक्य का कथन इस दिशा में बढ़ा महत्त्व रखता है ''रमरण रखना होगा कि ईश्वर ने सब मनुष्यों को स्वतंत्र उत्पन्न किया है, परन्तु व्यक्तिगत स्वतन्त्रता वहाँ तक ही दी जा सकती है जहाँ तक दूसरों की स्वतन्त्रता में बाधा न पड़े। यही राष्ट्रीय नियमों का मूल है। वत्स चन्द्रगुप्त स्वेच्छाचारी शासन का परिणाम तुमने स्वयं देख लिया है। अब मंत्री परिषद् की सम्मति से मगध और आर्यावत्तं के कल्याण में लगो।'' 'चन्द्रगुप्त' में परिषद् का चुनाव जनतांत्रिक ढंग से हुआ है। नन्द की मृत्यु के उपरान्त नागरिक जन चन्द्रगुप्त, चाणक्य, वररूचि और शकटार की सम्मिलित परिषद् को घोषणा करते है। इसमें स्पष्ट है कि यह अमात्यों की ही परिषद् नहीं है।

मालवों और क्षुद्रकों के गणराज्यों की परिषदों, उनके स्वरूप और कार्य पद्धति पर भी नाटक में पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। पहले 'विज्ञप्ति' उपस्थित करना, उस पर सदस्यों के तर्क, परिषद द्वारा अधिकार प्राप्त महाबलाधिकृत की प्रार्थना पर गणमुख्य द्वारा 'उत्तरापथ के विशिष्ट राजनीतिज्ञ आर्य चाणक्य के गम्भीर राजनीतिक विचार' सुनने के लिये उन्हें व्यास पीठ पर आने का आदेश देना, परिषद् द्वारा पूर्ण स्वीकृति के उपरान्त गणमुख्य की घोषणा आदि की पद्धति /पूर्ण गणतन्त्रात्मक पद्धति की ओर संकेत है।

राजा प्रथम न्यायाधीश होता था। मगध की राजसभा में नन्द, शगटार, वररूचि, मौर्य, चाणक्य और चन्द्रगुप्त की माँ का न्याय करता है। चाणक्य ने स्वयं भी कहा है–''न्याय करना तो राजा का कर्तव्य है।'' चन्द्रगुप्त स्वयं भी अपने पिता के अपराध को क्षमा न कर न्याय करना चाहता है। इससे पता चलता है कि राजा सर्वोच्च न्यायाधीश होता था और उसका निर्णय अन्तिम होता था। इसके अतिरिक्त 'न्यायाधिकरण' का उल्लेख भी नाटक में हुआ है। 'चन्द्रगुप्त' नाटक के अनुसार नन्द की व्यवस्था में राजद्रोह का दण्ड आजन्म कारावास है। अंधकूप एवं देश निष्कासन दण्ड की व्यवस्था भी नाटक में दिखाई गई है। 'वध के लिये वध' के नियम के अनुसार शकटार के निरपराध पुत्रों की हत्या के बदल मगध की जनता नन्द के वध की माँग करती है।

राज्य व्यवस्था में प्रतिहार, आमात्य, महामात्य 'महाबलाधिकृत' महासंधि विग्रहक आदि के अतिरिक्त गुप्तचरों का भी विशेष योगदान होता था। प्रसाद के सभी गुप्तचर संचार–वर्ग के है। वे समय के अनुसार वेशान्तर कर लेते हैं, कभी नट, कभी सपेरे, तो कभी ब्रह्मचारी और क्षणक बन जाते हैं। 'चन्द्रगुप्त' में गुप्तचरी का काम पुरूषों ने ही नहीं, स्त्रियों ने भी किया है। यह अर्थशास्त्र से अनुमोदित है।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि 'चन्द्रगुप्त' एक श्रेष्ठ सांस्कृतिक नाटक है जिसमें प्राचीन भारतीय संस्कृति का जीवन्त रूप उपलब्ध होता है। भारतीय संस्कृति के विविध पहलुओं का उल्लेख करने के साथ–साथ नाटककार ने तत्कालीन कतिपय समस्याओं को भी उजागर किया है और उनका समाधान भी दिया है। समग्र रूप में सांस्कृतिक नाटक को दृष्टि से 'चन्द्रगुप्त' सफल रहा है। डॉ. शान्तिस्वरूप गुप्त का कथन अक्षरशः सत्य है–''इस प्रकार 'चन्द्रगुप्त' नाटक ऐतिहासिक नाटक ही नहीं है। सांस्कृतिक नाटक भी है। बल्कि यह कहना अधिक उपर्युक्त होगा कि वह ऐतिहासिक से अधिक सांस्कृतिक नाटक है, जिसमें चाणक्य और अरस्तू की बुद्धि तथा भारतीय और ग्रीक संस्कृतियों के संघर्ष में भारत की विजय दिखाई गई है।

स्वयं आकलन के लिए प्रश्न

प्र. 1 चन्द्रगुप्त नाटक का नायक कौन है ?

प्र. 2 चन्द्रगुप्त नाटक का प्रकाशन वर्ष क्या है ?

प्र. 3 'चन्द्रगुप्त' नाटक का प्रधान अंगीरस कौन सा है ?

3.4 सारांश

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि प्रसाद जी ने चंद्रगुप्त नाटक में भारतीय संस्कृति एवं जीवन मूल्यों की श्रेष्ठता प्रतिपादित की है। प्रसाद की मानवतावादी चेतना, 'वसुधैव कुटुम्बकम' का पाठ पढ़ाती है तथा प्रखर राष्ट्रवाद को पुष्ट करती हुई 'चंद्रगुप्त' को एक सोद्देश्य नाटक के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत करती है।

3.5 कठिन शब्दावली

(1) आहवान – पुकार, बुलावा

(2) द्वेष – शत्रुता, बैर

(3) वृषल – शूद्र, नर्तक

3.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

प्र. 1 उत्तर – चन्द्र गुप्त

प्र. 2 उत्तर – 1931 ई.

प्र. 3 वीर रस

3.7 संदर्भित पुस्तकें

(1) चन्द्रगुप्त - जयशंकर प्रसाद

(2) हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं. डॉ. नगेन्द्र

(3) जयशंकर प्रसाद - रमेश चंद्र शाह

3.8 सात्रिक प्रश्न

प्र. 1 चन्द्रगुप्त नाटक के आधार पर प्रसाद की ऐतिहासिक दृष्टि विवेचन कीजिए।

प्र. 2 चन्द्रगुप्त नाटक की रंगमंचीयता की समीक्षा कीजिए।

प्र. 3 चन्द्रगुप्त नाटक के संवादों की विशेषताएं बताइए।

*****

इकाई-4
चंद्रगुप्त एक विवेचन

संरचना

- 4.1 भूमिका
- 4.2 उद्देश्य
- 4.3 चंद्रगुप्त एक विवेचन
  - कथावस्तु
  - पात्र योजना
  - संवाद योजना
  - रंगमंचयिता
  - देशकाल एवं वातावरण
  - इतिहास और कल्पना
  - अतीत और वर्तमान

  स्वयं आकलन प्रश्न
- 4.4 सारांश
- 4.5 कठिन शब्दावली
- 4.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर
- 4.7 संदर्भित पुस्तकें
- 4.8 सात्रिक प्रश्न

इकाई-4
चंद्रगुप्त एक विवेचन

4.1 भूमिका

इकाई तीन में हमने चंद्रगुप्त नाटक के सार एवं उद्देश्य का अध्ययन किया। इकाई चार में हम चंद्रगुप्त नाटक का विवेचन करेंगे। विवेचन के अंतर्गत हम कथावस्तु, पात्र योजना, संवाद योजना, रंगमंचियत इत्यादि का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

4.2 उद्देश्य

इकाई चार का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि

1. चंद्रगुप्त नाटक का विवेचन करेंगे।
2. चंद्रगुप्त नाटक की कथावस्तु क्या है ?
3. चन्द्रगुप्त नाटक की पत्र योजना कैसी है ?
4 चंद्रगुप्त नाटक की संवाद योजना कैसी है ?

4.3 चन्द्रगुप्त-एक विवेचन

बहुमुखी प्रतिभा के धनी जयशंकर प्रसाद छायावाद के प्रमुख कवियों में गिने जाते हैं। प्रसाद जी की विशेषता है कि उनका अध्ययन का क्षेत्र और रचना का क्षेत्र व्यापक रहा है। कवि के रूप में प्रतिष्ठित होते हुए भी प्रसाद जी नाटककार, उपन्यासकार, कहानीकार, निबन्धकार व समालोचक के रूप में भी प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं। उन्होंने अपने नाटकों में अतीत के गौरव को चित्रित किया है। अपनी रचनाओं में अतीत के द्वारा-वर्तमान को समझने का प्रयास किया है। उन्होंने नाटकों में बौद्ध धर्म और हिन्दू धर्म दोनों को ही समाविष्ट किया है। हिन्दी नाटक साहित्य में उनके द्वारा निर्दिष्ट ऐतिहासिक परम्परा देखी जा सकती है। 'चन्द्रगुप्त' जयशंकर प्रसाद की एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक कृति है जिसमें कल्पना और इतिहास का सुन्दर समन्वय देखने को मिलता है।

- **कथावस्तु**

'चन्द्रगुप्त' श्री जयशंकर प्रसाद द्वारा 1931 ई. में रचित प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटक है, जिसकी कथावस्तु भारत पर सिकन्दर के आक्रमण (326 ई.पू.) तथा मगध में नन्द वंश के पराभव एवं चन्द्रगुप्त मौर्य के राजा बनने की ऐतिहासिक घटनाओं से जुड़ी है।

प्रसाद जी ने इस नाटक की रचना जब की तब भारत परतंत्र था और महात्मा गांधी के नेतृत्व में अग्रेजों के विरुद्ध स्वाधीनता आदोलन चल रहा था। साहित्यकार के दायित्व का निर्वाह करते हुए प्रसाद जी ने 'चन्द्रगुप्त' नाटक में भारतीय इतिहास के उस कालखण्ड को नाटकीय घटनाक्रम के रूप में प्रस्तुत किया जिसमें नंद के अत्याचारी शासन के विरुद्ध चाणक्य के निर्देशन में संघर्ष किया गया और अन्ततः उसे परास्त कर चंद्रगुप्त मौर्य को सत्ता सौंपी गई। मगध में आततायी नंद वंश का शासन था जो अपने अहंकार एवं क्षुद्र स्वार्थ के कारण विदेशी आक्रान्ता सिकन्दर (अलक्षेन्द्र) के विरुद्ध पंचनद प्रदेश के शासक पर्वतेश्वर का इसलिए साथ नहीं दे रहा था, क्योंकि उसने नद की पुत्री कल्याणी से विवाह करना अस्वीकार कर दिया था क्योंकि वह उसे शूद्र मानता था। इधर तक्षशिला नरेश अपने पुत्र आम्भीक के प्रभाव में थे। उन्होंने यवनों से उत्कोच (रिश्वत) लेकर पंचनद प्रदेश पर आक्रमण करने के लिए उन्हें मार्ग दे दिया था, क्योंकि वे पर्वतेश्वर से द्वेषभाव रखते थे। इस षड्यन्त्र का पता गुरुकुल के आचार्य चाणक्य एवं मालव के राजकुमार सिंहरण तथा चंद्रगुप्त मौर्य को चल जाता है। आम्भीक की बहिन अलका अपने भाई का विरोध करती है।

चाणक्य समग्र भारत को एक राष्ट्र के रूप में देखने का अभिलाषी है। वह चाहता है कि भारत के छोटे–छोटे गणराज्य एक राजा के अधीन होकर शक्तिशाली राष्ट्र बन जाएं जिससे कोई विदेशी आक्रान्ता भारत पर आक्रमण का दुस्साहस न करे। अपने इस स्वप्न को साकार करने के लिए वह चन्द्रगुप्त को माध्यम बनाता है और अन्ततः अपने इस उद्देश्य में सफल भी होता है।

सिंहरण और अलका के रूप में दो ऐसे पात्र चन्द्रगुप्त नाटक में हैं जो देशभक्ति एवं राष्ट्रीयता की भावना से और ओतप्रोत है और भारतीय नवयुवकों एवं नवयुवतियों को भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय भागीदारी की प्रेरणा प्रदान करते हैं। देश के लिए अलका अपने भाई एवं पिता का भी परित्याग कर देती है। सिंधु देश की राजकुमारी मालविका अलका की सखी है, उसका ह्रदय भी देश प्रेम की भावना से ओतप्रोत है। निश्चय ही प्रसाद जी ने अतीत के पट पर वर्तमान का चित्र प्रस्तुत करते हुए चंद्रगुप्त नाटक के माध्यम से वर्तमान पीढ़ी के युवकों का आह्‌वान किया है कि वे देश की स्वतंत्रता के लिए व्यक्तिगत हितों का बलिदान करने को तत्पर रहें।

मगध के राजा नन्द का भोग विलास में लिप्त रहना तत्कालीन राजा–नवाबों की विलासी प्रवृत्ति का द्योतक है। स्वतंत्रता आंदोलन में नारियों की सहभागिता को चंद्रगुप्त नाटक के पात्र अलका, मालविका के द्वारा प्रतिबिम्बित किया गया है। चन्द्रगुप्त और सिंहरण में कुछ लोगों को नेहरू और सुभाष की छवि दिखती है तो गाधी में 'चाणक्य' की सिकन्दर एवं सैल्युकस उन अंग्रेज शासकों के प्रतीक माने जा सकते हैं जिनकी नीति साम्राज्यवादी थी। जनता का शोषण एवं अत्याचार ही उनका एकमात्र लक्ष्य था।

प्रसाद जी ने इस नाटक में भारतीय संस्कृति एवं जीवन मूल्यों की श्रेष्ठता प्रतिपादित की है। दाण्ड्यायन जैसे महात्मा सिंकदर के समक्ष झुकने को तैयार नहीं होते और उसे अपने ज्ञान से अभिभूत कर देते हैं तो सैल्युकस की पुत्री कार्नेलिया को यह भारत देश अपना लगता है और वह भारत की महिमा इस गीत में प्रस्तुत करती है– **'अरुण यह मधुमय देश हमारा।'** प्रसाद की मानवतावादी चेतना 'वसुधैव कुटुम्बकम' का पाठ पढ़ाती है तथा प्रखर राष्ट्रवाद को पुष्ट करती हुई चन्द्रगुप्त को एक सोद्देश्य नाटक के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत करती है। जिस देश में चाणक्य जैसे कूटनीतिज्ञ, चन्द्रगुप्त और सिंहरण जैसे वीर तथा अलका एवं मालविका जैसी देशभक्त बालाएं होंगी वह निश्चय ही अपने को महिमामण्डित कर लेगा यही 'चन्द्रगुप्त' नाटक का संदेश माना जा सकता है।

- **पात्र-योजना**

नाटक में पात्रों को विशेष स्थान दिया जाता है। पात्रों के द्वारा ही कथा को आगे बढ़ाया जाता है। पात्रों की आपसी बातचीत ही कथा के स्वरूप को निर्धारित करती है। जो बिना पात्रों संभव ही नहीं है। नाटक में विषय विस्तार संभव है। इसीलिए यहां पात्रों की संख्या अधिक होती है। नाटक में घटना व पात्र एक–दूसरे सम्बद्ध होते हैं। नाटक में इतना अवकाश रहता है कि पात्रों की अनेक चारित्रिक विशेषताओं का खुलकर प्रस्तुतीकरण हो सके। जहां तक चन्द्रगुप्त नाटक का सम्बन्ध है तो इसमें भी अनेक पात्रों को चित्रित किया गया है। पुरुष पात्रों और स्त्री पात्रों दोनों की ही संख्या काफी है। फिर भी यदि ध्यान दिया जाए तो पुरुष पात्रों की संख्या स्त्री पात्रों से कहीं अधिक है। प्रसाद जी ने इन पात्रों को अभिव्यक्ति करते हुए इनकी अनेक स्वाभाविक विशेषताओं को उजागर किया है। पात्रों की विशेषता रही है कि पात्र कहीं पर भी अप्राकृतिक प्रतीत नहीं होते हैं। प्रसादजी ने अनेक गुण–दोषों को समान महत्व देते हुए नाटक का वर्ण्य–विषय निर्धारित किया है।

- **संवाद योजना**

नाटक के लिए संवाद महत्वपूर्ण तत्व माना जाता है। संवादों के द्वारा ही पात्र के वार्तालाप करते हुए कथ्य को आगे ले जाते है। बिना सवाद के नाटक नहीं लिखा जाता है। एक आवश्यक सोपान के रूप में नाटक में संवाद को स्वीकार किया जाता है। चन्द्रगुप्त नाटक के सवाद अपने आप में विशिष्ट पहचान रखते है। नाटक के संवाद नाटकीय मापदंड पर खरे उत्तरते हैं। चन्द्रगुप्त में संवादा के अनेक रूप द्रष्टव्य हैं। यह कहना उचित होगा कि नाटक में प्रसाद जी के संवाद संबंधी गुण और दोष दोनों ही देखें जा सकते है।

सबादों के द्वारा पात्रों को चारित्रिक विशेषताओं को **'चन्द्रगुप्त'** नाटक में उद्‌घाटित किया गया है। पात्रों की आपसी बातचीत के अन्तर्गत पात्रों के गुणों आदि का ब्यौरा मिलता है। चन्द्रगुप्त में पात्रों के अनुसार संवाद रचे गए है। पात्र एक मन:स्थिति व परिस्थितियों में जीवन यापन कर रहा है, उसके संवादों में भी इसकी झलक मिल जाती है जैसे चन्द्रगुप्त और चाणक्य के संवादों में कठोरता कार्नेलिया व सुवासिनी के सवादों में कोमलता आदि। जहां एक ओर पात्रों को ध्यान में रखकर संवाद योजना की गई है वहीं दूसरी ओर छोटे वाक्यों के द्वारा भी वर्ण्य–विषय को आगे प्रसारित किया गया है।

कौटिल्य और विष्णुगुप्त के नाम से प्रसिद्ध आचार्य चाणक्य विलक्षण प्रतिभा के धनी थे और असाधारण और बुद्धि के स्वामी थे आचार्य ने अपने बुद्धि, कौशल की बदौलत समूचे नंद वंश का नाश कर चन्द्रगुप्त मौर्य को सम्राट बनाया था। मौर्य साम्राज्य की स्थापना में इनका परम योगदान माना जाता है। आचार्य चाणक्य राजसी ठाठ–बाठ से दूर एक साधारण जीवन व्यतीत करते थे और हमेशा लोगों के हित में काम करते थे। प्रसाद के नाटक **'चन्द्रगुप्त'** में चन्द्रगुप्त और मालविका के संवाद का एक अंग इस प्रकार है:–

चंद्रगुप्त	मालविका।
मालविका	क्या आज्ञा है ?
चंद्रगुप्त	तुम्हारे नाग केसर की क्यारी कैसी है?
मालविका	हरी–भरी!
चंद्रगुप्त	आज कुछ खेल भी होगा, देखोगी।
मालविका	खेल तो नित्य देखती हूँ। न जाने कहा से लोग आते है, और कुछ न कुछ अभिनय करते हुए चले जाते हैं। इसी उद्यान के कोने से, बैठी हुई सब देखा करती हूँ।
चंद्रगुप्त	मालविका, तुमको कुछ गाना आता है ?
मालविका	आता तो है परंतु....?
चंद्रगुप्त	परंतु क्या ?
मालविका	युद्ध काल है। देश में रणचर्चा छिड़ी है आजकल मालव–स्थान में कोई गाना बजता नहीं है।

चन्द्रगुप्त नाटक के मूलतत्वों में कथोपकथन का महत्वपूर्ण स्थान माना जाता है। पात्रों के चरित्र–विकास, वस्तु विन्यास, रस–निष्पात्ति का उत्तमोत्तम साधन संवाद योजना ही है। नाटक की सफलता बहुत कुछ संवादों पर निर्भर रहती है। अरिस्टाटल ने लिखा है कि ''संवाद की भाषा असाधारण होते हुए भी स्पष्ट, सुगम होते हुए भी असाधारण एव चमत्कारपूर्ण होनी चाहिए।''

'चन्द्रगुप्त की संवाद योजना सफल कही जा सकती है। नाटक के प्रथम अक में ही आंभीक और सिंहरण के संवाद का यह चित्र द्रष्टव्य है– आभीक : (पैर पटककर) ओह अहस्य! युवक तुम बंदी हो।

सिंहरण : कदापि नहीं, मालव कदापि बंदी नहीं हो सकता।

इसी प्रकार प्रथम अक में ही अलका और सिंहरण के इस कथोपकथन से उनके चरित्रों का उद्‌घ्याटन होता है–

अलका : मालव तुम्हारे देश के लिए तुम्हारा जीवन अमूल्य है, और वही यहां आपत्ति में है।

सिहरण : राजकुमारी, इस अनुकंपा के लिए कृतज्ञ हुआ। परन्तु मेरा देश मालव ही नहीं, गांधार भी है। यही क्या, समग्र आर्यावर्त है इसीलिए मैं–

इस प्रकार से 'चन्द्रगुप्त' नाटक की संवाद योजना काव्यत्व चिन्तन, संवेगात्मकता, माधुर्य, ओज व्यंग्य आदि कई रंगों का समाहार है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने प्रसाद के संवादों को लच्छेदार, अनाटकीय और गद्य काव्य जैसा बताया है।

- **रंगमंचयिता**

(1) नाटक में अभिनेयता का महत्व - नाटक की सफलता उसको अभिनेयता पर निर्भर है। प्रत्येक सहृदय सामाजिक किसी तथ्य को पढ़कर अथवा सुनकर इतना प्रभावित नहीं होता, जितना प्रत्यक्ष देखकर। इसलिए रंगमंच की आवश्यकता और अभिनय की महत्ता को सभी विद्वानों ने एकमत होकर स्वीकार किया है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी (आलोचना, नाटक, विशेषांक) का मत दर्शनीय... है मानव चरित्र को शक्ति और गति देने में सामूहिक प्रतिक्रिया और प्रेरणा उत्पन्न करने में जीवन का निर्माण करने में जितना कार्य अभिनेय नाटक कर सकता है, उतना दूसरी कोई कलाकृति नहीं।''

(2) चन्द्रगुप्त की अभिनेयता (रगमंच) 'चन्द्रगुप्त' की अभिनेयता के सम्बन्ध में विद्वानों में पर्याप्त विवाद रहा है। कुछ भाषा को अनुपयुक्त, दुरूह और दार्शनिक बताते हैं तो कुछ कथोपकथनों के विस्तार, दृश्य-विभाजन के आधिक्य और काल-योजना के बिखराव की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए 'चन्द्रगुप्त' को अभिनय के अनुपयुक्त सिद्ध करते हैं। सत्यता यह है कि प्रसाद के समय में तीन रंगमंच थे (1) संस्कृत रंगमंच (2) पारसी रंगमंच (3) हिन्दी का असगठित रंगमंच। संस्कृत और पारसी रंगमच के विभिन्न तत्वों का समन्वय करते हुए प्रसाद ने हिन्दी के असंगठित रंगमंच को संगठित और सुव्यवस्थित बनाने का प्रयास किया। उस समय का रंगमंच फूहड़ और बाजारू होने के साथ-साथ व्यावसायिक भी था। इसीलिए प्रसाद ने रंगमच को एक ऊर्ध्वमुखी बनाने के लिए तत्कालीन रंगमंच से विद्रोह किया और रंगमंच को एक नवीन दिशा प्रदान की। रंगमंच सम्बन्धी अपना दृष्टिकोण अभिव्यक्त करते हुए प्रसाद ने (काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध) लिखा- ''रंगमंच के संबंध में यह भारी भ्रम है कि नाटक के लिए रंगमंच हो, जो अव्यावहारिक है।'' अपने इसी दृष्टिकोण के कारण प्रसाद ने रंगमंच अथवा नाटक की अभिनेयता पर इतना ध्यान नहीं दिया, जितना ध्यान दृश्यों के विभाजन, घटनाओं के संयोजन, पात्रों के चरित्रोंद्घाटन, गीतों के निर्वाह और काव्यात्मकता के समावेश पर दिया है। इसलिए उनके नाटकों में कुछ दोष आ गए हैं। 'चन्द्रगुप्त' नाटक में भी अभिनय की दृष्टि से अनेक दोष दिखाई पड़ते हैं जो निम्नांकित हैं-

(3) कतिपय दोष- 'चन्द्रगुप्त' नाटक में अभिनय की दृष्टि से पहला दोष दृश्य-विभाजन में है। इसमें कुल 44 दृश्य हैं। जिनके अभिनय में बहुत समय लगेगा। दूसरा दोष दृश्यों की क्रमबद्धता में है। नाटक के प्रारम्भिक दृश्यों-पहला तक्षशिमला के गुरुकुल का, दूसरा मगध सम्राट के विलास-कानन का क्रम ठीक नहीं, क्योंकि दोनों की साज-सज्जा में पर्याप्त समय चाहिए। तीसरा दोष नाटक की काल-योजना में है। दृश्यों के बीच कहीं-कहीं लम्बे समय का अन्तर हो गया है। डॉ. शान्तिस्वरूप गुप्त (प्रसाद के नाटक एवं नाट्य शिल्प) के अनुसार - 'चन्द्रगुप्त' के पाँचवें और छठें दृश्यों के बीच 11 मास का अन्तर है। अंकों का काल-विभाजन भी ठीक नहीं हो पाया है। 'चन्द्रगुप्त' के पहले अंक की घटनाएं एक वर्ष की हैं और चौथे अंक में सोलह वर्ष की घटनाएं ठूंस दी गई हैं। इस अनियमित काल-योजना से नाटक की प्रभावन्विति पर कुप्रभाव पड़ा है। 'चौथा दोष भाषा की संस्कृतनिष्ठता और लम्बे-लम्बे कथोपकथनों में दिखाई पड़ता है। सामान्य दर्शक न ऐसी भाषा समझ सकता है और न लम्बे कथोपकथनों से रसास्वादन कर सकता है। पांचवां दोष गीतों के आधिक्य में मिलता है। पात्रों की अधिक संगीतप्रियता पाठक में नीरसता का संचार करती है। सुवासिनी, कल्याणी, अलका आदि द्वारा गाए गए गीत कहीं तो सार्थक हैं परन्तु कहीं-कहीं निरर्थक और उबाने वाले हैं। जैसे-प्रथम अंक के दूसरे दृश्य में सुवासिनी थोड़ी-थोड़ी देर बाद गाती है, जो दर्शक को नीरस प्रतीत

होता है। छठा दोष नाटक को अतिशय काव्यात्मकता और दार्शनिकता में दृष्टिगत होता है। यदि पात्र ऐसे काव्यात्मक और दार्शनिक स्थलों को अभिनय में स्थान दें तो दर्शक को समझने में बहुत कठिनाई होगी स्पष्ट है कि अभिनय की दृष्टि से 'चन्द्रगुप्त' में अनेक दोष हैं। इसी कारण आलोचकों ने इसके पुनर्लेखन की आवश्यकता पर बल दिया है।

(4) **दोषों का निराकरण**- यह सत्य है कि 'चन्द्रगुप्त' में अभिनय की दृष्टि से अनेक दोष है परन्तु उन दोषों का निराकरण किया जा सकता है। अभिनय की दृष्टि से नाटक का विस्तार कम किया जा सकता है अनावश्यक दृश्य और घटनाएं काटी जा सकती है। संवाद संक्षिप्त किए जा सकते हैं। भाषा की काव्यात्मकता और दार्शनिकता के स्थान पर भाषा सरल, सरस और व्यावहारिक बनाई जा सकती है। श्री जगन्नाथ प्रसाद शर्मा (प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन) के अनुसार ''अभिनय व्यापार की दृष्टि से इस नाटक (चन्द्रगुप्त) का वृत्त-गुम्फन विशेष चमत्कार युक्त है। यदि केवल प्रथम तीन अंक ही चुन लिए जाएं तो भी काम चल सकता है। रसास्वादन में कोई व्याघात नहीं पड़ता।''

(5) **अभिनय के योग्य**- उपर्युक्त दोषों का निराकरण करने के उपरान्त 'चन्द्रगुप्त' नाटक अभिनय के योग्य सिद्ध होता है। नाटक में अनेक स्थल अभिनय की दृष्टि से बहुत प्रभावशाली हैं। प्रथम अंक के पांचों दृश्य अभिनय के योग्य है। प्रत्येक अंक के प्रथम और अन्तिम दृश्य अत्यधिक हृदयग्राही और आकर्षक है। दूसरा अंक पर्याप्त रोचक है। तीसरे अंक का निर्वाह भी उत्तम रीति से हुआ है। प्रसाद ने स्त्री-पात्रों के माध्यम से नाटक को अधिक सरस बना दिया है। नाटक में आवश्यकतानुसार रंगमंच संकेत भी दिए गए हैं। अतः नाटक का अभिनय किया जा सकता है। निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि कतिपय दोषों के होते हुए भी 'चन्द्रगुप्त' को अभिनय के अयोग्य नहीं कह सकते।

दोषों का परिहार करके नाटक सफलतापूर्वक खेला जा सकता है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी (जयशंकर प्रसाद) का मत दर्शनीय है- 'प्रसाद जी नाट्य कला सम्बन्धी स्वतंत्र आधार लेकर चले हैं और उसकी परीक्षा के लिए अनुकूल रगमंच का होना भी आवश्यक है। बिना ऐसा परीक्षा का अवसर दिए यह कहना कि प्रसाद जी की भाषा जटिल है, नाटक नाट्योपयोगी नहीं, प्राथमिक उत्तरदायित्व से मुंह मोड़ना है।'' अन्ततः डॉ. शान्तिस्वरूप गुप्त (प्रसाद के नाटक एवं नाट्य शिल्प) के शब्दों में कह सकते हैं- 'क्रिया-व्यापार का वेग, प्रथम और अन्तिम दृश्यों का आकर्षक स्वरूप श्रृंगार और वीररस पूर्ण संवाद, नाटक के अन्त में विषय और व्यक्तित्व का समन्वित उत्कर्ष, प्रभावान्विति सभी गुण उसके नाटकों को अभिनय के अनुकूल बनाते हैं।

• **देशकाल एवं वातावरण** - 'चन्द्रगुप्त' प्रसाद का ऐतिहासिक नाटक है। ऐतिहासिक नाटकों में परिवेश वातावरण के निर्वाह पर पूर्ण ध्यान अपेक्षित है, अन्यथा नाटक की ऐतिहासिकता नष्ट हो जाती है। देशकाल अथवा वातावरण, चित्रण का मूल अभिप्राय है कि नाटककार अपने नाटक में जिस देश-प्रदेश और जिस युग की कथा कह रहा है, उसका एक साकार और सजीव-सा चित्र अंकित कर दें। उस कथा को, पढ़ते या उसे रंग मंच पर अभिनीति होते देख पाठक या दर्शक अपने वर्तमान को भूल मानसिक रूप से उसी देश और युग में विचरण करने लगे। इसके लिए नाटककार को उस देश और युग की राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक आदि स्थितियों के खण्ड, चित्र प्रस्तुत करने पड़ते हैं। वहां के समाज के रहन-सहन, रीति-रिवाज, तीज-त्योहार, भाव-विचार, आदि का परिचय देना पड़ता है। भाषा और शैली भी ऐसी रखनी पड़ती है जो प्राचीनतः की झलक दें। साथ ही इस बात का भी ध्यान रखना पड़ता है। कि उसमें कोई ऐसी बात या वर्णन न आ जाए जो उस देश और युग के प्रतिकूल प्रतीत हो। इस सबके निर्वाह पर ही नाटक की सफलता असफलता निर्भर करती है। 'चन्द्रगुप्त' नाटक में संकलन त्रय अथवा देश काल के निर्वाह का पूर्ण ध्यान रखा गया है। इसमें निम्नलिखित विशेषताएं विद्यमान हैं-

चन्द्रगुप्त नाटक में देशकाल एवं वातावरण के अध्ययन से पूर्व, परिस्थितियों का ज्ञान आवश्यक है क्योंकि परिस्थितियां ही देशकाल की ओर इंगित करती है।

राजनीतिक परिस्थिति - राजनीतिक दृष्टि से चन्द्रगुप्त का समय पारस्परिक वैमनस्य, ईर्ष्या, फूट और झगड़ों का था। नाटक के प्रारम्भ में ही सिंहरण के कथन से स्पष्ट होता है– 'उत्तरापथ के खण्ड–राज्य द्वेष से जर्जर हैं।' राजा नन्द विलासी था, जो सुरा–सुन्दरी में डूबा रहता था। राजा नन्द और पर्वतेश्वर का विरोध था। तक्षशिला का राजकुमार शत्रु–पक्ष (यवनों) का समर्थन करता है। छोटे–छोटे अनेक गणतन्त्र शासक थे परन्तु उनका मिलना सरल नहीं था। डॉ. शान्तिस्वरूप गुप्त के शब्दों में– 'उस समय देश में दो प्रकार की शासन पद्धति थी– राजतन्त्र और गणतन्त्र। राष्ट्रीयता की भावना केवल प्रान्त या प्रदेश की परिधि तक सीमित थी। गणतंत्रों की स्थिति राजतन्त्रों को अपेक्षा अधिक अच्छी थी। गणतन्त्रीय शासन पद्वति में प्रजाजनों की सम्पत्ति का अधिक मान था और प्रजा के अधिकार भी सुरक्षित थे। राजतन्त्रों के शासन भोग विलास में लिप्त रहकर न केवल स्वयं क्षीण हो रहे थे अपितु नागरिकों को भी पथभ्रष्ट कर रहे थे। यद्यपि प्रजा के हृदय में राजा का आतंक छाया रहा था, पर सच्चा स्नेह, श्रद्धा और सम्मान का भाव न था।' कल्याणी के शब्द इसी पर प्रकाश डालते हैं– 'मैं देखती हूं कि महाराज से कोई स्नेह नहीं करता, डरते भले ही हों। प्रचण्ड शासन करने के कारण उनका बड़ा दुर्नाम है।' इस प्रकार 'चन्द्रगुप्त' में राजनीतिक स्थिति का यथार्थ रूप उभरा है जिससे उस समय के वातावरण का सहज ही ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

सामाजिक परिस्थिति - सामाजिक दृष्टि से चन्द्रगुप्त का समय अशान्ति और पारस्परिक कलह से मुक्त था। देश चार वर्णो– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र में विभक्त था। ब्राह्मण और क्षत्रियों में पारस्परिक ईर्ष्या, द्वेष व संघर्ष का भाव सदैव रहता था। क्षत्रिय आम्भीक ब्राह्मण चाणक्य को अपमानित करता है तो क्षत्रिय नन्द ब्राह्मण नाम से ही घृणा करता है। ब्राह्मण होने के कारण ही शकटार के पुत्रों का वध नन्द द्वारा करवाया गया। इतना ही नहीं, वह चाणक्य के पिता चणक को मगध से निर्वासित कर देता है और उसका ब्रह्मस्व बौद्ध विहार में दे देता है। ब्राह्मण शब्द सुनकर नन्द कह उठता है– 'ब्राह्मण! जिधर देखो कृत्य के समान इतनी शक्ति–ज्वाला धधक रही है।' ब्राह्मण होने के कारण ही नन्द चाणक्य का अपमान करता अन्त में उसकी शिखा पकड़वाकर प्रतिहारी द्वारा बाहर निकलवा देता है। क्षत्रिय और शूद्रों का द्वेष भी दृष्टिगत होता है। पर्वतश्वर नन्द को शूद्र समझता है। इसीलिए वह उसकी पुत्री कल्याणी से विवाह करना अस्वीकार कर देता है। अत: स्पष्ट तत्कालीन समाज की स्थिति अत्यधिक सोचनीय और कलहपूर्ण थी।

धार्मिक परिस्थिति - धार्मिक दृष्टि से देश में बौद्ध और ब्राह्मण धर्म का बोलबाला था। दोनों धर्मों में विरोध था। अमात्य राक्षस बौद्ध धर्म का अनुयायी था तो चाणक्य ब्राह्मण धर्म का समर्थक। राक्षक का मत था– 'केवल सद्धर्म की शिक्षा ही मनुष्यों के लिए पर्याप्त है और वह तो मगध में ही मिल सकती है। इसके विपरीत चाणक्य का विचार था 'परन्तु बौद्ध धर्म की शिक्षा मानव व्यवहार के लिए पूर्ण नहीं हो सकती। भले ही वह संघ विहार में रहने वालों के लिए उपयुक्त हो।' चाणक्य के अनुसार 'राष्ट्र का शुभ चिन्तन केवल ब्राह्मण ही कर सकते हैं।' उस समय धर्म के नाम पर जनता नचाई जा रही थी। शासक अपना स्वार्थ सिद्ध करने हेतु जनता में धर्म के नाम पर परस्पर संघर्ष कर देते थे। नन्द के सम्बन्ध में ब्रह्मचारी का कथन दर्शनीय है– 'वह सिद्धान्त विहीन, नृशंस, कभी बौद्धों का पक्षपाती, कभी वैदिकों का अनुयायी बनकर दोनों में भेदनीति चलाकर बल–संचय करता रहता है। मूर्ख जनता धर्म की ओट में नचाई जा रही है।' अत: स्पष्ट है कि तत्कालीन धार्मिक स्थिति भी हेय थी।

प्रसाद ने चन्द्रगुप्त नाटक में विभिन्न परिस्थितियों का सागोपाग चित्रण करते हुए देशकाल तथा वातावरण का यथार्थ रूप प्रस्तुत किया है। स्थान एवं काल के अंकन के साथ–साथ प्रसाद ने कार्य व्यापार का भी पूरा–पूरा ध्यान रखा है। उन्होंने प्रमुख रूप में तत्कालीन राजनीति की झांकी प्रस्तुत की है जिसके साथ–साथ धार्मिक और सामाजिक वातावरण स्वत: मुखर हो गया है। प्राचीन ऐतिहासिक नामों का उल्लेख करते हुए प्रसाद ने एक और ऐतिहासिकता की रक्षा की है तो दूसरी और वातावरण में प्राचीनता की झलक मिलती है।

● **रस विवेचन** – जय शंकर प्रसाद नाटक को **'कला का विकसित रूप'** मानते हैं। उनके विचार में, नाटक में, 'सब ललित सुकुमार कलाओं का समन्वय है।' यह कला का विकसित रूप इसलिए भी है क्योंकि नाटक में दृश्य और श्रव्य दोनों कलाओं की अनुभूति होती है। प्रसाद नाटक का उद्देश्य यह नहीं मानते कि 'जहां मनुष्य अपने को भूल जाए और तल्लीन हो जाए।' वे प्रश्न करते हैं कि 'क्या यह हृदय-वृत्ति को (Sentiment) उत्तेजित करके मोह लेना मात्र न होगा? क्या विवेक हृदय शुद्ध, बुद्ध-सतय (Reason) से उसका कुछ भी संबंध होगा? उनके अनुसार, 'जो नाटक मनोभाव का विश्लेषण करके चमत्कार के बल से मोहता हुआ, अत: करण में आदर्श सत्य को स्वयमेव विकसित कर देता है, उसे सभी सभ्य जातियों के साहित्य में सम्मान मिला है।' नाटक की यह परिभाषा कई अर्थों में महत्वपूर्ण है। इसमें मनुष्य के मनोभावों की प्रस्तुति के माध्यम से चमत्कार उत्पन्न करने और उसके द्वारा दर्शक के हृदय में सहज रूप से प्रसाद आदर्श को विकसित करने पर जोर देते हैं। सरल शब्दों में कहें तो प्रसाद नाटकीयता और सोद्देश्यता दोनों को नाटक के लिए जरूरी मानते हैं।

प्रसाद ने नाटकों में रस के प्रयोग के संदर्भ में नाटक की भारतीय और पाश्चात्य धारणाओं की तुलनात्मक विवेचना की है। प्रसाद के अनुसार पश्चिम में कला को अनुकरण माना जाता है। जबकि यहां कला में दार्शनिक सत्य की प्रतिष्ठा की जाती है। भरत के हवाले से वे कहते हैं कि **'आत्मा का अभिनय भाव है। भाव ही आत्म चैतन्य में विश्रान्ति पर जाने पर रस होते हैं। जैसे विश्व के भीतर से विश्वात्मा की अभिव्यक्ति होती है, उसी तरह नाटकों से रस की।'** इस कथन का तात्पर्य स्पष्ट है। यहां पर दोहराने की जरूरत नहीं है कि रस सिद्धान्त का विकास नाटक के संदर्भ में ही हुआ था। भरत का रस-निष्पत्ति संबंधी प्रसिद्ध सूत्र 'तन्त्र विभावानुभवव्यभिचारी संयोगाद्रस निष्पत्ति' में तंत्र का तात्पर्य रंगमंच ही है। जहां नाटक का अभिनय प्रस्तुत किया जाता है। भरत के अनुसार नाटक देखते हुए जो हृदय स्थित भाव है, वहीं परिपक्व होकर रस रूप में परिणत होते हैं। जब अभिनेता अपने आत्म चैतन्य में तल्लीन हो जाता है तो उसका भाव रस रूप में परिणत हो जाता है। इस प्रकार पश्चिम में नाटक के केंद्र में अनुकरण होता है जबकि भारत में रस। प्राय: यह बात कही जाती है कि भारतीय नाटकों का अंत हमेशा सुख या आनंद में होता है जबकि पश्चिम में बल दुखांत पर रहता है। प्रसाद का विचार है कि पश्चिम के लोगों को आर्यों के विपरीत उपनिवेशों की खोज में दुर्गम भूभागों में भटकना पड़ा और विपरीत परिस्थितियों से निरंतर संघर्ष करते हुए उन्हें जीवन जीना पड़ा। जीवन की इस कठिनाई पर अधिक ध्यान देने के कारण पश्चिम ने इस जीवन को ही दु:खमय (ट्रेजेडी) समझ लिया। प्रसाद का भी यही मानना है कि **'ग्रीस और रोमन लोगों को बुद्धिवाद-भाग्य से, और उसके द्वारा उत्पन्न दु:ख पूर्णता से संघर्ष करने के लिए अधिक अग्रसर करता रहा। उन्हें सहायता के लिए संघबद्ध होने पर भी, व्यक्तित्व के, पुरूषार्थ के विकास के लिए मुक्त अवसर देता रहा, इसलिए उनका बुद्धिवाद, उनकी दु:ख भावना के द्वारा अनुप्राणित रहा। इसी को साहित्य में उन लोगों ने प्रधानता दी।'** प्रसाद के इस कथन से स्पष्ट है कि पश्चिम के नाटकों में त्रासदी का जोर रहा तो इसीलिए कि उनकी परिस्थितियों ने उन्हें लगातार दु:ख और संघर्ष की ओर अग्रसर किया और चूंकि उन्होंने भावना की बजाए बुद्धि पर अधिक भरोसा किया इसलिए उन्होंने इस दु:ख को ही जीवन का सत्य समझ लिया। खास बात यह भी है कि प्रसाद इसको सिर्फ नाटकों का ही गुण मानते वरन् संपूर्ण पश्चिमी साहित्य की विशेषता मानते हैं।

नाटक और रंगमंच – आमतौर पर यह मान्यता रही है कि नाटकों की रचना रंगमंच को ध्यान में रखकर की जानी चाहिए। लेकिन प्रसाद जी इससे सहमत नहीं है। उनका स्पष्ट मत है कि नाटकों की सुविधा जुटाना रंगमंच का काम है। वे इस बात को स्वीकार नहीं करते कि रंगमंच की नाटक में केंद्रीय स्थिति होती है। भारतीय रंगमंच के विकास पर विस्तार से विचार करते हुए उन्होंने इस बात पर बल दिया है। यहां यह ध्यान दिलाना आवश्यक है कि प्रसाद के नाटकों की रंगमंचीयता को लेकर हमेशा विवाद रहा है। संभवत: प्रसाद जी भी इस बात के प्रति सजग थे। यही कारण है कि उन्होंने नाटकों पर रंगमंच के दबाव को मानने से इन्कार कर दिया। भारतीय रंगमंच की विकास परम्परा पर विचार

करते हुए उन्होंने यह साबित करने का प्रयास किया है कि रंगमंच का निर्धारण नाटक से होता है, न कि रंगमंच नाटक को निर्धारित करता है। उन्हीं के शब्दों में **'रंगमंच की बाध्य-बाधकता पर जब हम विचार करते हैं, तो उसके इतिहास की नियमानुकूलता मानने के लिए काव्य बाधित नहीं हुई। अर्थात् रंगमंचों को ही काव्य के अनुसार अपना विस्तार करना पड़ा।**

● **इतिहास और कल्पना** - प्रसाद के नाटकों का मूल स्रोत इतिहास है, जिन चरित्रों के वे इतिहास से चुनते हैं वे उन्हें इतिहास से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर उस पात्र का खाका ग्रहण करते हैं, शेष कार्य उनकी जीवन-दृष्टि और जीवन-अनुभव, ज्ञान और कल्पना करती है। इतिहास के कंकाल को रूपाकार प्रदान करना और उनको इच्छा शक्ति तथा भावना से पूरित करना प्रसाद की रुप-विधायिनी कल्पना की सबसे बड़ी देन है।

प्रसाद की कल्पना शक्ति बहुत विलक्षण कहीं जा सकती हैं छोटा सा ऐतिहासिक संकेत पाकर वे पात्र को पूर्ण ऐतिहासिक व्यक्तित्व प्रदान करने की क्षमता रखते हैं, चन्द्रगुप्त में दाड्यायन, ऐसा ही पात्र है। इसी प्रकार पूर्णतः काल्पनिक पात्रों का इतिहासीकरण भी प्रसाद की पात्र संरचना पद्धति की देन है। सुवासिनी सिंहरण इसी प्रकार के पात्र है।

इतिहासकार अपनी सीमा के भीतर अतीत को नया जीवन देने में नितान्त असमर्थ रहता है। इसके विपरीत ऐतिहासिक नाटककार अपनी प्रतिभा और सजीव कल्पना के सहारे अतीत को पुनर्जीवित करने में समर्थ है। प्रसादजी ने कृतियों के उद्देश्य के सम्बन्ध में स्वयं लिखा है- 'इतिहास का अनुशीलन किसी भी जाति का अपना आदर्श संगठित करने के लिए अत्यन्त लाभदायक होता है। क्योंकि हमारी गिरी दशा को उठाने के लिए हमारी जलवायु के अनुकूल जो हमारी अतीत सभ्यता है उससे बढ़कर उपयुक्त और कोई भी आदर्श हमारे अनुकूल होगा की नहीं इसमें मुझे पूर्ण संदेह है। मेरी इच्छा भारतीय इतिहास के अप्रकाशित अंश में से उन प्रकाण्ड घटनाओं का दिग्दर्शन कराने की है, जिन्होंने हमारी वर्तमान स्थिति को बनाने का कुछ प्रयत्न किया है। 'चन्द्रगुप्त' नाटक को कथावस्तु में प्रसाद जी ने ऐतिहासिकता की रक्षा के लिए यथाशक्ति प्रयास किया है। जहां कहीं उन्हें इतिहास की बिखरी सामग्री को एकसूत्र में पिरोने की आवश्यकता पड़ी है अथवा रसानुभूति की तीव्रता हेतु अवसर आया है. उन्होंने निःसंकोच कल्पना का सहारा लिया है। किंतु उनकी कल्पना से इतिहास का किंचित अनर्थ नहीं हुआ है। कल्पना ने इतिहास के निर्जीव शरीर में प्राण ही फूंके हैं। उसके स्वरूप को विकृत नहीं किया है। अतः इस नाटक में पात्रों, घटनाओं और स्थानों की ऐतिहासिकता की पर्याप्त रखी हुई है।

प्रसाद जी ने 'चन्द्रगुप्त' में मौर्य वंश, पिप्पली कानन, चन्द्रगुप्त का बाल्य जीवन सिकंदर, मंगध, चन्द्रगुप्त की विजय, शासन व्यवस्था और चाणक्य आदि के इतिहास को देश काल की कसौटी पर कसने का पूर्ण प्रयास भूमिका में किया है। साथ ही नाटक की कथावस्तु भी अधिकाधिक ऐतिहासिक पात्रों एवं घटनाओं को ध्यान में रखकर निर्मित की गई है।

● **अतीत और वर्तमान** - 'चन्द्रगुप्त' नाटक में प्रसाद जी ने विदेशियों से भारत का संघर्ष और उस संघर्ष में भारत विजय की बात उठाई गई है। प्रसाद जी के मन में भारत की गुलामी को लेकर गहरी व्यथा थी। इस ऐतिहासिक प्रसंग के माध्यम से अपने इसी विश्वास को वाणी दी है। यह प्रसाद जी की एक श्रेष्ठ नाटय कृति है। यह नाटक मौर्य साम्राज्य के संस्थापन 'चन्द्रगुप्त मौर्य' के उत्थान की कथा नाटय रूप में करता है। यह नाटक चन्द्रगुप्त मौर्य के उत्थान के साथ-साथ उस समय के महाशक्तिशाली राज्य मग्ध के राजा घनानंद के पतन की कहानी भी कहता है। यह नाटक चाणक्य के प्रतिशोध और विश्वास की कहानी भी कहता है।

यह नाटक राजनीति, कूटनीति षडयंत्र घात-प्रतिघात, द्वेष, घृणा, महत्वकांक्षा, बलिदान और राष्ट्र प्रेम की कहानी भी कहता है। यह नाटक ग्रीक के विश्व विजेता सिकंदर के लालच, कूटनीति एवं डर की कहानी भी कहता है। प्रसाद

जी का यह नाटक प्रेम और प्रेम के लिए दिए बलिदान, त्याग और त्याग से सिद्ध हुई राष्ट्रीय एकता की कहानी को दर्शाता है। वहीं नाटक में मनुष्य के विभिन्न रूपों को देखकर हम बहुत कुछ सीख जाते हैं। साथ ही नाटक में चाणक्य की नीतियों को हम आसानी से नाटक में देख सकते हैं और उससे शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। जयंशकर प्रसाद की यह रचना सही मायने में एक ज्ञानवर्द्धक एवं मनोरंजक पुस्तक है।

स्वयं आकलन के प्रश्न

(1) चंद्रगुप्त नाटक कितने अंकों में विभक्त है।

(2) मालविका किस देश की राजकुमारी है।

(3) 'अरूण यह मधुमेय देश हमारा जहां अंजान क्षितिज को मिलता एक सहारा' किस पात्र की पंक्तियां हैं।

4.4 सारांश

अत: कहा जा सकता है कि जिस देश में चाणक्य जैसे कूटनीतिज्ञ, चंद्रगुप्त और सिंहरण जैसे वीर तथा अलका एवं मालविका जैसी देश भक्त बालाएं होंगी वहां निश्चय ही अपने को महिमा मंडित कर लेगा। यही चंद्रगुप्त नाटक का संदेश माना जा सकता है। वह स्थान जहाँ पृथ्वी और आकाश दोनों मिलते हैं।

4.5 कठिन शब्दावली

(1) विस्फोट – फटना, फूटकर बाहर निकलना

(2) मधुमय – शहद युक्त, मिठण युक्त

(3) क्षितिज – वह स्थान जहां पृथ्वी और आकाश दोनों मिलते हैं।

4.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

(1) चार अंक

(2) सिंध देश की

(3) कार्नेलिया

4.7 संदर्भित पुस्तकें

(1) चन्द्रगुप्त – जयशंकर प्रसाद

(2) हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र

(3) जयशंकर प्रसाद – रमेशचन्द्र शाह

4.8 सात्रिक प्रश्न

(1) चन्द्रगुप्त नाटक की प्रासांगिकता पर विचार कीजिए।

(2) चन्द्रगुप्त नाटक की तात्विक समीक्षा कीजिए।

(3) चन्द्रगुप्त एक ऐतिहासिक नाटक है स्पष्ट कीजिए।

*****

इकाई-5

चंद्रगुप्त नाटक के पात्रों का चरित्र-चित्रण

संरचना

5.1 भूमिका

5.2 उद्देश्य

5.3 चंद्रगुप्त नाटक के पात्रों का चरित्र-चित्रण

- चंद्रगुप्त का चरित्र चित्रण
- चाणक्य का चरित्र चित्रण
- सिंहरण का चरित्र चित्रण

स्वयं आकलन प्रश्न

5.4 सारांश

5.5 कठिन शब्दावली

5.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

5.7 संदर्भित पुस्तकें

5.8 सात्रिक प्रश्न

इकाई-5
चंद्रगुप्त नाटक के पात्रों का चरित्र-चित्रण

5.1 भूमिका

इकाई चार में हमने चंद्रगुप्त नाटक का विवेचन किया। इकाई पांच में हम चंद्रगुप्त नाटक के पात्रों के चरित्र-चित्रण का अध्ययन करेंगे। चरित्र-चित्रण के अंतर्गत हम चंद्रगुप्त, चाणक्य एवं सिंहरण के चरित्र-चित्रण का अध्ययन करेंगे।

5.2 उद्देश्य

इकाई पांच का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि

1. चंद्रगुप्त नाटक के पात्रों में चरित्र-चित्रण कैसा है ?
2. चंद्रगुप्त का चरित्र-चित्रण कैसा है ?
3. चाणक्य के चरित्र की विशेषताएं क्या हैं ?
4. सिंहरण के चरित्र-चित्रण का अध्ययन करेंगे।

5.3 चंद्रगुप्त नाटक के पात्रों का चरित्र चित्रण

- **चन्द्रगुप्त का चरित्र-चित्रण**

हिन्दी नाटक साहित्य में जयशंकर प्रसाद का महत्वपूर्ण स्थान है। वे एक ऐतिहासिक नाटककार के रूप में जाने जाते स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी आदि नाटकों में उनकी नाट्य कला का चरम उत्कर्ष देखने को मिलता है। चन्द्रगुप्त राष्ट्रीय एकता के दृष्टिकोण से लिखी गई नाट्य रचना है।

यद्यपि इस नाट्य रचना में अनेक पुरुष पात्र हैं तथापि सर्वाधिक सशक्त पात्र चन्द्रगुप्त ही है। वही नाटक का केन्द्र बिन्दु है। अधिकांश घटनाएं उसी के चारों ओर केन्द्रित हैं तथा वहीं अन्तिम फल का भोक्ता है अत: चन्द्रगुप्त को ही इस नाटक का नायक माना जा सकता है। नाटक का नामकरण भी उसी के नाम पर किया गया है।

चन्द्रगुप्त मगध के मौर्य सेनापति का यशस्वी पुत्र है। यद्यपि पिप्पली कानन के मौर्य को वृषल (शूद्र) माना जाता था, क्योंकि बौद्धों के प्रभाव से इनमें आर्य क्रियाओं का लोप हो गया था तथापि चाणक्य उसमें राजन्य संस्कृति के सभी लक्षणों को देखता है। चन्द्रगुप्त ने तक्षशिला के प्रसिद्ध गुरुकुल में शिक्षा पाई थी, वही मगध के विलासी एवं शूद्र राजा नन्द को हटाकर मगध का शासक बनता है और अन्तत: वहीं विदेशी आक्रान्ताओं को भारत से बाहर कर पाने में समर्थ होता है। नाटक के प्रधान नारी पात्र कार्नेलिया, कल्याणी और मालविका चन्द्रगुप्त से प्रेम करती हैं। वही भारत सम्राट का पद पाकर अन्तिम फल का भोक्ता बनता है। चन्द्रगुप्त की वीरता और चाणक्य की कूटनीति ने ही तत्कालीन भारत के इतिहास की रचना की है।

चन्द्रगुप्त के चरित्र की प्रमुख विशेषताओं का निरूपण निम्न शीर्षकों में किया जा सकता है-

1. तेजस्वी व्यक्तित्व - चन्द्रगुप्त एक तेजस्वी व्यक्ति है। वह सुन्दर, सुशील, वीर, स्वाभिमानी, गुरुभक्त, साहसी एवं दृढ़ प्रतिज्ञा योद्धा है। न्याय के लिए सघर्ष करना, अबलाओं की रक्षा करना, विपन्नों एवं दुखियों की सहायता करना वह अपना कर्तव्य समझता है। इसलिए वह सब के आकर्षण का केन्द्र बन गया है। सिकन्दर के विरुद्ध युद्ध का संचालन करने के लिए उसे ही सेना का सेनापतित्व सौंपा जाता है। निष्कर्ष यह है कि वह तेजस्वी व्यक्तित्व से सम्पन्न नायक माना जा सकता है। धीरोदत्त प्रवृत्ति का चंद्रगुप्त उन सभी विशेषताओं से युक्त है जो नाटक के नायक में होनी चाहिए।

2. नाटक का नायक - चंद्रगुप्त नाटक का नायक भी चंद्रगुप्त ही है, क्योंकि वही नाटक का केंद्र बिंदु है। इस नाटक की अधिकांश घटनाएं उससे ही संबंधित हैं और नाटक के अधिकांश पात्र भी उसी उससे ही किसी न किसी

रूप से जुड़े हुए हैं। सिकन्दर को सेना को परास्त करना, मगध के शासक नन्द को गद्दी से हटाकर मगध का शासक बनना और फिर सैल्युकस को पराजित करके सम्पूर्ण भारत को एकता के सूत्र में बांध देने का गुरुतर कार्य भी चन्द्रगुप्त के नेतृत्व में ही सम्पन्न हुआ है। यद्यपि चाणक्य का चरित्र भी अत्यन्त भव्य एवं गरिमापूर्ण है, किन्तु वह 'किंग मेकर' की लम्बी भूमिका में ही है। वह एक कूटनीतिज्ञ मन्त्री एवं स्वाभिमानी ब्राह्मण के रूप में दर्शकों पर अपनी छाप छोड़ता है। अत: चन्द्रगुप्त के नायकत्व पर प्रश्न चिन्ह नहीं लगाया जा सकता।

3. वीर एवं साहसी- चन्द्रगुप्त वीर एवं साहसी योद्धा है। नाटक के प्रारम्भ में ही वह राजकुमार आम्भीक को अपनी वीरता का परिचय देता है। अपनी वीरता से वह सैनिकों को परास्त कर अकेला ही चाणक्य को नन्द के बन्दी गृह से मुक्त कराता है और नन्द को सत्ताच्युत कर मगध का शासक बनता है। तक्षशिला में जब राजकुमार आम्भीक सिंहरण को धमकाता है तब चन्द्रगुप्त ही आम्भीक को द्वन्द्व युद्ध में परास्त करता है। जब चाणक्य उसे बालकों जैसी चपलता को त्यागने का परामर्श देता है तब चन्द्रगुप्त कहता है- **''आर्य संसार भर की नीति और शिक्षा का अर्थ मैंने यही समझा है कि आत्मसम्मान के लिए मर मिटना ही दिव्य जीवन है।''**

4. उत्कृष्ट राष्ट्रभक्त - चन्द्रगुप्त के हृदय में राष्ट्र के प्रति भक्तिभाव एवं देश प्रेम की भावना कूट-कूट कर भरी हुई है। जब चाणक्य उसे विदेशी आक्रान्ताओं के बारे में सचेत करता हुआ कहता है कि ये विदेशी भारत भूमि को पददलित करेंगे और आर्यावर्त के सभी राज्य एक-एक कर विदेशियों के अधीन हो जाएंगे तब चन्द्रगुप्त उसे आश्वस्त करता हुआ कहता है **''गुरुदेव विश्वास रखिए यह सब कुछ नहीं होने पाएगा। यह चन्द्रगुप्त आपके चरणों की शपथ पूर्वक प्रतिज्ञा करता है कि यवन यहां कुछ नहीं कर पाएंगे''।**

5. भावुक प्रेमी - चन्द्रगुप्त एवं भावुक प्रेम के रूप में पाठकों को अत्यन्त प्रभावित करता है। नाटक में आए हुए सभी प्रमुख स्त्री पात्र चन्द्रगुप्त से ही सम्बन्धित है। वह मगध की राजकुमारी कल्याणी से बचपन से ही प्रेम करता है। कल्याणी भी उसे बचपन से ही प्रेम करती है, किन्तु चन्द्रगुप्त और कल्याणी परिणय सूत्र में नहीं बंध पाते। सिन्धु देश की राजकुमारी मालविका जो अलका की सेहली है चन्द्रगुप्त से इतना प्रेम करती है कि चन्द्रगुप्त के प्राणों की रक्षा करते हुए अपने प्राण तक दे देती है। यवन सेनापति सैल्युकस की पुत्री कार्नेलिया भी चन्द्रगुप्त से ही प्रेम करती है। चाणक्य की सहमति से उन दोनों का विवाह भी हो जाता है। वस्तुत: यह नाटक राजनीति घटनाओं से संकुल है इसलिए इसमें प्रेम प्रसंग को इतना उभारा नहीं गया है। चाणक्य का अंकुश चन्द्रगुप्त पर सर्वत्र रहा है इसलिए उसका प्रेमी रूप उभर कर सामने नहीं आ पाया है। चन्द्रगुप्त मालविका और कल्याणी दोनों की मृत्यु पर दु:खी होता है और अपनी भावुकता का परिचय देता है।

6. कर्तव्यनिष्ठ - चन्द्रगुप्त की कर्तव्यनिष्ठा अनुकरणीय है। वह अपने कर्तव्यों को भली भांति जानता है और उनका पालन करता है। एक सच्चे मित्र के रूप में सिंहरण की सहायता कर वह अपनी कर्तव्यनिष्ठा का परिचय देता है तो राष्ट्र रक्षा हेतु अपने प्राणों की बाजी लगाने में भी नहीं चूकता। चाणक्य के आदेश का पालन करने में वह निरन्तर सजग रहता है। चाणक्य को बन्दी गृह से अकेले ही मुक्त कराकर वह अपनी गुरुभक्ति का परिचय देता है। इसी प्रकार चीते से राजकुमारी कल्याणी की रक्षा कर वह असहायों, अबलाओं के प्रति अपनी कर्तव्य सजगता का परिचय देता है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि चन्द्रगुप्त इस नाटक का सर्वाधिक सशक्त एवं प्रभावशाली पात्र है और नाटक के नायक के पद का अधिकारी है। चाणक्य की योजनाओं को क्रिया रूप में परिणत करने वाला चन्द्रगुप्त ही है। ऋषि दाण्ड्यायन उसके रूप में भारत के भावी सम्राट को पहचान कर उसकी क्षमता का सही-सही आकलन करते हैं। चन्द्रगुप्त निश्चय ही अपने गुणों से पाठकों को प्रभावित कर अपने व्यक्तित्व की अमिट छाप उन पर छोड़ता है। चन्द्रगुप्त जैसे पात्रों की सृष्टि कर प्रसाद जी ने उन नाटककारों की कोटि में अपने को ला खड़ा किया है जिनके पात्र उन्हीं के समान अमर हो गए हैं।

● **चाणक्य का चरित्र**

प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक 'चन्द्रगुप्त' का सर्वाधिक प्रभावशाली एवं सशक्त पात्र चाणक्य है। वह चन्द्रगुप्त के माध्यम से अपने उद्देश्य को प्राप्त कर मगध के नन्दवंश का उन्मूलन कर भारत को एक सशक्त राष्ट्र के रूप में एकता के सूत्र में आबद्ध करता है। अपनी कूटनीति, अर्थनीति, राजनीति से सम्पूर्ण नाटक का केन्द्र बिन्दु रहने वाला 'चाणक्य' अपने व्यक्तित्व से पाठकों को सर्वाधिक प्रभावित करता है। उसकी चारित्रिक विशेषताओं का उद्घाटन निम्न शीर्षकों में किया जा सकता है।

1. परिचयात्मक विवरण – चाणक्य (विष्णुगुप्त) मगध के ब्राह्मण 'चणक' का पुत्र था। मगध के सम्राट नन्द ने अपने एक मन्त्री 'शकटार' को बन्दी बना लिया था। इस अन्याय के विरुद्ध 'चणक' ने आवाज उठाई तो नन्द ने उसका सर्वस्व छीन लिया तथा अपने राज्य से निर्वासित कर दिया। उस समय 'चाणक्य' तक्षशिला में अध्ययन करने गया था। वहां से लौटकर आने पर उसे अपने परिवार के प्रति हुए अन्याय का पता चला। नन्द ने बौद्ध धर्म अंगीकार कर लिया है और वह ब्राह्मणों का विरोधी है। चाणक्य शकटार की कन्या सुवासिनी से प्रेम करता था किन्तु शकटार को बन्दी बना लिए जाने पर वह भी पेट की ज्वाला शान्त करने हेतु अभिनेत्री हो गई। इस अत्याचार से दुखी चाणक्य मगध साम्राज्य को नष्ट करने का संकल्प करता है– **''मगध ! सावधान! इतना अत्याचार! सहना असम्भव है। तुझे उल्ट दूंगा। नया बनाऊंगा, नहीं तो नाश ही करूंगा।''** चाणक्य ने एक वर्ष तक तक्षशिला में आचार्य पद पर भी कार्य किया चन्द्रगुप्त और सिंहरण दोनों ही उसके शिष्य हैं। चन्द्रगुप्त मौर्य सेनापति का पुत्र था। जबकि सिहरण मालव का राजकुमार था।

कूटनीतिज्ञ – चाणक्य की ख्याति कूटनीति के रूप में अधिक रही है। वह जानता था कि प्रबल शत्रु भारत पर आक्रमण की तैयारी कर रहा है तथा उत्तर भारत के छोटे-छोटे राज्य पारस्परिक द्वेष से जर्जर हैं। वे सिकन्दर की प्रचण्ड शक्ति का सामना नहीं कर पाएंगे। तक्षशिला के राजा यवनों को भारत में प्रवेश के लिए मार्ग दे रहे हैं और बदले में प्रचुर धन उत्कोच के रूप में ले लिया है। मगध साम्राज्य में इतनी शक्ति है यदि वह पर्वतेश्वर की सहायता करे तो सिकन्दर का आक्रमण निष्प्रभावी बनाया जा सकता है, किन्तु सम्राट नन्द की पुत्री का विवाह प्रस्ताव पर्वतेश्वर ने क्षत्रियत्व के अभिमान में ठुकरा दिया है। इस अपमान के कारण नन्द पर्वतेश्वर की सहायता के लिए अपनी सेना चाणक्य के अनुरोध पर भी नहीं भेजता।

चाणक्य ने ही चन्द्रगुप्त को मगध के नन्द राजवंश का समूल विनाश करने को प्रेरित किया। उससे पूर्व चाणक्य की राजनीति के कारण ही पश्चिमोत्तर के छोटे-छोटे राज्य चन्द्रगुप्त के अधीन हो गए थे। चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को इसीलिए मगध का अधिपति बनाया, क्योंकि मगध जैसे बड़े राज्य के नेतृत्व में अन्य छोटे-छोटे राज्य एकत्र हो सकें और विदेशी आक्रान्ता का डटकर मुकाबला कर सकें। चाणक्य दूरदर्शी राजनीतिज्ञ था। वह जानता था कि चन्द्रगुप्त की हत्या का षड्यंत्र मगध में उसके छिपे हुए विरोधी कर सकते हैं इसीलिए वह चन्द्रगुप्त का विजयोत्सव रुकवा देता है। बाद में उसका स्थान बदल देता है और मालविका को उसकी रक्षा का भार सौंपता है। चाणक्य की सफलता का कारण उसकी प्रखर प्रतिभा तथा अन्य स्वभावजन्य विशेषताएं हैं। वह निर्भीक साहसी, सिद्धान्तवादी कर्मयोगी, परिश्रमी व्यक्ति है।

3. सिद्धान्तवादी – चाणक्य कठोर सिद्धान्तवादी व्यक्ति है। उसकी प्रतिज्ञा थी **''दया किसी से न मांगूगा और अधिकार मिलने पर किसी पर दया न दिखाऊंगा''** उसने अपने इस सिद्धान्त का सर्वत्र पालन किया। वह अपना ध्यान लक्ष्य पर केन्द्रित रखता है साधन पर नहीं। उसका कथन है **''चाणक्य सिद्धि देखता है, साधन चाहे कैसा ही हो।''** विपत्ति और विषम परिस्थितिया उसे विचलित नहीं कर पाती। उसकी नीतिकार विपतितम में और भी लहलहाती है।

4. अनुभूतिपूर्ण अन्तःकरण – चाणक्य का हृदय अनुभूतिपूर्ण है। सुवासिनी से वह प्रेम करता था, किन्तु पेट की ज्वाला शान्त करने के लिए सुवासिनी अभिनेत्री बन चुकी है और अब वह राक्षस की प्रेमिका है। सुवासिनी को

खोकर वह स्वयं को कंगाल मानता है– **''वह स्वप्न टूट गया। इस विजन बालुका सिन्धु में एक सुधा की लहर दौड़ पड़ी थी, किन्तु कामना तुम्हारे भूमन्त्र ने उसे लौटा दिया। मैं कंगला हूं।''** सिकन्दर से मैत्री हो जाने के बाद उसकी मंगलमय यात्रा की करता है और यही नहीं अपने प्रबल प्रतिद्वन्द्वी राक्षस को भी वह चन्द्रगुप्त का महामन्त्री बनाता है। राक्षस चाणक्य प्रशंसा इन शब्दों में करता है– **''चाणक्य विलक्षण बुद्धि का ब्राह्मण है। उसकी प्रखर प्रतिभा कूट राजनीति के दिन-रात जैसे खिलवाड़ किया करती है।''** चन्द्रगुप्त और सिहरण को वह यही समझाता है कि तुम्हें मगध और की नहीं अपितु समूचे आर्यावर्त की रक्षा का भार वहन करना है। पर्वतेश्वर समर्थ होकर भी जिस सिकन्दर को रोक नहीं सका उसे साधनहीन चाणक्य ने चन्द्रगुप्त के माध्यम से कर दिखाया। उसका समग्र जीवन कर्म की अनवरत साधना है। निस्पृह कर्म में लीन होकर उसने भारत की अखण्डता एवं राष्ट्रीयता का जो स्वप्न देखा था उसे अन्ततः पूरा कर दिखाया।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि चाणक्य प्रसाद के चन्द्रगुप्त नाटक का एक ऐतिहासिक पात्र है। उसके ऐतिहासिक व्यक्तित्व को अक्षुण्ण रखते हुए प्रसाद जी ने उसे महिमा मण्डित व्यक्तित्व प्रदान किया है। वह निर्भीक, साहसी, स्पष्टवादी, निस्पृह दूरदर्शी, परखी, धुरन्धर कूटनीतिज्ञ विद्वान एवं भावुकक व्यक्ति है तथा कई स्थलों पर तो वह नाटक के नायक चन्द्रगुप्त को भी पीछे छोड़ देता है। निश्चय ही प्रसाद जी ने चाणक्य के रूप में एक महान चरित्र को 'चन्द्रगुप्त' नाटक में प्रस्तुत किया है।

● **सिंहरण का चरित्र-चित्रण** – जयशंकर प्रसाद विरचित 'चन्द्रगुप्त' नाटक में सिंहरण का चरित्र काफी महत्त्वपूर्ण है। वह मालव गण–मुख्य का कुमार है। शिक्षा ग्रहण करने के लिए वह तक्षशिला आता है जहां चाणक्य, चन्द्रगुप्त, अलका एवं आम्भीक से उसकी मुलाकात होती है। अपने गुरु चाणक्य को आज्ञा उसके लिए, शिरोधार्य है, तभी तो वह चाणक्य का प्रिय शिष्य है। सिंहरण के चरित्र में अनेक ऐसी विशेषताएं है जो पाठकों को अपनी ओर आकर्षित करती हैं। उसके चरित्रगत विशेषताओं को निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत रखा जा सकता है–

1. विनम्रता एवं निर्भीकता : मालव–कुमार सिहरण में विनम्रता के साथ–साथ निर्भीकता भी है। आम्भीक जब उससे पूछता है कि ''तुम कौन हो?'' तो बिना डर भय या झिझक के वह जबाव देता है कि ''तक्षशिला गुरुकुल का एक छात्र। इस पर आम्भीक नाराज भी हो जाता है। युद्ध क्षेत्र हो या पर्वतेश्वर का प्रासाद, हर स्थान पर सिंहरण निर्भीकता के साथ अपना कार्य पूर्ण करता हुआ नजर आता है।

2. देश भक्ति और राष्ट्र प्रेमः देशभक्ति और राष्ट्रप्रेम तो सिंहरण के हृदय में कूट–कूट कर भरा हुआ है। यही कारण है कि सिर्फ मालव या गांधार ही नहीं, सम्पूर्ण आर्यावर्त का वह अपनी जन्म भूमि मानता है तथा उसे पतन की राह से निकालकर विकास की राह पर लाने का हरसंभव प्रयास करता है। वह स्वयं कहता है– **''जन्मभूमि के लिए ही यह जीवन है।''** अपनी इस मातृभूमि की रक्षा के लिए सिंहरण आर्य चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त का साथ देता है।

3. वीर एवं साहसी : सिंहरण काफी बौर एवं साहसी योद्धा है। प्रथम अंक के षष्ठ दृश्य में जब यवन अलका के हाथ से मानचित्र छीनना चाहते हैं तभी ऐन मौके पर सिहरण वहां आकर यवन से युद्ध करता है और अलका को उससे बचाता है। यद्यपि इस युद्ध में सिंहरण घायल हो जाता है, लेकिन यवन आक्रमणकारी उसकी वीरता के सामने टिक नहीं पाते हैं और भाग खड़े होते हैं। यहीं नहीं, पजाब नरेश पर्वतेश्वर की यवनों से रक्षा भी सिंहरण अपनी युद्ध–कुशलता से करता है। और तो और, विश्व विजयी सिकदर को भी सिंहरण की वीरता के सामने घुटने टेकने पड़ते हैं।

4. उदारता : सिंहरण उदारता की भी प्रतिमूर्ति है। युद्ध क्षेत्र में जब सिकन्दर चारों तरफ से घिर जाता है और मालव–सैनिक उसकी हत्या करने को उतावले हो जाते हैं तो सिंहरण उसे ऐसा करने से रोकता है और कहता है– **''यह भारत के ऊपर ऋण था। पर्वतेश्वर की प्रति उदारता दिखाने का यह प्रत्युत्तर है।''** यहां सिंहरण की उदारता प्रदर्शित होती है। क्योंकि युद्ध क्षेत्र में अपने दुश्मनों को कोई यूं ही नहीं छोड़ देता, बल्कि उसके प्राण के भूखे हो जाते हैं।

5. मित्रता निभाना : सिंहरण के चरित्र की यह विशेषता ही है कि वह अपनी मित्रता के लिए अपना जीवन दांव पर लगा देने में भी नहीं झिझकता है। सिंहरण और चन्द्रगुप्त अच्छे मित्र हैं। प्रारम्भ से अंत तक सिंहरण अपनी दोस्ती का भली-भांति निर्वाह करता है। सिहरण कहता है- **''चन्द्रगुप्त के लिए यह प्राण अर्पित है; मालव कृतघ्न नहीं होते। इसकी ऐसी भावना के कारण ही चन्द्रगुप्त भी इसे प्राण देने वाला चिर-सहचर है।''**

6. कोमल भावना : वीर सिंहरण के हृदय में तक्षशिला राजकुमारी अलका के प्रति एक कोमल भावना भी है। अलका यवन आक्रमणकारियों से जुझने में सिंहरण की सहायता भी करती है। पर एक ऐसा समय भी आता है जब सिंहरण को प्रेम परीक्षा देनी पड़ती है। अलका कहती है कि **''यदि मैं पर्वतेश्वर से ब्याह करना स्वीकार करू, तो संभव है तुमको छुड़ा दूं।''** ऐसी बात सुनकर सिंहरण व्याकुल हो जाता है और कहा है- **''तुम पर्वतेश्वर की प्रणयिनी बनोगी। अच्छा होता कि इसके पहले मैं ही न रह जाता। मैंने जीवन और मरण में तुम्हारा संग न छोड़ने का प्रण किया था।''**

इस प्रकार प्रेम-विवश सिंहरण की व्याकुलता हमारे सामने परिलक्षित होती है जो बिल्कुल स्वाभाविक और मनुष्योजनित भावना है।

- **चन्द्रगुप्त में नारी पात्रों का चित्रांकन :**

अलका - तक्षशिला की राजकुमारी अलका, नाटक 'चन्द्रगुप्त' की मुख्य नारी पात्र है। उसका चरित्र नि:स्वार्थ राष्ट्रभक्ति, कर्तव्य पालन, सेवामूलक भावना एवं वीरता से ओतप्रोत है। वह चन्द्रगुप्त, सिंहरन तथा चाणक्य से प्रभावित होकर देश सेवा के लिए प्रेरित होती है। वह देश के विरुद्ध जाने वाले अपने भाई आम्भीक को रोकती है। पिता और भाई को अपना विरोधी पाकर गृह भी त्यागती है। यही उसकी नि:स्वार्थ देश भक्ति सिद्ध होती है। उसका भाई यवनों की सहायतार्थ उद्‌भाण्ड में सिंधु पर सेतु बनाता है। अलका मालविका से उसका मानचित्र बनवाकर सिंहरन को देती है। वह अपनी साहस और निर्भीकता का परिचय तब देती है जब यवन सैनिक मालविका से मानचित्र लेने के लिए अलका पर हमला करता है। अलका कहती है- **''परन्तु यह तुम्हें नहीं मिल सकता। यदि तुम सीधे यहां न टलोगे तो शांति-रक्षकों को बुलाऊंगी।''** अलका मालव-दुर्ग की रक्षा का भार स्वयं लेकर अपनी कर्तव्यमूलक भावना का परिचय देती है। अलका दूसरों की प्रेरणाशक्ति है। वह लोगों में देशभक्ति-मूलक उत्साह पैदा करने के लिए आर्य पताका लेकर देश भक्ति गीत गाती है जिससे कि उनमें राष्ट्र भावना का प्रसार हो सके। आन्भीक भी उसके स्वदेशनुरागपूर्ण व्यक्तित्व से प्रभावित होकर अपने पूर्व कार्यों के लिए लज्जित होता है। चाणक्य उसके स्वदेश हित, त्याग और कष्ट के लिए उसकी प्रशंसा करता हुआ आम्भीक से कहता है- **''मेरी लक्ष्मी अलका ने आर्य गौरव के लिए क्या-क्या कष्ट नहीं उठाए।''** अलका में वाकचातुरी एवं व्यवहार बुद्धि यथेष्ट परिमाण में है। वह वन प्रदेश में सैल्युकस को चकमा देकर उसके चंगुल से निकलती है, पर्वतेश्वर को भुलावे में डालकर सिंहरन को छुड़ाती है एवं स्वयं निकल भागती है। यह उसकी कार्य कुशलता का ही परिचय है।

अत: कहा जा सकता है कि अलका में अगाध राष्ट्र भक्ति होने के कारण वह प्रसाद की काल्पनिक पात्र होकर भी नाटक की श्रेष्ठ पात्र सिद्ध होती है।

सुहासिनी : सुहासिनी, मगध के मंत्री शकटार की कन्या है। वह मगध सम्राट नन्द के रंगशाला की नर्तकी है। मगध अमात्य राक्षस के प्रति उसका प्रणय अविचल है। वह राक्षस को हृदय से चाहती है। किसी प्रकार का प्रलोभन उसे अपने मार्ग से अलग नहीं करता। जब मगध सम्राट नंद सुवासिनी से अपना प्रणय निवेदन करता है तो वह कहती है- **''महाराज! मैं अमात्य राक्षस की धरोहर हूँ, सम्राट की भोग्या नहीं बन सकती।''** उसके चरित्र में प्रेम की एकनिष्ठता का ही परिचय मिलता है। सच्ची प्रणयिनी से हटकर भी उसका दूसरा रूप है, वह है- आदर्श का रूप। वह पिता की अनुमति के बिना अपने प्रणय को दबाकर रखना चाहती है। वह नहीं चाहती कि उसके चिर-दुखी पिता

को उसके स्वेच्छापूर्ण आचरण से कष्ट पहुंचे। इसी कर्तव्य को ध्यान में रखकर वह राक्षस से कहती है– **''मैं तुम्हारा प्रणय अस्वीकार नहीं करती। किन्तु अब इसका प्रस्ताव पिता जी से करो।''** अंततः चाणक्य ही सुवासिनी को राक्षस के साथ परिणय की अनुमति देकर उस समस्या का हल कर देता है।

अतः कहा जा सकता है कि वह एक शील, दृढ़, कर्तव्यनिष्ठ नारी है। वह स्वयं हारकर भी अपने व्यक्तित्व को नहीं खोती।

कल्याणी : कल्याणी, मगध राजकुमार नंद की कन्या है। उसमें वीरता, साहस और आत्मसम्मान की भावना प्रबल है। वह नंद के विलासपूर्ण राजमहलों में पली है परन्तु कुत्सित विलास की छाया उसके व्यक्तित्व को छू तक नहीं पाई। वह नारी है परन्तु उसमें नारी भीरूता के स्थान पर असीम साहस एवं वीरता विद्यमान है। वासना से उद्दीप्त पर्वतेश्वर जब उसे पकड़ता है तो कल्याणी उसी का छूरा निकालकर उसका वध करती है।

उसमें आत्म सम्मान की भावना प्रबल है। पर्वतेश्वर द्वारा उससे विवाह सम्बन्ध अस्वीकार किए जाने पर उसके स्वाभिमान पर ठेस पहुंचाता है। पर्वतेश्वर से अपमान का बदला लेने तथा उसे नीचा दिखाने के लिए वह युद्ध भूमि पर पुरुष वेश धारण करके गुल्म सेना लेकर उसके सहायतार्थ पहुंचती है। युद्ध से थके हुए पर्वतेश्वर जब अपनी विवशता स्वीकार करता है तब कल्याणी उसके गौरव को नष्ट करते हुए कहती है– **''इन थोड़े से अर्धजीवी यवनों को विचलित करने के लिए पर्याप्त मगध सेना है। महाराज आज्ञा दीजिए।''** कल्याणी बाल सहचर चन्द्रगुप्त की योग्यता तथा वीरता से प्रभावित होती है परन्तु वह प्रेम का प्रत्युतर प्रेम के रूप में चन्द्रगुप्त से नहीं पाती। चन्द्रगुप्त के प्रति प्रेम की अनन्यता होते हुए भी पितृ–भक्ति की भावना के कारण वह अपने प्रणय पीड़ा को दबा देती है। वह चन्द्रगुप्त से कहती है– **''तुम मेरे पिता विरोधी हुए, इसलिए उस प्रणय की प्रेम पीड़ा को मैं पैरों से कुचल कर दबाकर खड़ी रही। अब मेरे लिए कुछ भी अवशिष्ट नहीं रहा। पिता! लो मैं भी आती हूँ।''** इस प्रकार वह चन्द्रगुप्त को नंद का विरोधी पाकर स्वयं आत्महत्या कर लेती है।

अतः कहा जा सकता है कि कल्याणी एक कर्तव्यशीला, आत्मभिमानी एवं स्वावलम्बी नारी है। उसका चरित्र द्वन्द्व एवं दुख से परिपूर्ण है। साहस के साथ परिस्थितियों का सामना करना उसके चरित्र की विशेषता है।

मालविका :

मालविका, सिंधु देश की कुमारी है परन्तु तक्षशिला की राजकुमार अलका से उसका इतना स्नेह बढ़ जाता है कि वह यहीं रहने लगती है। सरलता एवं सेवाभव उसके चरित्र की विशेषता है। वह अलका को उद्भाण्ड सेतु का मानचित्र देकर अपनी सहानुभूति प्रकट करती है। मालव के युद्ध में भी घायलों की सेवा का कार्य अपने हाथ लेती है। वह शस्त्र बल से नहीं आत्मबल से सेवा व्रत धर्म पालन करती है। वह अलका से कहती है– **''मैं डरती हूं, घृणा करती हूं। रक्त की प्यासी छूरी अलग करों, अलका मैंने सेवा का व्रत लिया है।''** वह चन्द्रगुप्त की वीरता पर आकर्षित होती है परन्तु चन्द्रगुप्त के प्रति उसकी निःस्वार्थ प्रेम भावना है। जब चाणक्य उस पर चन्द्रगुप्त के प्राणों की रक्षा का भार सौंप देता है तब वह अपने प्राणों को न्यौछावर करके उसकी रक्षा करती है। इस प्रकार प्रेम की वेदी में आत्म बलिदान दिलवाकः प्रसाद मालविका के चरित्र को गौरवमयी बना देती हैं।

अतः कहा जा सकता है कि वह प्रणय के लिए सर्वस्व बलिदान करने वाली भावुक स्त्री है जिसका अंत प्रसाद ने अति करूणापूर्ण ढंग से दिखाया है।

कार्नेलिया :

कार्नेलिया सैल्युकस की पुत्री है। कार्नेलिया **'चन्द्रगुप्त'** एवं **'कल्याणी परिणय'** दोनों नाटकों की ही नारी पात्र है। एक विदेशी कन्या होते हुए भी कार्नेलिया का भारतीय संस्कृति से अगाधा प्रेम है। वह कहती है– **''वहीं भारतवर्ष! वहीं निर्मल ज्योति देश, पवित्र भूमि, अब हत्या और लूट से वीभत्स बनाई जायेगी। ग्रीक सैनिक इस शस्यश्यामल पृथ्वी को रक्त रंजित बनायेंगे। पिता अपने–अपने साम्राज्य से प्राणियों का नाश होगा।''** कार्नेलिया को युद्ध विग्रह नापसंद है। इससे उसके चरित्र की कोमलता और सहृदयता का ही पता चलता है। यही नहीं, भारतीय

संगीत एवं दर्शन में भी उसकी गहरी अभिरुचि है। वह चन्द्रगुप्त के तेजस्वी स्वरूप से तो आकर्षित है ही, यवन-शिविर में रहते हुए जब वह फिलिप्स से उसकी मान रक्षा करता है तो उसके हृदय पर कृतज्ञता का भी बोझ पड़ जाता है। कार्नेलिया के चरित्र में सहज उदारता दिखाई पड़ती है उसकी वीरता का परिचय हमें उस समय मिलता है जब भारतीय सैनिक सैल्युकस को पराजित कर यवन शिविर में प्रवेश करते हैं। वह कहती है कि **चिंता नहीं, ग्रीक बालिका भी प्राण देना जानती है। ग्रीक का आत्म सम्मान जिये।** इस प्रकार छूरी निकालकर आत्महत्या के लिए वह सन्नद्ध होती है।

उसके चरित्र से स्पष्ट हो जाता है कि उसमें नारीगत सरलता, कोमलता, सहृदयता, सहानुभूति, भावुकता, आत्मगौरव आदि गुण हैं। वहीं दृढ़ता और वीरता भी विद्यमान है।

स्वयं आकलन के लिए प्रश्न

प्र. 1 चन्द्रगुप्त नाटक किस प्रकार का नाटक है।

प्र. 2 चन्द्रगुप्त नाटक किस भाषा में लिखा गया है।

प्र. 3 चन्द्रगुप्त किस वंश के शासक थे।

5.4 सारांश

सारांश रूप में कहा जा सकता है चंद्रगुप्त एक तेजस्वी व्यक्ति है। चंद्रगुप्त नाटक का नायक भी चंद्रगुप्त ही है। चंद्रगुप्त वीर एवं साहसी योद्धा है। चाणक्य प्रसाद के चंद्रगुप्त नाटक का ऐतिहासिक पात्र है। वह निर्भीक साहसी एवं भावुक व्यक्ति है।

5.5 कठिन शब्दावली

(1) तरूशिखा — वृक्ष की चोटी

(2) तामरस — पद्म, तांबा

(3) पलम — चंदन, दक्षिणी पवन

5.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

प्र. 1 उ. ऐतिहासिक नाटक

प्र. 2 उ. हिंदी भाषा

प्र. 3 उ. मौर्य वंश के

5.7 शब्दार्थ

(1) चन्द्रगुप्त - जयशंकर प्रसाद

(2) प्रसाद के नाटक - सिद्धनाथ कुमार

(3) प्रसाद का नाट्यकर्म - सत्येन्द्र तनेजा

5.8 सात्रिक प्रश्न

प्र .1 चन्द्रगुप्त नाटक के मुख्य पात्र चन्द्रगुप्त की चरित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डालें।

प्र .2 चाणक्य का चरित्र चित्रण कीजिए।

प्र .3 चन्द्रगुप्त नाटक के आधार पर सिंहरण के चरित्र की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

*****

इकाई-6

चंद्रगुप्त नाटक का व्याख्या भाग

संरचना

6.1 भूमिका

6.2 उद्देश्य

6.3 चंद्रगुप्त नाटक का व्याख्या भाग

स्वयं आकलन प्रश्न

6.4 सारांश

6.5 कठिन शब्दावली

6.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

6.7 संदर्भित पुस्तकें

6.8 सात्रिक प्रश्न

इकाई-6

चंद्रगुप्त नाटक का व्याख्या भाग

6.1 भूमिका

इकाई पाँच में हमने चन्द्रगुप्त नाटक के पात्रों के चरित्र-चित्रण का अध्ययन किया। इकाई छः में हम चन्द्रगुप्त नाटक के गद्य भाग की व्याख्या करेंगे।

6.2 उद्देश्य

इकाई छः का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि -

1. चन्द्रगुप्त नाटक की व्याख्या करेंगे।
2. चन्द्रगुप्त नाटक के प्रसंग का अध्ययन करेंगे।

6.3 चन्द्रगुप्त नाटक का व्याख्या भाग

अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहां पहुंच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।
सरस तामरस गर्भ विभा पर नाच रही तरुशिखा मनोहर।
छिटका जीवन हरियाली पर मंगल-कुंकुम सारा।
लघु सुरधनु से पंख पसारे शीतल मलय समीर सहारे।
उड़ते खग जिस ओर मुहं किए समझ नीड़ निज प्यारा।
बरसाती आंखों के बादल बनते जहां भरे करुणा जल।
लहरें टकराती अनन्त की पाकर जहां किनारा।
हेम कुम्भ ले उषा सवेरे भरती हुलकाती सुख मेरे।
मंदिर ऊंघते रहते जब जग कर रजनी भर तारा।

प्रसंग - भारत के अतीत गौरव के गायक प्रसाद जी ने इस गीत में भारत महिमा एवं देश-प्रेम का निरूपण किया है। सिल्यूकस की पुत्री कार्नेलिया भारत से अत्यन्त प्रभावित होकर इसे ही अपना देश और अपनी मातृभूमि मानने लगती है। इस गीत में उसने भारत के अन्तः ब्राह्य सौन्दर्य का उद्घाटन किया है। भारत के निवासियों की उदारता, विशाल हृदयता एवं संवेदनशीलता का बड़ा मार्मिक चित्रांकन इस गीत में किया गया है।

व्याख्या - प्रातःकालीन अरुणिम आभा से भरा हुआ यह समृद्धिशाली हमारा देश भारत है जो अपनी प्राकृतिक शोभा से प्रत्येक व्यक्ति को आकृष्ट कर लेता है। भारतवर्ष की यह संस्कृति और सभ्यता रही है कि उसने अनजान विदेशियों को भी अपना समझकर आश्रय प्रदान किया। जिसे सबने ठुकरा दिया उसे भारत ने अपना लिया। यही कारण है कि अनेक विदेशी आक्रान्ता भारत पर आक्रमण करने आए, किन्तु यहां की प्राकृतिक सुषमा से आकृष्ट यहां की प्राकृतिक होकर यहां के निवासी बन गए।

यहां की प्राकृतिक सुषमा तो अपूर्व ही है। प्रातःकाल जब सूर्य की लाल-लाल किरणे कमल कोश में पड़ती हैं तो जिस अरुणिम आभा का उदय होता है उसे अरुणिमा से युक्त होकर हरे-भरे वृक्षों की चोटियां मनोहर नृत्य सा करती प्रतीत होती हैं। उन हरी-भरी फुनगियों पर छिटकी हुई लाल-किरणें देखकर प्रतीत होता है मानों जीवन की हरीतिमा पर किसी ने लाल-लाल मांगलिक रोली छिटक दी है।

प्रभात बेला में भारत का आकाश छोटे-बड़े हजारों पक्षियों से भर जाता है। इन्द्रधनुषी रंगों वाले पंखों को फैलाकर सुगन्धित पवन का सहारा लेकर जब वे पक्षी आकाश में उड़ते हैं तो उस मनोहर दृश्य को देखकर हृदय प्रसन्नता से भर जाता है। पक्षी भी इस भारत भूमि को अपना नीड़ बनाकर यहां के आकाश में प्रसन्नता का अनुभव करते हैं।

भारतवासी अत्यंत संवेदनशील, भावुक एवं करुणाई प्रवृत्ति के हैं। दूसरे के दु:ख को देखकर उनकी आंखें बादलों की तरह बरसने लगती हैं। करुणा रूपी जल से भरी वे आखें जब अश्रुजल की वर्षा करती हैं, तो भारतीयों की संवेदनशीलता का परिचय दे देती हैं। यह वहीं भारत देश है जिसके तीन ओर सागर है। ऐसा लगता है जैसे सागर की लहरें भी भटकती यहीं किनारा पाकर शान्त हो गई हों।

प्रभात बेला में उषा रूपी सुन्दरी सूर्य रूपी स्वर्ण कलश लेकर तब निकलती है जब रात्रि जागरण के कारण तारे मंदिर भाव लिए ऊंघते से दिखाई पड़ते हैं और तत्पश्चात् एक सुनहले कलश की भांति सूर्य आकाश में उदित हो जाता है।

विशेष : 1. भारत के अतीत गौरव एवं प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण है।

2. प्रकृति चित्रण की छायावादी शैली उल्लेखनीय है।

3. अनजान क्षितिज में लक्षणा शब्द शक्ति एवं मानवीकरण अलार है।

4. तरुशिखा को नृत्य करते हुए दिखाया है, अत: मानवीकरण है।

5. जीवन हरियाली में रूपक है तथा हरियाली प्रसन्नता का प्रतीक है।

6. छिटका जीवन .... सारा में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

7. 'लघु सुर धनु से पंख' में उपमा अलंकार है।

8. 'आंखों के बादल में' रूपक अलंकार की योजना की गई है।

9. 'करुणा-जल' में रूपक है। अर्थ है करुणा रूपी जल।

10. हेमकुम्भ में रूपक एवं उत्पेक्षा अलंकार है। सूर्य को सुनहरा घड़ा माना गया है।

11. उषा का मानवीकरण है, क्योंकि वह प्रात:काल जल भरने के लिए आई है।

12. तारों का मानवीकरण है, क्योंकि उन्हें ऊंघता दिखाया है।

13. संस्कृतिनिष्ठ परिनिष्ठित हिन्दी का प्रयोग किया गया है।

14. शब्द-चयन, नाद सौन्दर्य एवं चित्रात्मक शैली के कारण यह गीत प्रसाद के मधुर गीतों में से एक है।

15. छायावादी शैली का चरम उत्कर्ष विद्यमान है।

16. कार्नेलिया भारत भूमि के प्रति आकृष्ट है तथा इस देश को अपना देश मानने लगी है।

''पौधे अन्धकार में बढ़ते हैं और मेरी नीतिलता भी उसी भांति विपत्ति तम में लहलही होगी। हां केवल शौर्य से काम नहीं चलेगा। एक बात समझ लो, चाणक्य सिद्धि देखता है, साधन चाहे कैसे ही हों। बोलो तुम लोग प्रस्तुत हो।''

प्रसंग - निकट भविष्य में यवनों से भयानक युद्ध होने वाला है। चन्द्रगुप्त और चाणक्य झेलम तट पर सिंहरण की प्रतीक्षा कर रहे हैं। सिंहरण वहां आने पर आचार्य चाणक्य से कहता है कि अब हमें विलम्ब नहीं करना चाहिए और अपने कर्तव्य पथ पर अग्रसर हो जाना चाहिए, क्योंकि विपत्तियों के बादल मंडरा रहे हैं, तब चाणक्य उससे कहता है:-

व्याख्या- जिस प्रकार पौधे अन्धकार में बढ़ते हैं उसी प्रकार विपत्ति रूपी अन्धकार के आ जाने पर ही मेरी नीति रूपी लता वृद्धि को प्राप्त होती है अर्थात् जैसे-जैसे विपत्तियां आएंगी वैसे-वैसे ही मेरी नीति-भी अधिक प्रभावी होती जाएगी। मैं जानता हूँ कि इस समय केवल शौर्य दिखाने से काम नहीं चलेगा। एक बात अच्छी तरह समझ लो कि मैं

तो अपने उद्देश्य पर ध्यान केन्द्रित रखता हूं, चाहे उसके लिए मुझे कैसे ही साधन क्यों न अपनाना पड़े। मेरे लिए साधन उतना महत्वपूर्ण नहीं जितना महत्व सिद्धि का है। जहां शौर्य की आवश्यकता है, वहां शौर्य से काम लिया जाएगा और जहां नीति की आवश्यकता होगी वहां नीति से काम लूंगा। बोलों तुम लोग मेरी योजनानुसार कार्य करने को प्रस्तुत हो?

विशेष - 1. चाणक्य अपने समय का सर्वश्रेष्ठ राजनीतिज्ञ था।

2. चाणक्य का कथन है कि व्यक्ति को अपने उद्देश्य की सिद्धि पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए, साधनों पर नहीं। दृश्य सिद्ध होने पर ही व्यक्ति की सफलता का लोग लोहा मानते हैं।

3. चाणक्य के चरित्र पर इन पंक्तियों से प्रकाश पड़ता है।

4. नीतिलता एवं विपत्ति तम में रूपक अलंकार है।

5. भाषा सरल सहज एवं परिष्कृत हैं।

''फूल हंसते हुए आते हैं, मकरन्द गिराकर मुरझा जाते हैं, आंसू से धरणी को भिगोकर चले जाते हैं! एक स्निग्ध समीर का झोंका आता है, निःश्वास फेंककर चला जाता है। क्या पृथ्वीतल रोने के लिए ही है? नहीं, सबके लिए एक ही नियम तो नहीं। कोई रोने के लिए है तो कोई हसने के लिए आजकल तो छुट्टी सी है, परन्तु विदेशियों का एक विचित्र सा दल यहां ठहरा है, उनमें से एक को तो देखते ही डर लगता है। लो देखो वह युवक आ गया।''

प्रसंग- सिन्धु देश की राजकुमारी मालविका मालव राज्य में सिंहरण के उद्यान में बैठी हुई प्रकृति को देखकर उसकी सुख-दुखात्पक स्थिति का अनुभव करती है। चन्द्रगुप्त के अनुराग में रंगी मालविका को लगता है कि मानव जीवन में सुख अपेक्षा दुखों की अधिकता है।

व्याख्या- मुझे तो लगता है कि मानव जीवन भी इन पुष्पों के समान है। देखों इन फूलों को किस प्रकार ये पुष्प हंसते हुए से खिल जाते हैं फिर अपना मकरन्द गिराकर मुरझा जाते हैं। ऐसा लगता है मानों अपने मकरन्द रूपी आंसुओं से ये पृथ्वी को भिगोकर सदा के लिए मुरझा गए हों। इसी प्रकार शीतल सुखद हवा का एक झोंका आता है और ठण्डी सांस फेंककर मानों दुख व्यक्त करता हुआ चला जाता है। मुझे तो लगता है कि इस प्रकृति में दुःख की प्रधानता है। यहां हंसते हुए फूलों को मकरन्द रूपी आंसू बहाकर मुरझाना पड़ता है और ठण्डी हवा के झोंकों को ठण्डी सांस भरनी पड़ती है। क्या यह पृथ्वी तल बना ही दुःख के लिए है? जहां देखों वहीं रुदन दिखाई पड़ता है। पुनः उसकी विचारधारा बदलती है और वह सोचने लगती है कि नहीं सबके लिए एक सा नियम नहीं है। सभी लोग यहां दुःखी तो नहीं हैं। कोई रोता है, तो कोई हंसता है अर्थात् यहां कुछ लोगों के भाग्य में रोना लिखा है, किन्तु जिनकी इच्छाएं पूरी हो जाती है, वे हंसते-खिलखिलाते हैं।

मालविका सोचती है कि आजकल यहां की दशा बड़ी विचित्र चल रही है। यहां विदेशियों का एक विचित्र दल ठहरा हुआ है। उनमें से एक तो इतना विचित्र है कि उसे देखते ही भय सा लगता है। लो देखों वह युवक इधर ही आ रहा है।

वस्तुतः देश में युद्ध के लिए अलख जगाने हेतु तथा प्रचार कार्य को बढ़ावा देने हेतु चन्द्रगुप्त और चाणक्य ही यहां वेश बदलकर आए हैं। चन्द्रगुप्त ही जादूगर के वेश में वहां आया है जिसे मालविका विचित्र युवक कहती है।

विशेष- 1. मालविका की मनोदशा का चित्रण इन पंक्तियों में है।

2. जीवन की सुखात्मक एवं दुःखात्मक स्थितियों का चित्रण प्रकृति के माध्यम से किया गया है।

3. क्या पृथ्वी तल रोने के लिए है ? इस कथन से मालविका की मनोदशा का कुछ-कुछ परिचय मिलता है।

4. प्रकृति का मानवीकरण भाषा सरल, सहज, प्रवाहपूर्ण तथा अलंकारिक है।

''मनुष्य अपनी दुर्बलता से भली भाँति परिचित रहता हैं। परन्तु उसे अपने बल से भी अवगत होना चाहिये। असम्भव कहकर किसी काम को करने से पहले-कर्मक्षेत्र में काँप का लड़खड़ाओं मत पौख! तुम क्या हो-विचार कर देखो तो! सिकन्दर ने जो क्षत्रय नियुक्त किया है- जिन संधियों को वह प्रगतिशील रखना चाहता है वे सब क्या है? अपनी लूट पाट को वह साम्राज्य के रूप में देखना चाहता है।''

शब्दार्थ- दुर्बलता = कमजोरी। **अवगत होना** - जानकारी होना, ज्ञान होना। **कर्मक्षेत्र** = कार्यक्षेत्र।

प्रसंग-प्रस्तुत पंक्तियां जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित नाटक 'चन्द्रगुप्त' के तीसरे अंक के दूसरे दृश्य से अवतरित हैं। इस अवतरण में आचार्य चाणक्य पर्वतेश्वर को अपनी शक्ति और सामर्थ्य का ज्ञान कराते हैं तथा फिर उसको सहानुभूतिपूर्ण शब्दों में समझाते हैं।

व्याख्या- चाणक्य का कधन है कि व्यक्ति अपनी कमजोरियों तथा कमियों को तो सदैव ही मानता है परन्तु इसके साथ ही साथ मनुष्य को अपनी शक्ति सामर्थ्य और अन्य गुणों को भी जानना चाहिए क्योंकि मानव इनके बल पर ही उन्नति के शिखर की ओर अग्रसर हो सकता है। किसी भी कार्य को सम्पन्न करने से पूर्व हो उसे असम्भव कहकर कर्मक्षेत्र से पलायन करना नहीं चाहिए। अर्थात् किसी भी कार्य को असम्भव समझ कर छोड़ो मत वरन् उसे दृढ़ निश्चय करके पूर्ण करना चाहिए। तुम्हें (पौरव) को भी यह शोभा नहीं देता कि एक काम के लिए बिना प्रयास किए ही उसे असम्भव कहकर अपना दुर्बलता प्रकट करने लगे। तुम्हारे अन्दर कितनी शक्ति है और कितना सामर्थ्य है इस पर अच्छो प्रकार से विचार कर लो। सिकन्दर ने अपने जीते हुए नगरों में जिन क्षत्रपों को उच्च पदवी से विभूषित कर रखा है और जिन संधियों को वह उचित और प्रगतिशील समझता है तथा नृशंस हत्या करके वह अपना साम्राज्य स्थापित करना चाहता है, मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ, यह कम से कम मेरे सामने तो सम्भव नहीं होगा और न मैं ऐसा होने दूँगा। तुम नि:संकोच होकर राज्य करो।

विशेष -

1. इस अवतरण की भाषा संस्कृतनिष्ठ, काव्यात्मक और आलंकारिक खड़ी बोली है।
2. इस कथन में कर्तव्य के प्रति चाणक्य की दृढ़ता का भाव निहित है।
3. ब्राह्मण चाणक्य द्वारा प्रसाद जी ने अपना ही जीवन-दर्शन प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।
4. यहाँ ब्राह्मण चाणक्य के मुख से कर्मक्षेत्र का वर्णन कराया गया है।

"मुझे इस देश से जन्मभूमि के समान स्नेह होता जा रहा है। यहाँ के श्यामल-कुंज, घने जंगल, सरिताओं की माला पहने हुई शैल-श्रेणी, हरी-भरी वर्षा, गर्मी की चाँदनी, शीतकाल की धूप और भोले कृषक और सरला कृषक-बालिकायें, बाल्यकाल की सुनी हुई कहानियों की जीवित प्रतिमायें हैं। यह स्वप्नों का देश-यह त्याग और ज्ञान का पालना-यह प्रेम की रंगभूमि भारतभूमि क्या भुलाई जा सकती है? कदापि नहीं-अन्य देश मनुष्यों की जन्मभूमि है। यह भारत मानवता की जन्मभूमि है।''

शब्दार्थ-स्नेह - प्रेम। **श्यामल कुंज** - हरे-भरे वृक्षा और लताओं के कुंज। **शैल-श्रेणी** - पर्वत-श्रेणी, पर्वतमालाएं। **सरला** - सीधी-साधी। **कृषक** - किसान। **कृषक-बालाएँ** - किसान की बालिकाएँ। **प्रतिमाएँ** - मूर्तियां। **मानवता** - मनुष्यता।

प्रसंग-प्रस्तुत अवतरण जयशंकर प्रसाद जी के प्रख्यात एवं ऐतिहासिक नाटक 'चन्द्रगुप्त' के तीसरे अंक के दूसरे दृश्य से अवतरित है। चन्द्रगुप्त सन्तुष्ट है कि कार्नेलिया उससे प्रेम करती है. उसे वह नहीं भूली है परन्तु कार्नेलिया जब कहती है कि परदेशी प्रियतम से प्रेम करना अत्यन्त कष्टदायी है। तब चन्द्रगुप्त कहता है कि यदि ऐसी बात है तो तुम भूल जाओं मुझे। इस पर कार्नेलिया उत्तर देती है कि ऐसी बात नहीं मुझे तो इस भारतभूमि से अत्यधिक लगाव हो गया है। कार्नेलिया द्वारा इन पक्तियों में भारतभूमि की महिमा का गुणगान किया गया है।

व्याख्या- कार्नेलिया चन्द्रगुप्त से कहती है कि इस देश भारत से मुझे उतना ही प्यार हो गया है जितना अपनी जन्मभूमि से है। अर्थात् मैं भारत को अपनी मातृभूमि के समान ही प्रेम करने लगी हूँ। मैंने अपने बचपन में भारत की प्राकृतिक सुषमा और आकर्षक सौन्दर्य की कहानियाँ सुन रखी हैं। आज मैं जब इस देश भारत की हरी-हरी क्यारियाँ, सघन कानन, ऊँची-ऊँचो पर्वतश्रेणियों से झरझर कर गिरती हुई नदियाँ ऐसी प्रतीत होती हैं, मानो शैल-खण्डों ने नदियों की माला पहन रखी है। वर्षा से उत्पन्न हरियाली, ग्रीष्म ऋतु की सुहावनी चाँदनी, और शरद ऋतु की धूप दर्शनीय है और यहाँ के भोले-भाले किसान, तथा उनकी सरल हृदय बालिकाएँ तो बचपन में सुनी कहानियों के ही पात्र लगते हैं। इस देश भारत में आकर तो ऐसा लगता है मानो हम कोई स्वप्न देख रहे हो यहाँ का प्रत्येक व्यक्ति त्याग की साकार प्रतिमा है। यह देश तो ज्ञान का अक्षय भण्डार है जो दूसरों को ज्ञान का दान दिया करता है। यहाँ के मानव प्रत्येक व्यक्ति से असीम प्यार करते हैं। ऐसी मनमोहक और रमणीय शस्यश्यामला भारत-भूमि को कदापि भुलाया नहीं जा सकता। यहाँ की मानवता विश्व विख्यात है।

विशेष-

1. इस अवतरण की भाषा संस्कृत की तत्सम शब्दावली से युक्त खड़ीबोली है।
2. भारत की गरिमा और महिमा तथा प्राकृतिक सुषमा का चित्रण भावात्मक शैली में किया गया है।
3. कार्नेलिया के भारत के साथ-साथ चन्द्रगुप्त के प्रति विशेष आकर्षण और लगाव प्रदर्शित करके नाटककार ने प्रेम के औदात्य का परिचय दिया है।
4. इस अवतरण में प्रसाद जी का राष्ट्रीय-प्रेम द्रष्टव्य है। भारत देश की गरिमा, सौन्दर्य तथा प्राकृतिक सुषमा के साथ-साथ इसकी मानवता की प्रशंसा एक विदेशी कन्या से करवाना और भी महत्त्वपूर्ण है।
5. इसकी शैली वर्णनात्मक तथा भावात्मक है।
6. इसमें अभिधा तथा लक्षणा शब्द-शक्तियों का प्रयोग हुआ है।
7. इस अवतरण में रूपक अलंकार है।
8. भावसाम्य-नाटककार ने भारत को मानवता की भूमि स्वीकार किया है। इसी प्रकार कविवर पंत भी 'भारत-गीत' में ऐसा ही कहते हैं-

   प्रथम सभ्यता ज्ञाता, साम ध्वनित गुण गाथा,

   जय नव मानवता निर्माता,

   सत्य अहिंसा दाता।

   जय हे जय हे जय हे, शन्ति अधिष्ठाता।

स्वयं आकलन के लिए प्रश्न

प्र. 1 चाणक्य का दूसरा नाम क्या था ?

प्र. 2 चन्द्रगुप्त के गुरु का क्या नाम था ?

प्र. 3 चन्द्रगुप्त कहां का शासक था।

6.4 सारांश

सारांश रूप में कह सकते है कि चन्द्रगुप्त प्रसाद की प्रौढ़ रचना है। इसके कथानक में विविधता विद्यमान है, इसमें एक ओर भारतीय संस्कृति की उत्कृष्टता पर प्रकाश डाला गया है तथा दूसरी ओर राष्ट्र प्रेम का संदेश दिया गया है। चंद्रगुप्त नाटक में भारतीय बौद्ध दर्शन एवं शैव मत की झलक साफ दिखाई देती है।

6.5 कठिन शब्दावली

(1) अभिजात्य - कुलीन, उच्च कुल में उत्पन्न

(2) प्रछन्न - छिपा हुआ, ढका हुआ

(3) प्रेक्षागृह - रंगशाला, जहां नाटक खेला जाता है

6.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

प्र. 1 उ. कौटिल्य

प्र. 2 उ. चाणक्य

प्र. 3 उ. मगध

6.7 संदर्भित पुस्तकें

(1) चन्द्रगुप्त जयशंकर प्रसाद

(2) जयशंकर प्रसाद - आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी

(3) प्रसाद के नाटक - सिद्धनाथ कुमार

6.8 सात्रिक प्रश्न

प्र. 1 ऐतिहासिक नाटकों के क्रम में प्रसाद के चन्द्रगुप्त नाटक का स्थान निर्धारित कीजिए।

प्र. 2 ऐतिहासिक नाटक लिखने के पीछे प्रसाद का क्या मंतव्य था ?

प्र. 3 चन्द्रगुप्त नाटक की विशेषताएं बताएं।

*****

इकाई–7

धर्मवीर भारती : जीवन एवं सृजित साहित्य

संरचना

7.1 भूमिका

7.2 उद्देश्य

7.3 धर्मवीर भारती : जीवन और सृजित साहित्य

- जीवन साहित्य
- रचना संसार

स्वयं आकलन प्रश्न

7.4 सारांश

7.5 कठिन शब्दावली

7.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

7.7 संदर्भित पुस्तकें

7.8 सात्रिक प्रश्न

इकाई-7
धर्मवीर भारती : जीवन एवं सृजित साहित्य

7.1 भूमिका

इकाई छः में हमने चन्द्रगुप्त नाटक की व्याख्या भाग का अध्ययन किया। इकाई सात के अंतर्गत हम धर्मवीर भारती के जीवन एवं सृजित साहित्य का अध्ययन करेंगे। जीवन एवं सृजित साहित्य के अंतर्गत जीवन साहित्य और रचना संसार का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

7.2 उद्देश्य

इकाई सात का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि

1. धर्मवीर भारती का जन्म कब हुआ ?

2. धर्मवीर भारती का रचना संसार कैसा है ?

3 धर्मवीर भारत की शिक्षा कहाँ तक हुई थी ?

7.3 धर्मवीर भारती : जीवन एवं सृजित साहित्य

आधुनिक हिंदी साहित्य के प्रसिद्ध लेखक, कवि, नाटककार, उपन्यासकार और समाजवादी विचारक, डॉ. धर्मवीर भारती का जन्म 25 दिसंबर, सन् 1926 ई. को उत्तर प्रदेश के प्रयागराज (या इलाहाबाद) के अतरसुइया मोहल्ले में एक कायस्थ परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री चिरंजीलाल तथा माता का नाम चंदा देवी था। इनके बाल्यकाल में ही इनकी माता का निधन हो गया था जिस कारण इनके पिता पर गहरा प्रभाव पड़ा। और कुछ समय बाद ही इनके पिता की अममयक मृत्यु हो गई। जिस कारण इन्हें बहुत ही आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा, परिवार की आर्थिक स्थिति पूर्ण रूप में आर्य समाज में ढली हुई थी। जिसके कारण भारती जी पर भी उसका गहरा प्रभाव पड़ा। इनकी एक बहन भी थी जिनका नाम डॉक्टर वीरबाला था।

● जीवन साहित्य

धर्मवीर भारती जी ने प्राथमिक स्तर में उच्च स्तर तक की शिक्षा प्राप्त की। इन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय में हिंदी विषय में एम. ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। और फिर पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त करके इन्हें इलाहाबाद विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग में के प्राध्यापक पद पर नियुक्ति मिली। भारती जी ने कुछ समय तक यहीं से प्रकाशित होने वाले सामाहिक पत्र ''संगम'' का संपादन किया। और सन् 1959 ई. में 1987 ई. तक ये मुंबई में प्रकाशित होने वाले हिंदी के प्रसिद्ध साप्ताहिक पत्र ''धर्मयुग'' के संपादक रहे।

धर्मवीर भारती जी ने अपनी शिक्षा इलाहाबाद से पूरी की और वहीं से उनमें लिखने का गहरा जुनून विकसित हुआ और इन्होंने कविताएं एवं कहानियां लिखकर अपनी साहित्यिक यात्रा की शुरुआत की। इनके शुरूआती कार्यो में मानवीय भावनाओं का गहन अवलोकन और उस समय की सामाजिक गतिशीलता की भावनाओं का गहन चित्रण प्रदर्शित किया है।

सन् 1972 ई. में डॉ. धर्मवीर भारती जी को भारत सरकार ने ''पद्मश्री'' की उपाधि से सम्मानित किया था। और सन् 1989 ई. में ''भारत-भारती'' सम्मान, सन् 1994 ई. में ''महाराष्ट्र गौरव'' सम्मान, सन् 1994 ई. में ''व्यास'' सम्मान और सन 1984 ई में ''हल्दीघाटी श्रेष्ठ पत्रकारिता'' पुरस्कार में भी अलंकृत किया गया था। 04 सितंबर, सन् 1997 ई. को हृदय रोग के कारण डॉ. धर्मवीर भारती जी का देहांत हो गया था।

- **रचना संसार**

भारती जी का आधुनिक हिंदी साहित्य में उनके योगदान के लिए जाना जाता था और उन्हें नई कहानी साहित्यिक आंदोलन के अग्रदुतों में से एक माना जाता है। उनके लेखन में मानवीय भावनाओं की गहरी समझ झलकती है और उन्होंने प्रेम, रिश्ते, सामाजिक मुद्दों पर मानवीय स्थिति जैन अनेक विषयों की खोज की है। भारती जी ने सबसे प्रसिद्ध कृतियों में से एक उपन्यास ''गुनाहो का देवता'' है जो 1949 ई में प्रकाशित हुआ था। यह इलाहाबाद में स्थापित एक प्रेम कहानी और चंदर और मुधा के पात्रा के बीच जटिल रिश्ते के आसपास घूमती है। इस उपन्यास को काफी लोकप्रियता मिली और इसे हिंदी साहित्य में एक क्लासिक माना जाता है।

डॉ. धर्मवीर भारती जी उपन्यासकार होने के साथ-साथ एक कुशल कवि भी थे। उनकी कविनाओं में अक्सर आत्मनिरीक्षण की भावना होती थी और जीवन की जटिलताओं का चित्र किया जाता था। उनके कुछ उल्ल्लेखनीय कविता संग्रहों में 'सूरज का सातवां घोड़ा' और 'अन्धा-युग' शामिल हैं जो कि महाभारत पर आधारित एक नाटक हैं।

हिंदी साहित्य में धर्मवीर भारती जी का योगदान उनकी अपनी लेखनी तक ही सीमित नहीं था। उन्होने अपने संपादकीय कार्य के माध्यम से अन्य लेखकों और कवियों के को बढ़ावा देने और समर्थन करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। भारती जी ने अनेक वर्षों तक हिंदी साहित्यिक पत्रिका 'साप्ताहिक हिदुस्तान' के संपादक के रूप में भी कार्य किया। उन्होंने युवा लेखकों को प्रोत्साहित किया और उनकी प्रतिभा को निखारा जिससे हिंदी भाषा के साहित्यिक परिदृश्य पर स्थाई प्रभाव पड़ा। अपने पूरे करियर के दौरान भारती जी को साहित्य में अनेक योगदान के लिए प्रतिष्ठित पुरस्कार मिल। धर्मवीर भारती जी को साहित्यिक उपलब्धियों के लिए भारत के सर्वोच्च नागरिक पुरस्कारों में में एक 'पदम्श्री' से सम्मानित किया गया था।

धर्मवीर भारती की रचनाएं एवं कृतियां

भारती जी बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार हैं। गद्य पद्य दोनों पर ही इनका समान अधिकार रहा है। भारती जी लगभग 20 कृतियां है जो निम्नलिखित हैं

कहानी-संग्रह - चाँद और टूटे हुए लोग, मुर्दों का गांव, स्वर्ग और पृथ्वी, बन्द गली का आखिरी मकान, सांस की कलम से।

काव्य-संग्रह - ठण्डा लोहा, सात गीत वर्ष, कनुप्रिया, अन्धा युग, सपना अभी-भी, आधान्त।

उपन्यास - गुनाहों का देवता, सूरज का सातवां घोड़ा, ग्यारह सपनों का देश, प्रारंभ व समापन।

निबंध-संग्रह - ठेले पर हिमालय, कहानी-अनकहानी, पश्यन्ती।

नाटक एवं एकांकी संग्रह - नदी प्यासी थी, नीली-झील।

आलोचना - मानव मूल्य और साहित्य, प्रगतिवादी एक समीक्षा।

अनुवाद - देशान्तर।

सम्पादन - संगम और धर्मयुग।

धर्मवीर भारती की भाषा शैली

भारती जी की भाषा सरल, सुबोध तथा साप्ताहिक साहित्यिक खड़ी बोली है जिसमें संस्कृत के शब्द प्रचुरता से पाए जाते हैं। या फिर कहें कि भारती जी की भाषा परिष्कृत एवं परिमार्जित बड़ीबोली है। इनकी भाषा में सरलता, सजीवता और आत्मीयता का पुट है तथा देशज, तन्मम एवं तद्भव शब्दों का प्रयोग हुआ है। मुहावरों एवं लोकोक्तियों के प्रयाग में भाषा में गति और बोधगम्यता आ गई है। विषय और विचार के अनुकुल भारती जी की रचनाओं में भावात्यक, समीक्षात्मक, वर्णनात्मक, चित्रात्मक, व्यंग्यात्मक आदि शैलियों का प्रयोग किया गया है।

धर्मवीर भारती के पुरस्कार

- भारत सरकार द्वारा पद्मश्री पुरस्कार (सन् 1972 ई. में)
- हल्दीघाटी सर्वश्रेष्ठ पत्रकारिता पुरस्कार (सन् 1984 ई. में)
- साहित्य अकादमी पुरस्कार (सन् 1985 ई. में)
- सर्वश्रेष्ठ नाटककार महाराणा मेवाड फाउंडेशन पुरस्कार (सन् 1988 ई. में)
- संगीत नाटक अकादमी दिल्ली (सन् 1989 ई.)
- राजेन्द्र प्रसाद शिखर सम्मान (सन् 1989 ई. में)
- भारत भारती सम्मान (सन् 1989 ई. में)
- कौड़िया न्यासी पुरस्कार (सन् 1994 ई. में)
- व्यास सम्मान (सन 1994 ई. में)

धर्मवीर भारती का साहित्य में स्थान

पद्मश्री डॉ. धर्मवीर भारती प्रयोगवादी मनोवृति के सशक्त कवि होने के साथ-साथ एक सफल निबंधकार, कथाकार, नाटककार, उपन्यासकार तथा श्रेष्ठ पत्रकार के रूप में भी आधुनिक हिंदी साहित्य जगत में अपनी आधुनिक दृष्टि, रोमांटिक प्रवृत्ति, व्यक्तिवादी चेतना तथा महज जीवन एवं बोलचाल की भाषा के प्रख्यात हैं।

स्वयं आकलन के लिए प्रश्न

प्र. 1 अंधायुग नाटक किसने लिखा है ?

प्र. 2 धर्मवीर भारती का जन्म कब हुआ था ?

प्र. 3 धर्मवीर भारती ने कब और किस आंदोलन में भाग लिया था ?

7.4 सारांश

धर्मवीर भारती आधुनिक हिंदी साहित्य के प्रमुख लेखक कवि, नाटककार और सामाजिक विचारक थे। वे एक समय की प्रख्यात साप्ताहिक पत्रिका धर्मयुग के प्रधान संपादक थे। धर्मवीर भारती को पदम्श्री से सम्मानित किया गया है। धर्मवीर भारती ने सिहद साहित्य पर शोध कार्य किया है।

7.5 कठिन शब्दावली

(1) पैठ - पहुंच

(2) नस - शक्ति, जोश

(3) धूरी - पहिए का केंद्र

7.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

प्र. 1 उ. धर्मवीर भारती

प्र. 2 उ. 1926 ई. में

प्र. 3 उ. 1942 के स्वतंत्रता संग्राम आंदोलन में

7.7 संदर्भित पुस्तकें

(1) अंधायुग - धर्मवीर भारती

(2) धर्मवीर भारती व्यक्ति और साहित्यकार - पुष्पा वास्कर

(3) धर्मवीर भारती का साहित्य सृजन के विविध रंग : डॉ. चन्द्राभानु सोनवणे

7.8 सात्रिक प्रश्न

(1) धर्मवीर भारती के व्यक्तित्व तथा कृतित्व पर प्रकाश डालिए।

(2) धर्मवीर भारती की नाट्यकला पर प्रकाश डालिए।

*****

इकाई-8

अंधायुग नाटक का सार एवं उद्देश्य

संरचना

8.1 भूमिका
8.2 उद्देश्य
8.3 अंधायुग नाटक का सार
8.3.1 अंधायुग नाटक का उद्देश्य
स्वयं आकलन प्रश्न
8.4 सारांश
8.5 कठिन शब्दावली
8.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर
8.7 संदर्भित पुस्तकें
8.8 सात्रिक प्रश्न

पाठ-8

अंधायुग नाटक का सार एवं उद्देश्य

8.1 भूमिका

इकाई सात में हमने धर्मवीर भारती के जीवन एवं सृजित साहित्य का अध्ययन किया। इकाई आठ में हम धर्मवीर भारती कृत अंधायुग नाटक का सार एवं उद्देश्य का अध्ययन करेंगे।

8.2 उद्देश्य

इकाई आठ का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि

1. धर्मवीर भारती कृत 'अंधायुग' नाटक का सार क्या है ?
2. अंधायुग नाटक का उद्देश्य क्या है ?

8.3 अंधायुग नाटक का सार

प्रथम अंक - कौरव नगरी

इस अंक के आरम्भ में कथा गायन के रूप में महाभारत के युद्ध में कौरव और पाण्डव के द्वारा किये गए अमर्यादित आचरण और व्यवहार का उल्लेख किया गया है। युद्ध के अंतिम दिन और संध्या का समय है। दो प्रहरी कौरव के महलों में घूमते हुए राज्य-नाश और कुल नाश का बोध करते हुए बातचीत कर रहे हैं। अचानक इन्हें कुरुक्षेत्र की दिशा में असंख्य उड़ते हुए गिद्धों का समूह दिखाई देता है, जो अपशगुन सूचक का प्रतीत होता है। उसी समय विदूर प्रवेश करते हैं। वे घटनाओं की जानकारी के लिए संजय की प्रतीक्षा करते हैं। विदूर अन्त:पुर में गांधारी और धृतराष्ट्र के पास पहुँचकर कौरवों के द्वारा किये गए अमर्यादित और अनैतिक आचरण के लिए धृतराष्ट्र का ध्यान आकृष्ट करते हैं। तब धृतराष्ट्र पहली बार यह स्वीकार करते हैं कि जन्मांध होने के कारण वे मर्यादाओं का पालन करने में असफल रहे हैं। विदूर उन्हें समझाते हुए कहते हैं कि उनका ज्ञान व्यक्तिनिष्ठ नहीं होकर भगवान कृष्ण के प्रति अर्पित होता तो किसी भी प्रकार की आशंका नहीं रहती। यह सब सुनकर गांधारी आवेश में आकर कृष्ण को धोखेबाज और मर्यादा का हत्यारा घोषित करती है। इसी बीच जयकार करता हुआ वृद्ध याचक प्रवेश करता है। यह वही ज्योतिषी है, जिसने बहुत पहले कौरवों के विजयी होने की भविष्यवाणी की थी। भविष्यवाणी के गलत होने का कारण वह कृष्ण को मानता है। जिन्होंने अपने अनाशक्त कर्म से नक्षत्रों की गति को मोड़ दिया। इस अंक के अंत में दोनों प्रहरी के कथागायन में कौरव नगरी के सुनेपन को दर्शाया गया है।

दूसरा अंक- पशु का उदय

इस अंक में संजय कृतवर्मा को अर्जुन द्वारा किये गए कौरवों के विनाश का समाचार सुनाता है। संजय कृतवर्मा को भीम के साथ हुए गदा युद्ध में दुर्योधन के घायल होने की सूचना देता है। उसी समय टूटे हुए धनुष को लेकर अश्वस्थामा प्रवेश करता है। वह पाण्डवों द्वारा छलपूर्वक किए गए पिता द्रोणाचार्य के वध से विक्षुप्त होने के कारण पाण्डवों के वध की प्रतिज्ञा करता है। तभी वन मार्ग से आता हुआ संजय दिखाई पड़ता है। और वह उसका गला दबोच देता है। तभी कृपाचार्य और कृतवर्मा लपककर संजय को अश्वस्थामा से मुक्त कराते है। इसी समय अश्वस्थामा को कौरव नगरी से लौटता हुआ भविष्य वक्ता याचक दिखाई पड़ता है, जिसका अश्वस्थामा तत्काल वध कर देता है। अश्वस्थामा और कृतवर्मा को सोने का आदेश देकर कृपाचार्य स्वयं पहरा देने लगते हैं।

तीसरा अंक- अश्वस्थामा का अर्धसत्य

'कथागायन' के माध्यम से युद्धक्षेत्र से लौटती हुई कौरव दल का उल्लेख किया जाता है, जिसमे केवल बूढ़े घायल और बौने ही शेष रह गए थे। हारी हुई घायल सेना के साथ आये युयुत्सु को देखकर नगरवासी भयभीत हो जाते

हैं। युयुत्सु पाण्डव-पक्ष की ओर से लड़ने के कारण आत्मग्लानी से ग्रस्त दिखाई देता है। तभी गांधारी युयुत्सु पर कठोर व्यंग्य करती है। उसी समय संजय गदा युद्ध में दुर्योधन की पराजय का समाचार लाते हैं। अश्वस्थामा कृपाचार्य को बताता है कि भीम ने गदा युद्ध में अधर्मपूर्वक दुर्योधन की जंघा पर प्रहार किया जो गदा युद्ध के नियमों के विरुद्ध है। वह आवेश में आकर पाण्डवों के वध की प्रतिज्ञा करता है। कृपाचार्य अश्वस्थामा को कौरव दल के सेनापति पद पर नियुक्त करते हैं। कृतवर्मा और कृपाचार्य को सोने का आदेश देकर सेनापति अश्वस्थामा स्वयं पहरा देने लगता है। तभी रात्रि के सन्नाटे में उसे वृक्ष पर एक उल्लू दिखाई पड़ता है जो सोये हुए कौवे पर आक्रमण करता है तथा उसका वध करके नाचने लगता है। इस प्रसंग से प्रेरित होकर अश्वस्थामा पाण्डवों के वध की योजना मन में लेकर पाण्डव शिविर की ओर प्रस्थान करता है।

अंतराल : पंख, पहिये और पट्टियाँ

नाटक में तीसरे अंक के बाद अंतराल है 'पंख, पहिये और पट्टियाँ' यहाँ अस्वस्थामा के द्वारा मारे गए वृद्ध याचक की प्रेतात्मा प्रवेश करती है। युयुत्सु, संजय, विदूर आदि पात्र प्रेतात्मा के पीछे खड़े होकर अपनी-अपनी आतंरिक असंगति से उत्पन्न पीड़ा को व्यक्त करने लगते हैं। पाण्डव शिविर के द्वार पर एक विशालकाय दानव पुरुष के रूप में महादेव शिव अश्वस्थामा को शिविर में प्रवेश करने से रोकते दिखलाई देते हैं।

चौथा अंक - गांधारी का शाप

इस अंक में आशुतोष महादेव अश्वस्थामा से प्रसन्न होकर उसे पाण्डव शिविर में प्रवेश करने की अनुमति देते हैं। कृपाचार्य के मुख से अश्वस्थामा द्वारा की गई पाण्डवों की विनाश नीला का वर्णन सुनकर गांधारी प्रसन्न होती हैं, किन्तु इसी बीच दुर्योधन की मृत्यु हो जाती है। यह समाचार सुनकर गांधारी मुर्छित हो जाती है। इस अंक के बीच में दिए गए कथा गायन में कौरव और वीरों का तर्पण करने लिए युद्ध भूमि की तरफ प्रस्थान करते हुए युयुत्सु, धृतराष्ट्र, मंजय आदि का उल्लेख है। अर्जुन के बाणों से घायल अश्वस्थामा ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करता है। कृष्ण के कहने पर अर्जुन अश्वस्थामा के ब्रह्मास्त्र को काटने के लिए अपने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करते हैं, किन्तु व्यास के कहने पर वे उसे वापस लौटा लेते हैं। अश्वस्थामा का ब्रहमास्त्र उत्तरा के गर्भ पर गिरता है किन्तु कृष्ण शिशु को जीवित करने का आश्वासन देते हैं और अश्वस्थामा को शाप देते है कि वह पीप घावों से युक्त शरीर वाले दुर्गम स्थानों पर भटकता रहेगा। उधर गांधारी युद्ध भूमि में दुर्योधन के अस्थि-पंजर को देखकर कृष्ण को शाप देती है, तुम स्वयं अपने वंश को विनाश करके किसी साधारण व्याध के हाथ मारे जाओगे'।

पाँचवा अंक- एक क्रमिक हत्या

इस अंक में कथानायक पाण्डव-राज्य की स्थापना का उल्लेख है। युधिष्ठिर का राज्याभिषेक हो गया है। भीम के कटु वचनों से मर्माहत होकर धृतराष्ट्र तथा गांधारी वन चले जाते हैं। युयुत्सु अपमानित होकर भाले से आत्महत्या का प्रयास करता है, किन्तु सफल नहीं होता है। कुन्ती, गांधारी, धृतराष्ट्र भीषण दावाग्नि में भस्म हो जाते हैं।

समापान- प्रभु की मृत्यु

अंतिम अंक के बाद समापन होता है। इसका शीर्षक प्रभु की मृत्यु दिया गया है। झाड़ी के पीछे से निकलकर जरा नाम का व्याध कृष्ण के बाएँ पैर पर मृग का मुख समझकर बाण चला देता है। अश्वस्थामा प्रभु के शरीर से बहते हुए पीप से भरे नील रक्त को देख कर प्रसन्न होता है। उसे लगता है जैसे प्रभु ने अपने रक्त से उसकी ही पीड़ा को व्यक्त किया हो। उसके मन में प्रभु के प्रति आस्था का उदय होता है। व्याध के कथन से स्पष्ट होता है कि अंधे युग में प्रभु का अंश निष्क्रिय (संजय) आत्मघाती (युयुत्सु) और विगलित रहेगा तथा उनका दूसरा अंश मानव मन के उस मंगलकारी वक्त में निवास करेगा जो ध्वंसों पर नूतन निर्माण करेगा। नूतन सृजन, निर्भयता, साहस और मर्यादायुक्त आचरण में प्रभु बार-बार जीवित हो उठेंगे।

'अँधा युग केवल महाभारत की कथा का एक मात्र अंश नहीं होकर, मानव के अंतर जगन को अभिव्यक्ति देते हुए युद्ध की विभीषिका दिखाने वाली रचना है।'

8.3.1 अंधा युग नाटक का उद्देश्य

'अंधा युग' काव्य नाटक को देखने-पढ़ने के बाद जो सबसे पहला सवाल मन में उठता है वह यह कि नाटककार ने एक पौराणिक कथा को अपने तरीके से फिर से लिखने की कोशिश तो नहीं की है? इसका उत्तर खोजते हैं तो पाते हैं कि 'महाभारत' की कथा तो यहाँ है ही नहीं। 'महाभारत' की पृष्ठभूमि अवश्य है पर पृष्ठभूमि अपना एक आभास भर बनाए रखती है और उस पृष्ठभूमि के प्रसंग में कुछ गंभीर प्रश्न उठाए गए हैं जिनका उत्तर हमें (और सम्पूर्ण मानव जाति को) अपने भीतर से तलाश करना है और पूरी ईमानदारी से तलाश करना है। 'महाभारत' का प्रसंग आत्मनिरीक्षण की गंभीर जरूरत पर बल देता है, क्योंकि आज की स्थितियाँ 'महाभारत' से कम विस्फोटक या विध्वंसक नहीं हैं। तो क्या संपूर्ण मानव जाति को विनाश के अंधे गवर में धकेल दे या धकेले जाने में दूसरों की मदद करें, या चुप रहकर धकेलने वाली का हौसला बढ़ाएँ और खुद भी अंधेरे में खो जाएँ। जाहिर है यह 'महाभारत' के पुराख्यान का पुनसृजन भर नहीं है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद के विश्व को एक दृष्टांत के बहाने दी गई चेतावनी है कि तीसरे विश्व युद्ध के बाद शायद महाभारत के पुराख्यान को दुहरानेवाला या फिर से उसे सुनने-सोचने वाला भी कोई शेष न बचेगा, अगर समय रहते 'धर्म' एवं 'विवेक' का मतलब नहीं समझ लिया जाता, अपने भीतर के गहरे अंधेरे में छिपे हम अपने ही पाप की, आदिम बर्बर पशु मानव की शिनाख्त नहीं कर लेते और उसे काबू में नहीं कर लेते।

'अंधा युग' काव्य नाटक के वस्तु विधान की जिस मूल धुरी की चर्चा हमने की उससे यह स्पष्ट है कि यह नाटक पौराणिक आख्यान का पुनसृजन भर नहीं है। इसकी ध्वनियाँ कई और भी हैं। यह नाटक एक ओर जहाँ समन्वय के कई आयामों का संकेत करता है यथा आस्था और अनास्था, सत् ओर असत, आदर्श और यथार्थ, भाव और कला, काव्यत्व और दृश्यत्व आदि, वहीं दूसरी ओर एक व्यापक जोवन सत्य का उद्घाटन भी करता है कि आशा, सौदर्य, उन्नति, आस्था क्षमा निर्माण आदि शुभत्व क मुकाबले कुठा, निराशा रक्तपात, प्रतिशोध विकृति कुरूपता अंधापन भी जीवन और जगत का उतना ही कड़वा सच है जिनसे घबराने और भागने के बजाय जिनका मुस्तैदी से सामना करना ही जीवंतता है। अगर जीवन में शुभत्व कहीं एक बड़ी सच्चाई है तो उससे कम बड़ी सच्चाई अशुभत्व नहीं। सच का सामना हर आदमी को करना पड़ता है। फिर अशुभ की उपेक्षा क्यों उससे भागना क्यों, उससे जूझने, उनका सामना करने और उन पर विजय पाना एक मनुष्य होने के नाते हर व्यक्ति का लक्ष्य होना चाहिए। खतरनाक बाहरी कुरूपताएँ और विषमताएँ नहीं। डरना और सामना करना तो हमें अपने भीतर की उन छिपी हुई कुरूपताओं, विद्रूपताओं और अधतत्वों का करना है जिनकी ओर दूसरों को तो क्या खुद हमारी अपनी नजर भी कम ही जा पाती है। संक्षेप में ध र्मवीर भारती यही बात कहते हैं जब वे लिखते हैं कि

पर शेष अधिकतर हैं अंधे
पथ भ्रष्ट, आत्महारा. विगलित
अंतर की अंध गुफाओं के वासी यह कथा उन्हीं अंधों की है
या कथा ज्योति की है अंधों के माध्यम से।

नाटककार के इन शब्दों को अधिक स्पष्ट करते हुए हम ऐसे भी कह सकते है कि 'अंधा युग' अंधों की कथा है अथवा कहें तो अंधों के बहाने ज्योति की कथा है। वास्तविकता यह है कि अंधेरे के बिना प्रकाश नहीं है और प्रकाश के बिना अंधेरा नहीं। चूंकि प्रकाश है इसलिए अंधकार है अथवा अंधकार का अस्तित्व है इसलिए प्रकाश भी है। जिन पर अंधकार हावी है, प्रकाश दबा हुआ है, वे महाभारत के पात्रों की तरह अंधे हैं अथवा अपनी-अपनी अंध गुफाओं के वासी हैं, अंधकार में जीते हैं, अतः अशुभ, अमंगल, कुरूपता, विद्रूपता, कुण्ठा, सत्रांस, पीड़ा, विडंबना और वेदना में जीते हैं। कमोबेश 'अंधा युग' के प्रायः सभी पात्र चाहे उनका बाहरी आभामण्डल शुभत्व मंडित ही क्यों न हो,

भीतर-भीतर अपने अंधकार को जी और भोग रहे होते हैं। भीतरी अंधकार और बाहरी ज्योति के बीच समन्वय नहीं कर पाते हैं। एक क्षण के लिए एक द्वापर के लिए अशुभ अंधकार जीत जाता है और व्याध के बाण से शुभ प्रभु मर जाते हैं।

आह! वह सुनता नहीं
प्रस्थान किया
ज्योति बुझ रही है वहाँ और जिस क्षण प्रभु ने प्रस्थान किया
द्वापर युग बीत गया उस क्षण
प्रभुहीन धरा पर आस्थाहत
कलियुग ने रखा प्रथम चरण

अंधकार हमारे जीवन में जब-जब जीतता है, शुभ की, प्रभु की मृत्यु होती है, द्वापर का अंत और कलियुग का प्रारंभ होता है। पाप की अंधकारपूर्ण छाया में व्यक्ति अपना शेष जीवन उन्हीं अंध गुफाओं में भटकता हुआ काटता है। आज भी हर क्षण कहीं-न-कहीं किसी न किसी व्यक्ति के प्रभु की (मूल्यों की) हत्या हो रही है, उसके जीवन पर अंधकार का कलियुग हावी हो रहा है। अंधकार का प्रकाश का यह संघर्ष सनातन है। अंधा युग की मूल संवेदना अथवा चिंतन को निम्नलिखित बिंदुओं द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है-

1. अंधकार और प्रकाश की संघर्ष गाथा- थोड़ी देर के लिए हम निराश हो उठते हैं कि क्या हमेशा अंधेरा ही जीतेगा और प्रभु क्या सदैव मरते रहेंगे, शुभ क्या सदैव पराजित होता रहेगा। मंगल, शुभ, शाश्वत और चिरंतन के प्रति हमारी आस्थाएँ और हमारे विश्वास इसी प्रकार नित्य खण्डित होते रहेंगे। तो हम अंधकार को ही चरम सत्य मान लें। उसी के प्रति आस्थावान और विश्वासी बने?

सच कभी मरता नहीं। असंख्य तिथियाँ बीत गई, जब अंधकार ने सूरज को ग्रस लिया, पृथ्वी पर अंधकार का साम्राज्य स्थापित हो गया। परंतु आखिरकार अंधेरा छँटता है और हर रोज नए प्रभु के रूप में शुभ, मंगल, शाश्वत, सत्य और सूर्य का उदय होता है। पापी से पापी व्यक्ति के जीवन में भी वह क्षण आता है जब उसके अंतर को अंध गुफाओं के समस्त अंधकार को भेदकर ग्लानि और पाश्चात्य के शुभ भाव जगते हैं और अपने समस्त पापों को वह प्रभु को अर्पित कर उनके चरणों में गति पाता है. अपने भीतर एक सर्वथा नवीन व्यक्ति के जन्म को अनुभव करता है। 'अंधा युग' में कृष्ण ने बुद्ध ज्योतिषी को प्रेत लोक को अंध योनि से मुक्ति दिलाई और नवजीवन दिया तथा अश्वत्थामा के पाप को स्वयं धारण किया, क्योंकि 'अंधा युग' पैठ गया था मेरी (अश्वत्थामा को) नस-नस में वृद्ध की वाणी में कृष्ण बोलते हैं कि उनकी मृत्यु प्रभु की मृत्यु नहीं मात्र 'रूपांतर' है। प्रभु अब दूसरे रूपों में मिलेंगे, उन रूपों में जिन्हें उन्होंने अपने प्रभुत्व का दायित्व सौंपा है। 'मेरा दायित्व वह स्थित रहेगा हर मानव-मन के उस वृत्त में जिसके सहारे वह/सभी परिस्थितियों का अतिक्रमण करते हुए/नूतन निर्माण करेगा पिछले विध्वंसों पर। कृष्ण ने आज के कंधों पर अतीत की मूल सुधारों का दायित्व सौंप दिया है।'

2. सृजन और विनाश बनाम प्रकाश और अंधकार- जो गलती हमसे हो गई है उसे फिर-फिर हम दुहराएँ नहीं, उससे सीखें और जानें कि हमें कैसे जीना है। हमारे सामने जो युद्धों के अवशेष पड़ते हैं, हमें बराबर याद दिलाते रहेंगे, हिरोशिमा और नागासाकी की। हमने फिर से जीना सीखा है, आगे बढ़े हैं. पर किधर! क्या पुनर्विनाश की ओर नहीं। निर्माण ने तो सिद्ध किया कि प्रभु जीवित है, पर क्या आगे फिर कभी द्वापर नहीं आएगा? यह भी एक वैसा ही गंभीर प्रश्न है, जो यह नाटक उठाता है। युद्ध के विध्वंसों के अवशेष पर नई सृष्टि रचने का आह्वान भी इस नाटक का मुख्य स्वर है। कारण छोटे हों या बड़े, हर पक्ष को अपने को किसी नैतिक कारण से सम्बद्ध बताकर अपने संघर्ष को धर्मसम्मत विवेकपूर्ण और न्याय का पक्ष साबित करता है जबकि वस्तुत: दोनों पक्षों में से धर्म कहीं भी नहीं होता।

धर्म की दुहाई भर दी जाती है। विवेक कहीं नहीं होता, सब के सब कहीं गहरे अपने अंधकार से ग्रस्त होते हैं। वस्तुत: विजय किसी की नहीं होती। सभी हारते हैं और मौत केवल मनुष्यता की होती है। इतनी बड़ी हानि होने के बाद आदमी फिर से युद्धावशेषों पर नवनिर्माण में प्रवृत्त होता है, क्योंकि प्रभु सृष्टि में ही बसते हैं। पाप कौरवों ने कम नहीं किए भूले पाण्डवों ने भी कम नहीं। दोनों के युद्ध में शरीर से अधिक मानवीय मूल्य हताहत हुए। जिस राज-पाट के लिए युद्ध हुआ, जिसे कौरव अपने पास बनाए रखना चाहते थे और पांडव उस पर अपना नैतिक अधिकार समझ कर पाना चाहते थे, उस राज सुख से अंतत: दोनों ही वचित हुए, क्योंकि सभी अंधी प्रवृत्तियों से परिचालित थे। हिंसा और प्रतिहिसा शोषण और प्रतिशोध, अहंकार और दंभ के संघर्ष में अंतत: सबकी पराजय निश्चित थी।

नाटककार कहता है कौरव-पाण्डव दोनों पक्षों में धर्म कहीं नहीं था. इसलिए दोनों ही हारे। सदा सच बोलने वाले युधिष्ठिर ने भी 'अश्वत्थामा हतो नरो वा कुंजरो वा' कहकर वस्तुत: द्रोण की हत्या के षड्यंत्र में अपनी भागीदारी ही साबित को थी क्योंकि उन्हें उस छल की जानकारी थी कि 'नरो वा कुंजरो' कृष्ण की शंखध्वनि में सुना ही नहीं जा सकेगा। इस छत में सच बोलने का एक नाटक भर युधिष्ठिर ने किया था। जीवन भर सत्य बोलने वाले युधिष्ठिर के इस आधे सच ने अश्वत्थामा के भीतर जिस प्रतिशोध और प्रतिहिंसा को जन्म दिया 'अंधा युग' नाटक उसी के परिणामों का दस्तावेज है। सदा झूठ बोलने वाले या व्यक्तिगत जरूरतों से झूठ बोलने वाले या कभी-कभी शौक से मजा लेने के अंदाज में बोले जाने वाले झूठ की प्रतिक्रिया इतनी की गई। 'अंधा युग' की पूरी वस्तु योजना में से अश्वत्थामा को निकाल कर देख लीजिए कि जो शेष बचता है वह कितना प्रभावशाली है। या फिर अश्वत्थामा तो रहे लेकिन उसके भीतर से छल के द्वारा या अर्द्धसत्य की आड़ में की गई पिता को 'हत्या' का प्रतिशोध, उसकी प्रतिहिंसा की भावना को ही निकाल कर देखिए कि तब क्या अश्वत्थामा नहीं होता जैसा नाटक में है, या यह कि तब क्या 'महाभारत' का वह अंत अथवा प्रभु की वैसी 'हल्या' भी हो पाती? ध्यान से देखें तो पूरे महाभारत में दोनों ही पक्षों द्वारा अपनाए गए छल-प्रपंच पड्यंत्र अधर्म पापकर्मादि के मुकाबले में युधिष्ठिर का एकमात्र अर्द्धमत्य सब पर भारी पड़ता है जिसने पूरे द्वापर की दिशा बदल दी। अनेक संपूर्ण झूठों के मुकाबले में सत्य की आड़ में बोला गया एक मात्र आधा सच (या आधा झूठ) सबसे ज्यादा खतरनाक साबित हुआ। युधिष्ठिर के इस एकमात्र अर्द्धसत्य अर्थात् आधे झूठ ने मानो उनके और पूरे युग के संपूर्ण सत्य के प्रखर सूर्य को ग्रहण लगा दिया। सच के प्रकाश को असत्य के अंधकार ने निगल लिया। प्रकाश की किरणें जिन विषाणुओं को नष्ट करने में समर्थ हैं, उन्हीं ने जैसे सच को खा लिया। अंधकार और प्रकाश का यह संघर्ष सब दिन रहा है और सब दिन रहा है और सब दिन रहेगा। समस्त संघर्षों और विनाशों के बावजूद आदमी और आदमियत बची रही है, रहेगी।

3. 'अंधा युग' का राजनीतिक सदंर्भ - ऐसा स्वीकार किया जाता है कि महान् साहित्यकार युगद्रष्टरा और युगस्रष्टा होता है। युगद्रष्टा इसलिए कि अपने वर्तमान को देखकर वह भविष्य का फलितार्थ कहता है और युगस्रष्टा इसलिए कि अपने शब्दों से वह अपने समय को न केवल वाणी देता है, अपितु दिशा भी जिस समय अंधायुग की रचना की गई उसके कुछ ही समय पूर्व द्वितीय विश्वयुद्व समाप्त हुआ था और पूरा विश्व समाजवादी एवं पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की प्रतिनिधि शक्तियों रूस एवं अमेरिका के दो ध्रुवान्तों में बट गया था। विश्व युद्ध के ध्यंसावशेष पर नवनिर्माण की प्रक्रिया आरंभ हो चुकी थी और समय ने एक बार फिर यह साबित कर दिया था कि मानवीय जिजीविषा अमर है, वह कभी नहीं मरती, और राख से फूटती हुई नई कोंपलों की तरह हर ध्वंश के अंबार पर नई फसल के अंकुर उग आते हैं।

नाटक के अनुसार, आधुनिक युग ने एक दूसरी बात यह सिद्ध की कि व्यवस्था चाहे पूंजीवादी हों या साम्यवादी, दोनों की सोच की दिशा एक है, दोनों की वैचारिक धुरी एक है। अर्थात् राजसत्ता पर निरंकुश अधिकार। विश्व के दो खेमे में बँट जाने को सतही तौर पर कौरव-पाण्डवों के मतभेद और संघर्ष में देखा जा सकता है पर उस झगड़े की जड़ भी 'राजसत्ता' है और द्वितीय विश्वयुद्ध की जड़ में भी 'राजसत्ता' का विस्तार ही है। दुर्योधन पांडवों को सुई की नोंक के बराबर हिस्सा देने के लिए तैयार न हुआ, उसने पाण्डवों के अधिकार का अपहरण कर उन्हें निष्कासित कर दिया।

ऐसी ही कार्रवाई हिटलर ने भी की थी। उसकी नजर में यह पृथ्वी आर्यों की थी और आर्येतर या यहूदी न केवल दूसरे दर्जे के नागरिक थे, बल्कि उनका स्वत्त्व अपहरण योग्य था। द्वितीय विश्वयुद्ध में लाखों-लाख यहूदियों, निरपराध नागरिकों को अपने प्राण गँवाने पड़े और महाभारत युद्ध की तरह लाखों-लाख सैनिकों का संहार हुआ। हिटलर की फासीवादी राजनीति के विपरीत लोकतांत्रिक राजनीति जनता के हितों पर आधारित थी, परन्तु स्वयं ये व्यवस्थाएँ भी अपने आपको अधिकारों के दुरुपयोग से नहीं बचाए रख सकीं। समाजवादी और पूँजीवादी शिविर में श्रेष्ठता की होड़ ने शस्त्रों का अंबार खड़ा कर दिया। दोनों अपने प्रभाव क्षेत्र का विस्तार करने में जुट गए। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद इन दोनों शिविरों में जो तनाव और संघर्ष चला, उसने युद्ध का माहौल बना दिया, जिसे शीतयुद्ध के नाम से जाना जाता है। 'अंधा युग' के रचनाकाल तक ये सारी स्थितियाँ लगभग स्पष्ट हो चुकी थीं।

इस अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य में एक नई इकाई के रूप में भारत का उदय हुआ। भारत लगभग दो सौ साल की औपनिवेशिक दासता से अभी मुक्त हुआ ही था। इंग्लैंड सहित पूंजीवादी देश अमरीका के नेतृत्व में भारत जैसे देशों को अपने राजनीतिक-आर्थिक नियंत्रण में रखना चाहते थे, जबकि समाजवादी देशों की प्रगति और बिना शर्त सहयोग का आश्वासन उसे समाजवादी शिविर की ओर खींच रहा था। भारत इन दो ध्रुवों के बीच खड़ा अपना मार्ग तय नहीं कर पा रहा था। ऐसी ही विकट स्थिति में लेखक, कलाकार भी अपने-अपने ढंग से अपना मत प्रकट कर रहे थे। धर्मवीर भारती जो प्रगतिशीलता और साम्यवाद को शंका की दृष्टि से देखते थे और जो पूंजीवाद और समाजवाद में कोई अंतर नहीं पाते थे। उनका स्पष्ट मानना था कि दोनों रास्ते गलत हैं और भारत के लिए वह सही मार्ग नहीं है। विश्व में शीतयुद्ध की स्थिति, युद्ध, तनाव, मूल्यहीनता आदि के लिए उन्हें दोनों बराबर जिम्मेदार नजर आते थे।

'महाभारत' के विषय में आपने पहले से यह सुन रखा होगा कि महाभारत में जो नहीं है वह भारतवर्ष में नहीं है। राजनीतिक पतनशीलता और मूल्यों को गिरावट जो हम आज देखते हैं, अगर आप 'अंधा युग' के महाभारतीय परिवेश से उसकी ममता को रेखांकित करने की हल्की सी भी कोशिश करें तो यह समझने में बाधा नहीं रह जाएगी कि कमोबेश यही स्थिति उस समय भी थी। राजनीतिक पतनशीलता की पराकाष्ठा वहाँ थी जहाँ संपूर्ण राजसी शक्तियाँ कौरवों की व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा को पूर्ति के लिए प्रयोग में लाई जा रही थीं। राजनीति में व्यक्तिवाद के बढ़ते प्रभाव से मूल्यों को तब भी नष्ट किया था और आज की तारीख में भी कर रहा है। विवेचन का विषय यह नहीं रह गया कि सत्य किधर है या यह कि धर्म किधर है। **'माइट इज राइट', 'अंधा युग'** जब लिखा गया तब भी था और आज भी है। कुछ तो नहीं बदला है। दुर्योधन और दु:शासन तब भी थे आज भी है।

'अंधा युग' में लेखक ने ऐसी राजनीतिक स्थिति का चित्र प्रस्तुत किया है जहाँ सत्य किसी ओर नहीं है, न किसी ओर धर्म है। संपूर्ण व्यवस्था मूल्यहीनता और निहित स्वार्थों की दासी हो गई है। प्रत्येक व्यक्ति दिग्भ्रमित है कि वह किधर जाए, क्या करें, किस पर भरोसा करे और इस दुष्चक्र से कैसे निकले। लेखक इस अनास्था और व्यर्थताबोध से इस हद तक आतंकित है कि वह पूरे युग को 'अंधा युग' की संज्ञा देता है। 'अंधा युग' में सामूहिक संघर्ष, आदर्श तथा नैतिकता का कोई स्थान नहीं है। वे इस बात पर बल देते नजर आते हैं कि हमारी बाह्य आस्था हमें सही दिशा नहीं दे पाती। वे इस बात पर बल देते नजर आते हैं कि हमारी बाह्य आस्था हमें सही दिशा नहीं दे सकती। 'अंधा युग' का प्रत्येक पात्र आस्थाहीन है। किसी को भी भविष्य पर भरोसा नहीं है। मनुष्य का भविष्य उन्हें मृत नजर आता है। केवल आत्महत्या ही उन्हें दर्शन, धर्म, कला, संस्कृति तथा शासन व्यवस्था में व्यक्त होती नजर आती है।

यह आत्महत्या होगी प्रतिध्वनित
इस पूरी संस्कृति में
दर्शन में, धर्म में, कलाओं में
शासन व्यवस्था में
आत्महत्या होगा बस अंतिम लक्ष्य मानव का।

आज जब समाजवादी शिविर समाप्त हो गया है। प्रगतिशील ताकतें कमजोर पड़ गई हैं, 'अंधा युग' को यह राजनीति दृष्टि अपनी सीमा का भी एहसास कराती है। अमरीका के नेतृत्व में साम्राज्यवाद के वर्चस्व के बावजूद न तो युद्ध का भय समाप्त हुआ है और न ही मानवजाति के नैतिक संकट की समाप्ति हुई है। प्रतीत होता है जैसे एक अंधेयुग से दूसरे अंधेयुग में प्रवेश कर रहे हैं। राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय दोनों स्तरों पर हम इसे देख सकते हैं।

4. अंधा युग : बदलते मूल्यों का संकट– 1947 में जब देश आजाद हुआ तो यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि देश किस ओर आगे बढ़े। भारतभूषण अग्रवाल ने उस समय की मन:स्थिति का चित्रण करते हुए प्रश्न किया था, 'कौन सा पथ रे, कह!' 'अंधा युग' को भी मुख्य चिंता यही है। कौरव और पांडव दो समूह नहीं, ये दो मार्ग हैं। वर्तमान संदर्भ में पूंजीवाद और समाजवाद के बीच संघर्ष और इनमें से कौन–सा मार्ग सही है और इसका निर्धारण कैसे हो? यह दो राजनीतिक मतों में से चुनाव का ही प्रश्न नहीं है। यह दो तरह के जीवन मूल्यों के बीच चुनाव का प्रश्न भी हैं। दोनों पक्ष अपने को सही और दूसरे को गलत बताते हैं। लेकिन 'अंधा युग' के अनुसार दोनों तरफ अर्द्धसत्य है। जीवन–मूल्यों की इस टहराहट का भारतीय संदर्भ यह है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश के विकास का कौन–सा मार्ग श्रेयस्कर इसे तय किया जाता है।

आजादी के लगभग सात–आठ साल बाद लिखा गया यह नाटक उस संघर्ष और अंतर्द्वंद्व को बताता है जो उस समय के मध्य वर्ग में चल रहा था। दूसरे विश्व युद्ध के बाद अंग्रेजी दासता से मुक्त हुए तीसरी दुनिया के देशों का हित किस में है-समाजवाद में या पूंजीवाद में इसका चुनाव किया जाना था।

ये दो भिन्न–भिन्न राजनीतिक व्यवस्थाएँ ही नहीं हैं-दो भिन्न तरह की जीवन दृष्टि और जीवन मूल्य भी हैं। पूंजीवाद में स्वतंत्रता और नागरिक अधिकारों पर बल रहता है जबकि समाजवाद में समानता और शोषण से मुक्ति पर। पूंजीवाद में व्यक्ति के अधिकारों पर जोर रहता है और समाजवाद में समाज के सामूहिक हितों पर। सामाजिक हितों के नाम पर समाजवाद व्यक्ति के अधिकारों का हनन करता है और पूंजीवाद व्यक्ति–स्वातन्त्र्य के नाम पर समाज में शोषण उत्पीड़न को रोकने में असमर्थ रहता है। जिन खण्डित किवा अर्द्धसत्यों की बात 'अंधा युग' में की गई है, उनका तत्कालीन संदर्भ यही है। इसलिए देश–काल, परिस्थिति भेद और व्यक्ति भेद से उनमें अंतर दिखाई पड़ना था कि भिन्नता दिखाई देना, स्वाभाविक है। लेखक का मानना है कि इन सापेक्षिक सत्यों से ऊपर उठकर निरपेक्ष और शाश्वत मूल्यों की तलाश की जानी चाहिए क्योंकि यही वे मूल्य हैं, अथवा कहें कि यही वे अतिम सच हैं, जो कभी बदलते नहीं और जो आसानी से दिखते नहीं। हम सत्य के किसी खास हिस्से को ही पूरा सच मानने की भूल करते हैं, इसलिए सच के करीब होकर भी शाश्वत जीवन मूल्यों से कटे रह जाते हैं। शायद यही हमारी नियति है। धर्मवीर भारती सूक्ष्म संकेत के रूप में इसी बात की ओर इशारा कर रहे होते हैं कि मानवीय नियति अंधकार के उस वृत्त में खो जाना नहीं है, अपितु आगामी पीढ़ियों लिए मनुष्य बने रहने की आधारशिला प्रदान करना है। इसलिए वे कहते हैं।

नियति है हमारी बंधी प्रभु के मरण से नहीं
मानव भविष्य से।

नाटककार धर्मवीर भारती को उसी मानव भविष्य की चिंता अधिक सता रही है, क्योंकि मानवीय मूल्य एक–एक कर या तो व्यस्त होते जा रहे हैं या उनके आंतरिक संस्कार इतनी तेजी से बदल रहे हैं कि मानव भविष्य पर मंडराता खतरा उन्हें दिखाई देने लगा है। भरोसा है तो बस यही कि मूल्यों के प्रतीक प्रभु, शरीर से भले ही मर गए हो, परंतु सृजन और निर्मिति के अलग–अलग रूपों में वे निराकार भाव से विद्यमान रहेंगे और मानव मूल्यों की रक्षा करने के किसी न किसी रूप में आगे आते रहेंगे। संज्ञा और सर्वनाम बदले हो सकते हैं परन्तु उस मूल प्रवृत्ति की मृत्यु नहीं हो सकती है।

थोड़ी गंभीरता से देखें तो एक बार ऐसा भी लगेगा कि नाटककार द्वारा प्रस्तुत संपूर्ण महाभारतीय प्रसंग कहीं गहरे, मूल्यहीन शक्ति के अभ्युदय से उपजी प्राकृतिक बर्बरता के युगों की ओर वापसी को यात्रा थी क्योंकि महाभारत काल में क्रमश: एक–एक कर मूल्यों की मर्यादा का अतिक्रमण होता रहा। मूल्यहीन शक्ति के संचय ने ही पशु वृत्तियों का

पोषण किया और प्रभुदत्त शुद्ध एवं पवित्र आत्मा लेकर आत्मा लेकर आए मनुष्य भी आदशों से विमुख होते गए। आदर्श ओछे नहीं ऊँचे होने जरूरी होते हैं। अगर शुरू से ही लक्ष्य नीचा रखा जाए तो उस आदमी से ऊँचे निशाने की कितनी उम्मीद की जा सकती है। यह बात इस दृष्टिदोण से भी समझ ली जानी जरुरी है कि संपूर्ण नाटकीय पृष्ठभूमि में पाप और कुकर्म का कुफल ही फलित हुआ दीखता है। हर किसी ने कहीं पाप किया, ओछे मूल्यों का प्रश्रय दिया और हर किसी का अंत दुखदायी रहा। कहा जाता है कि एक अर्द्धसत्य बोलने के पाप का दड युधिष्ठिर को इस प्रकार मिला कि स्वर्गारोहण क्रम में जहाँ अन्य सभी पांडव क्रमशः बर्फ में समाधि लेते गए वहाँ युधिष्ठिर स्वर्ग तक पहुँचे पर उनकी भी एक उंगली गल गई। धृतराष्ट्र, कुती और गांधारी आदि अपनी ही लगाई आग में जलकर भस्म हो गए। वीभत्स इशारे ने दुर्योधन की जंघा तोड़ दी। दुष्ट दु:शासन की छाती फाड़कर उसके रक्त से द्रौपदी ने वेणीसंहार किया। पर शेष पांडव सहित द्रौपदी भी तो सशरीर स्वर्ग नहीं जा सकी। मूल्यों को कसने की कसौटी यह वेणीसंहार, चीरहरण, अभिमन्यु वध या द्रोणाचार्य की हत्या, अश्वत्थामा का प्रतिशोध नहीं। मूल्यों की कसौटी कृष्ण थे, प्रभु थे जिन्होंने औरों के पापों का प्रायश्चित अपने माथे ले लिया, जिसने उत्तरा के गर्भ के रूप में मानव भविष्य की रक्षा अपने सुदर्शन रूपीं चक्र से की। इतने सारे मूल्यों के संकट के बीच रोशनी की एक मशाल थे कृष्ण। इसलिए कृष्ण मूल्यों के आदर्श के रूप में स्वीकृत हुए।

स्वयं आकलन के लिए प्रश्न

प्र. 1 अंधांयुग नाटक की कथावस्तु कितने भागों में विभाजित है।

प्र. 2 अंधायुग नाटक की विधा क्या है।

प्र. 3 अंधायुग नाटक के कथानक का मूल स्त्रोत क्या है।

8.4 सारांश

अंधायुग धर्मवीर भारती का एक महत्वपूर्ण एवं बहुचर्चित नाटक है। धर्मवीर भारती ने नाटक को एक नया आयाम दिया। अंधायुग नाटक में धर्मवीर भारती जी ने पौराणिक कथा के माध्यम से आधुनिक भावबोध का रूपातंरण किया है। आज के विघटित मानव मूल्यों की समस्याओं को नाटक में प्रमुखता से स्थान दिया है।

8.5 कठिन शब्दावली

(1) मनोबुद्धि — मन अाैर बुद्धि

(2) वंचक — धोखेबाज, ठगने वाला

(3) वत्कल — पेड़ की छाया से बना वस्त्र जिसे तपस्वी पहनते हैं

8.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

प्र. 1 उत्तरपांच

प्र. 2 उत्तरकाव्य नाटक

प्र. 3 उत्तरमहाभारत की घटना

8.7 संदर्भित पुस्तकें

(1) अंधायुग - धर्मवीर भारती

(2) धर्मवीर भारती ग्रंथावली - चंद्रकांत वांदिवडेकर

8.8 सात्रिक प्रश्न

प्र. 1 अंधायुग नाटक का सार अपने शब्दों में लिखिए।

प्र. 2 अंधायुग नाटक का उद्देश्य स्पष्ट कीजिए।

प्र. 3 अंधायुग नाटक के संवादों की विशेषताएं बताइए।

*****

इकाई-9

अंधायुग नाटक का समीक्षात्मक अध्ययन

संरचना

9.1 भूमिका

9.2 उद्देश्य

9.3 अंधायुग नाटक का समीक्षात्मक अध्ययन

- कथावस्तु
- चरित्र योजना
- संवाद योजना
- रंगमचायिता
- भाषा शैली

स्वयं आकलन प्रश्न

9.4 सारांश

9.5 कठिन शब्दावली

9.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

9.7 संदर्भित पुस्तकें

9.8 सात्रिक प्रश्न

इकाई-9
अंधायुग नाटक का समीक्षात्मक अध्ययन

9.1 भूमिका

इकाई आठ में हमने धर्मवीर भारती कृत अंधायुग नाटक के सार एवं उद्देश्य का अध्ययन किया। इकाई नौ में हम अंधायुग नाटक का समीक्षात्मक अध्ययन करेंगे। समीक्षात्मक अध्ययन के अंतर्गत हम कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, संवाद योजना, रंगमचयिता इत्यादि का विस्तार पूर्वक अध्ययन करेंगे।

9.2 उद्‌देश्य

इकाई नौ का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि

1. अंधायुग नाटक का समीक्षात्मक अध्ययन करेंगे।
2. अंधायुग नाटक की कथावस्तु क्या है।
3. अंधायुग नाटक के पात्रों का चरित्र-चित्रण कैसा है।
4. अंधायुग नाटक की संवाद योजना कैसी है।

9.3 'अंधा युग' समीक्षात्मक अध्ययन

अन्धा युग धर्मवीर भारती का एक महत्वपूर्ण एवं बहुचर्चित नाटक है। भारतेन्द्र युग से चली आ रही नाट्य परम्परा को प्रसाद युग में स्थायीत्व मिला। जयशंकर प्रसाद ने नाटक में ऐतिहासिकता को प्रधानता दी, परन्तु धर्मवीर भारती ने नाटक को एक नया आयाम दिया। प्रत्येक महान् लेखक जीवन के यथार्थ को शब्दबद्ध करके उसे अपनी कलम के माध्यम से तराशकर आदर्श की कसौटी पर प्रस्तुत करता है। किसी रचनाकार में आदर्श का स्वर प्रमुख रहता है और यथार्थ गौण हो जाता है। परन्तु कभी कोई लेखन यथार्थ को अधिक महत्व देता है और आदर्श को कम। कभी लेखक दोनों में सन्तुलन बनाने में सफल हो जाता है। नाटक में धर्मवीर भारतीय जी ने पौराणिक कथा के माध्यम से आधुनिक भावबोध का रूपांतरण किया है। आज के विघटित मानव मूल्यों की समस्या को नाटक में प्रमुखता से स्थान दिया है। नाटककार ने युद्ध की समस्या तथा उसके विध्वसकारी परिणाम, भाई-भतीजावाद धर्म-अधर्म, आदर्श-यथार्थ आदि जीवन सत्यों को मुखरित किया है।

''धर्मवीर भारती'' व्यक्तित्व एवं कृतित्व

प्रास्ताविक-

आधुनिक हिन्दी साहित्य के मौलिक रचनाकारों की सूची में 'धर्मवीर भारती' का नाम उल्लेखनीय है। डॉ. ध र्मवीर भारती जी ने हिन्दी साहित्य के सभी विधाओं में सफलता पाई है। उनका नाम 'बहुमुखी प्रतिभा' के रचनाकार के रूप में हमारे सम्मुख आता है। उनकी लेखनी जिस विषय एवं विधा पर चलती है वहाँ भारतीजी का व्यक्तित्व निखर आता है। धर्मवीर भारती आज के जाने-माने कथाकार, कवि नाटककार, निबन्धकार और पत्रकार है। उनकी लेखनी ने अभी तक विराम नहीं लिया है। धर्मवीर भारती जी ने साहित्य निर्मिती के साथ-साथ मानव कल्याण सम्बन्धी अनेक आन्दोलनों का नेतृत्व है। भारती जी ने अपनी बाल्यावस्था में दूसरे महायुद्ध के प्रलाप का अनुभव किया है। तत्पश्चात् उसे अपने साहित्य में गीतिनाट्य विषय बताया है।

भारती जी न केवल साहित्यकार ही है, बल्कि उसके साथ-साथ उन दिनों चले हुए सन् 1942 के स्वतंत्रता संग्राम आन्दोलन कर्ताओं में एक है। इसी आन्दोलन में सक्रिय सहभाग लेने से उनकी पढ़ाई एक साल के लिए रुक गई थी। धर्मवीर भारती जी मावसंवादी चितन के गूढ़ उपासक है। इस मार्क्सवाद के बारे में स्वयं लेखक कहते है- **'मेरी आस्था कभी भी मार्क्सवाद में कम नहीं हुई और न मैंने अपनी जनता के दु:ख दर्द से मुंह फेरा है। धीरे-धीरे अपने**

दृष्टिकोण में अधिकाधिक सामाजिकता विकसित करने की ओर मैं ईमानदारी से उन्मुख रहा हूं और रहूंगा। और उसी दृष्टि से जहां मुझे मार्क्सवादी शब्द जाल के पीछे भी असन्तोष, अहंवाद और गुटबन्दी दिख पड़ी है उसकी ओर साहस से स्पष्ट निर्देश करना मैं अनिवार्य समझता हूं क्योंकि ये तत्व हमारे जीवन और हमारी संस्कृति की स्वस्थ प्रगति में खतरे पैदा करते हैं। मैं जानता हूं कि जो मार्क्सवादी अपने व्यक्तित्व में सामाजिक तथा मार्क्सवाद की पहली शर्त ऑब्जेक्टिवीटी विकसित कर चुके है, वे मेरी बात समझेंगे और इतना मेरे लिए यथेष्ट है।' हर एक क्षेत्र में अपना नाम कमाने वाले एवं अपने व्यक्तित्व का प्रभाव दिखाने वाले लेखक धर्मवीर भारती जी का जीवन परिचय कर लेना मेरे सौभाग्य की बात है।

- **कथावस्तु**

अंधा युग की कथा का घटना काल महाभारत के अठाहरवे दिन की संध्या से लेकर प्रभास तीर्थ में कृष्ण की मृत्यु तक है। उद्घोषक समानांतर रूप से हिन्दी और संस्कृत में उद्घोषणा करता है कि यह कथा कलयुग की है– जहां सब कुछ लोलुपता से संचालित होगा। इस युग में आसुरी शक्तियों का राज होगा और विध्वंस ही इस युग का अंतिम नियति होगी। इस युग की कथा ज्योति की होगी पर लिखी जाएगी–अंधों के माध्यम से! कृष्ण ही एकमात्र सहारा होंगे जो सुलझा सकेंगे इस युग के द्वंद्व को! नाटक का पहला अंक कौरव नगर में दिखाई देता है जहां भय की जीत हुई है, विवेक की हार। अंधापन जीता है– चाहे वह ममता का अंधापन हो या अधिकारों का! ऐसे में थकी हुई जनता के दो प्रतिनिधि दो सैनिक दिखाई देते हैं। दोनों सैनिक थके हैं, इसलिए नहीं कि उन्होंने युद्ध में हिस्सेदारी की है बल्कि इसलिए कि वे उस अंधी मर्यादा की रक्षा कर रहे है, जो गन्दी और गलीज है। जिसके होने या न होने से कोई अंतर नहीं पड़ता।

यह कथा मात्र महाभारत के युग और युद्ध को ही नहीं दर्शाती बल्कि युद्ध की सोच और विकृत मानसिकता को भी साकार करती है। युद्ध भी कभी किसी सभ्यता के लिए सार्थक सिद्ध हुए हैं? यह प्रश्न ऐसा है जिसके संदर्भ अमेरिका से लेकर इराक तक से जुड़े हुए हैं। यह जानते हुए भी कि युद्ध सभ्यता का विनाश करते है, हिरोशिमा और नागासाकी जैसे प्रकरण घटित हुए और लगातार आज भी अणु–युद्धों का खतरा मंडराता दिखाई दे रहा है। हम आज भी शिक्षित नहीं हो सके, और विश्व–मानवता जैसे शब्द खोखले होते चले गए। इसकी पूरी पृष्ठभूमि भारती जी के इस नाटक में दिख पड़ती है।

कुल 13 पात्रों के इस नाटक में नायक की भूमिका सबसे अधिक त्रासद और भयावह है। संजय धृतराष्टं के समीप जाने का साहस नहीं जुटा पा रहे। विदुर सत्य बोलने के लिए अभिशप्त हैं पर सत्य को सुनने की किसी को फुर्सत नहीं! गांधारी अंधी ममता के वशीभूत यह जानते हुए भी कि दुर्योधन जीतेगा नहीं याचक को एक मुट्ठी मुद्राएं देती है क्योंकि उसने झूठा भविष्य होते हुए भी दुर्योधन का जयघोष किया हैं।

- **चरित्र योजना**

अंधा युग एक पौराणिक नाटक ही ना होकर आज के आधुनिक काल के चरित्र को सामने रखने की क्षमता रखता है। समय बदल गया काल बदल गया है परन्तु परिस्थितियां आज भी वही है। कई बार सृष्टि के नष्ट हो जाने पर सृष्टि किस प्रकार पुनः सृजन करती है। अधायुग नाटक के माध्यम से हम जान पाते हैं।

दूसरे विश्वयुद्ध के पश्चात संसार एक प्रकार की दुविधा में आ गया और इस दुविधा का समाधान सबसे पहले साहित्य बताता है। साहित्य के द्वारा ही हम पुराने इतिहास को जानकर नवनिर्माण की ओर अग्रसर हो पाते हैं। अंधा युग नाटक इसी प्रकार का एक प्रतीक काव्य नाटक है। दूसरे विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद जो साहित्य में आया उसमें दु:ख विनाश, अह दुश्चिता दिखाई देती है, पश्चिम ने ऐसा अनुभव कर लिया जैसे हो किसी ऐसे चक्र में फंस गया है जहां से निकलना किसी प्रकार भी संभव नहीं। राजनीति व साहित्य में घोर अंधेरापन छाने लगा, द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् देश विदेश, राजनीति साहित्य, समाज सत्ता हर किसी में प्रतीक रूप से अंधा युग ही दिखाई पड़ता है।

झूठे लोग नाम धन ऐश्वर्य कमा रहे हैं और सत्य कहने वालों की दुर्दशा हो रही है। यह समाज में अंधायुग का ही प्रतीक है। रूपए-पैसे वाले लोगों के लिए कानून एक मजाक बनकर रह गया है। इस तरह से देखा जाए तो ''महाभारत का अंधा युग'' आज से कुछ दिन पूर्व आज के पश्चिमी और भारतीय साहित्य तथा राजनीतिक विषमता का योग प्रतीत होता है।

अश्वत्थामा

इस नाटक में प्रमुख पात्र अश्वत्थामा है जो अपमानजनक दुर्दशा का शिकार होता है। वह पूंजीवाद के परिणामस्वरूप उभरने वाला हिंसक पाशविकता का प्रतीक है। नास्तिक अस्तित्ववाद का भी वह प्रतीक है।

युद्ध क्षेत्र में हाथी अश्वत्थामा के मारे जाने पर गलत उद्घोषणा से उसके पिता को लगे आघात को वह जानता है। वह अंधे धृतराष्ट्र की मरणोन्मुख संस्कृति का पक्षधर है। पिता की हत्या से उसका अह जागृत हो उठता है और वह पशुवत व्यवहार करता है। वृद्ध याचक भविष्य की हत्या कर बैठता है। उसके अस्तित्व का अंतिम अर्थ केंवल वध है। उसकी नस-नस में अंधायुग बैठा हुआ है, अंधी प्रतिहिंसा वह पागलपन है।

गांधारी

गांधारी जो एकमात्र प्रत्यक्ष नारी चरित्र के रूप में नाटक में विद्यमान है। वह और धृतराष्ट्र अश्वत्थामा के व्यक्तित्व को संरक्षण देते हैं। गांधारी कटु यथार्थवादी, सत्ता में खोई हुई और जानबूझकर अंधी है।

धृतराष्ट्र

धृतराष्ट्र अंधा व स्वार्थी शासक है। वह इतना अंधा है कि उसको अपने पुत्र के किसी कर्म से कोई शिकायत नहीं होती। विदुर अहिंसावादी विचारधारा का प्रतीक है। युधिष्ठिर पेशेवर राजनीतिज्ञों का प्रतीक है। न तो जनता उनके राज्य में कुछ सुखी है और न उनके पहले के राज्य में ही सुखी थी।

संजय

संजय तटस्था का प्रतीक है। साथ ही वह कौरवों के पक्ष में कोई आलोचना नहीं करता और सारे युद्ध का वर्णन करता दिखाई पड़ता है। उसने सत्य कहने की प्रतिज्ञा ली है फिर भी वह कौरवों की आलोचना से बचता हुआ दिखाई पड़ता है। संजय का अश्वत्थामा गला घोटता है। यह इस बात का प्रतीक है कि वह सत्य का आश्रय लेने वाले व्यक्ति का मानव-पशु गला घोंटता है। जिस प्रकार आज अमीर, राजनेता गरीब लोगों का शोषण कर उनका गला घोंट रहे हैं। इससे रहस्यवादिता का प्रतीक भी दिखाई देता है।

युयुत्सु

युयुत्स आत्मघाती अंधता का प्रतीक है। युयुत्सु इस बात का प्रतीक है कि किस प्रकार बुरे घर में भी अच्छा बालक जन्म लेता है और सबसे विद्रोह कर सत्य का साथ देता है परन्तु वह अच्छा करके भी बुरा फल प्राप्त करता है जिससे उसका मन ग्लानि से भर उठता है। गूंगा भिखारी आज के युद्ध-विकलांगों का प्रतीक है। व्यास शांतिकामी साहित्यकार और नेता का प्रतीक है। बलराम उग्रतावादी निष्क्रिय शक्ति के प्रतीक है।

वृद्ध याचक

वृद्ध वाचक आज के अवसरवादी ज्योतिषियों का प्रतीक है। साथ ही वह लेखक के दृष्टिकोण का प्रतीक है।

पहरी

यह दोनों पहरी दासवृत्ति के प्रतीक है जनता के प्रतीक है। वे कहते हैं नृप चाहे कोई भी हो हमें कोई हानि होने वाली नहीं जो आलस्य मयी प्रवृत्ति का प्रतीक है।

कृष्ण

कृष्ण मानव मूल्यों व दिव्य चेतना का प्रतीक है। मानव मूल्य की प्रतिष्ठा द्वारा ही मानव-भविष्य सुरक्षित रह सकता है। जिसकी सुरक्षा श्रीकृष्ण करते दिखाई पड़ते हैं।

इस प्रकार अंधा युग के प्राय: सभी पात्र प्रतीकात्मक है तथा प्रभु-मरण, अश्वत्थामा एवं दुर्योधन पाश्विक चरित्र, युयुत्सु- अंधत्व सभी घटनाएं अपना प्रतीकात्मक अर्थ रखती है। कृष्ण और व्यास की मानव भविष्य के प्रति चिंता आज भी दिखाई पड़ती है क्योंकि दो राष्ट्रों का संघर्ष व संकट पूरे विश्व में दिखाई पड़ता है इस प्रकार अंधायुग एक प्रतीकात्मक काव्य है।

- **संवाद योजना**

एक बार यह स्वीकार कर लेने पर कि 'अंधायुग' वस्तुत: काव्य नाटक है यह बात शुरू से ही साफ हो जाती है कि 'अंधायुग' की भाषा काव्यात्मक भाषा होगी, कविता की भाषा होगी, अन्य गद्य नाटकों की तरह सामान्य बोलचाल की गद्यात्मक भाषा नहीं। नाटक में काव्य दो प्रकार के संभव हैं: गद्यात्मक और पद्यात्मक। गद्य में भी कविता बन सकती है और भाषा काव्यात्मक ही कही जाएगी। दूर जाने की जरूरत नहीं, जयशंकर प्रसाद के अनेक नाटक और जगदीशचन्द्र माथुर के 'कोर्णाक' नाटक इसके उदाहरण हैं। पद्यात्मक भाषा में संभव है आपको ऐसे अनेक पद्य नाटक मिलेंगे जिनमें छंद तो है, पर कविता नहीं है। काव्य नाटक में कविता की भाषा तो होगी ही उसका गद्यात्मक या पद्यात्मक में होना बाद की बात है।

नाटक की भाषा की खासियत यह होती है कि उसका अंतिम लक्ष्य दृश्यात्मक प्रस्तुति है इसलिए उसमें 'दिखाने' की प्रवृत्ति मुख्य होती है। अलबत्ता जो बातें दिखाई नहीं जा सकती अथवा जिन्हें दिखाने की कोशिश में माध्यम के दुरूपयोग को अनावश्यक अनपेक्षित विस्तार की संभावना रहती है वैसे प्रसंगों को दो चार शब्दों में कह देना ज्यादा अनुकूल होता है। पुराने नाटकों का स्वागत कथन, नेपथ्य कथन एवं सूच्य संवादादि का यही प्रयोजन होता था। 'अंधायुग' में कथा गायन की युक्ति से भी वहीं काम लिया गया है। नाटक में जो बात दिखाई जा सकती है उसे शब्दों में नहीं कहा जाना चाहिए। लेकिन रंगमंच आधारित दृश्य प्रस्तुतियों की तरह उनमें शब्दों को एकदम वहिष्कृत भी नहीं किया जाना चाहिए। कथा को आगे बढ़ाने वाले, आगे-पीछे की घटनाओं में तारतम्य बनाए रखने के लिए पात्रों के मनोभावों-विचारों की अभिव्यक्ति और चरित्र-चित्रण के लिए या फिर वर्तमान प्रसंग की दृश्येतर व्याख्या के लिए संवाद योजना तो होती ही है। संवाद योजना का ही दूसरा अर्थ है भाषा का प्रयोग। दूसरी ओर किसी नाटक की दृश्य रचना करते हुए ऐसी भी स्थितियां बनती हैं जहां शब्दों की सामर्थ्य चुकने लगती है। अभिनय प्रधान रचना होने के कारण वैसे स्थलों पर अभिनय की भाषा या जिसे हरकत की भाषा कहा जाता है, उस भाषा का प्रयोग किया जाता है। दोनों प्रकार की भाषा मिलकर दृश्य के अर्थ को स्पष्टता, पूर्णता और अर्थवत्ता प्रदान करते हैं। इसे एक छोटे से प्रसंग के माध्यम से समझ सकते हैं। दूसरे अंक का प्रसंग है कि वृद्ध याचक को अश्वत्थामा गला घोंट कर मार डालता है। दृश्य मंच पर यह प्रसंग इस प्रकार घटित होता है कि वृद्ध याचक को देखकर:

आज नहीं बच पाएगा
वह इन भूखे पंजों से
ठहरो ! ठहरो!
ओ झूठे भविष्य
वंचक वृद्ध

और ऐसा कहता हुआ अश्वत्थामा दांत पीसते हुए दौड़ता है। विंग के निकट वृद्ध को दबोचकर नेपथ्य में घसीट ले जाता है। 'नेपथ्य में गला घोंटने की आवाज' उभरती है और 'अश्वत्थामा का अट्टहास' सुनाई पड़ता है। कृपाचार्य कृतवर्मा हांफते हुए अश्वत्थामा को पकड़कर स्टेज पर लाते हैं।' कृपाचार्य कहते हैं:

यह क्या किया

अश्वत्थामा

यह क्या किया?

अश्वत्थामा सफाई देता है:

पता नहीं मैंने क्या किया,

मातुल मैंने क्या किया?

क्या मैंने कुछ किया?

अब इस पूरे प्रसंग को समझे तो इसकी एक व्याख्या यह उभारती है कि भविष्य (वृद्ध याचक) की हत्या हो गई है। दूसरी यह कि अश्वत्थामा ने स्वयं कुछ नहीं किया उस पर तो 'अंधायुग' सवार था जिसने उससे वृद्ध की हत्या करवाई। इसलिए जब ऊपरी आवेश उतर जाता है तो उसे पता ही नहीं होता कि उसने कुछ किया भी है। अर्थ की ये भंगिमाए अश्वत्थामा के दोनों सवादों की भाषा की देन है, पहले में अश्वत्थामा वृद्ध याचक को झूठा भविष्य कहता है और तब उसे मारता है अर्थात् उसने झूठे भविष्य की हत्या की। दूसरे संवाद में वह यह स्वीकार ही नहीं करता कि उसने कुछ किया भी है 'क्या मैंने कुछ किया?' पर उसे आभास है कि किसी अध शक्ति ने, उसके अचेतन की हिंसा ने उसके चेतन पर तात्कालिक रूप से अधिकार कर उससे करवाया है, पर स्थिति उसके समक्ष स्पष्ट नहीं है। वह स्पष्ट होती है अंतिम दृश्य में जब प्रभु की मृत्यु के उपरांत वह स्वीकार करता है कि:

मेरा था पाप

क्या मैंने

वध

किंतु हाथ मेरे नहीं थे वे

हृदय मेरा नहीं था वह

अंधायुग पैठ गया था

मेरी नस नस में।

इस संक्षिप्त व्याख्या के संदर्भ में एक बार पुन: अश्वत्थामा के उक्त दोनों संवादों को देखें तो उसकी काव्यात्मकता और उसका अर्थगत सौंदर्य स्पष्ट हो जाता है। परन्तु इस पूरे प्रसंग से अगर हरकतवाली भाषा का अंश अर्थात् अश्वत्थामा का दांत पीसता हुआ वृद्ध के पीछे दौड़ना, उसे दबोचकर घसीटते हुए नेपथ्य में ले जाना और नेपथ्य से गला घोंटने की आवाज फिर कृपाचार्य और कृतवर्मा द्वारा अश्वत्थामा को जबर्दस्ती नेपथ्य कर्म से विरत कर मंच पर पकड़ लाना। यह पूरा का पूरा दृश्य अपने आप में हरकत की भाषा का एक अंग है जिससे याचक की हत्या और हत्या के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले मानसिक तनाव, अनुभूति की तीव्रता की रचना आदि का काम लिया गया है। तभी संवाद भाषा या कि भाषिक शब्दों की चर्चित व्यंजनाएं उभरकर सामने आ सकी हैं। काव्य नाटक की भाषा की काव्यात्मकता को दृष्टि में रखकर ही काव्य नाटक जैसा नामकरण सामने आया है।

परन्तु इसका आशय यह कदापि नहीं लिया जाना चाहिए कि वह संवाद काव्य है। संवादों की भाषा में काव्यात्मकता हो, यह जरूरी है परन्तु भाषा की यही एक जरूरत तो है नहीं, उसके जरिए नाटककार को और काम भी करने होते हैं, कथानक का नियंत्रण रखना होता है, चरित्र-चित्रण करना होता है, सूच्य घटनाएं सामने लानी होती है, कथावस्तु के अंतराल को जोड़ना होता है, आगामी घटनाओं के प्रच्छन्न संकेत देने होते हैं, एवं अन्य ऐसे ही कई प्रयोजन होते हैं जिनके लिए भाषा का इस्तेमाल होता है। फिर भी काव्य नाटकों का पूरा विधान ही काव्यात्मक होता है और गद्य नाटकों के मुकाबले उसमें अनुभूति की तीव्रता और गहराई कुछ ज्यादा होती है। कविता की भाषा में ही

अनुभूतियों की तीव्रता को गहराई के साथ व्यंजित करने की शक्ति अधिक होती है। इसलिए मार्मिक प्रसंगों का काव्य नाटकों में सायास विधान किया जाता है जिससे पात्र और दर्शक अधिकाधिक आंदोलित हो सकें। ऐसी रचना को अतत: जनसाधारण से जुड़ना होता है इसलिए कवित्वपूर्ण भाषा होने के बावजूद इसमें वैसी सरलता की अपेक्षा बनी रहती है जिससे यह सहज ही सर्वजन और बोधगम्य हो सके। लिहाजा कविता की भाषा होकर भी वह बोलचाल की भाषा हो और नाटकीय भी हो यह जरूरी है यानी सरलता, सहज बोधगम्यता, काव्यात्मकता और नाटकीयता के गुण, काव्य नाटक की भाषा और संवाद योजना के अपरिहार्य गुण बन जाते हैं। पुन: स्मरण कर लेना चाहिए कि शब्दों की भाषा के साथ हरकत की भाषा की अन्विति भी बनाए रखनी होती है।

काव्यात्मक भाषा का लयात्मकता से बड़ा गहरा रिश्ता है। जरूरी नहीं कि अनुप्रासों के जरिए वहां अनुरणन ध्वनि के द्वारा भाषिक प्रवाह की सहजता को नियंत्रित किया जाए। इसके विपरीत सहज स्वाभाविक लय भी लाई जाए अथवा छंदों के द्वारा भाषिक की सहजता को नियंत्रित किया जाए। इसके विपरीत सहज स्वाभाविक लय के साथ जो सरलतम शब्द विधान संभव हो सके वही अधिकतम प्रभावशाली भाषा बन जाती है। सामान्य रूप से देखा गया है कि मुक्त छंदात्मकता काव्य नाटकों के अधिक अनुकूल रही है। इसमें एक बड़ी सुविधा नाटककारों को यह उपलब्ध होती है कि वह पात्रों के भावों के उतार-चढ़ाव के अनुरूप अलग-अलग लयों में संवाद योजना करने के लिए स्वतंत्र होती है। मंचीय साक्ष्य से नाटककार जिस दृश्य की योजना करता है उस दृश्य की अपनी गत्यात्मकता होती है और दृश्य विशेष में घटित होने वाले क्रिया व्यापार अपनी विविधता में अलग-अलग लयों की संवाद योजना की अपेक्षा रखते हैं। इस लिहाज से भी मुक्त छंद काव्य नाटक के अनुकूल पड़ता है। जैसे चौथे अंक का ही उदाहरण लेते हैं। इस अंक के कथागायन के शब्द विन्यास से उभरती हुई लय वह नहीं है जो प्रथम अंक के कथागायन की लय है क्योंकि दोनों की भावात्मक स्थितियां भिन्न-भिन्न हैं। चौथे अंक में ही गांधारी विदुर और संजय के संवावद भी अलग-अलग देखे जाने चाहिए, क्योंकि तीनों पात्र भिन्न मानसिकताओं में संवाद बोलते हैं इसलिए यहां भी लयात्मकता भिन्नता है। काव्य नाटकों में काव्यत्व की भूमिका किंचित प्रधान होती है और चूंकि काव्यत्व का सीधा संबंध अनुभूति की तीव्रता, भावावेश और मनोवेगों के उद्वेलन से होता है इसलिए यदि कहीं अतिरंजनापूर्ण भाषा बनती है उसमें बिंब, प्रतीक, अलंकार और लय आदि का सम्मिश्रण स्वत: होता जाता है। काव्य नाटक में आद्यंत इन विशेषताओं की उपस्थिति वस्तुत: एक सामान्य बात है। काव्य नाटक होने के कारण 'अंधायुग' में भी कामोबेश ये सारी विशेषताएं मौजूद हैं।

अंधायुग की काव्य भाषा और संवाद योजना पात्रों के चरित्र चित्रण में समर्थ है, परिस्थितियों के मर्म को उद्घाटित करने वाली है, संक्षिप्त है, सरस और सजीव है, बोलचाल की शब्दावली के प्रयोग से सरल, सुबोध और सहज बोधगम्य है। निम्नलिखित उदाहरण इसका प्रमाण है:

मैं दो बड़े पहियों के बीच लगा हुआ
एक छोटा निरर्थक शोभा-चक्र हूँ
जो बड़े पहियों के साथ घूमता है
पर रथ को आगे नहीं बढ़ाता
और न धरती ही छू पाता है!
और जिसके जीवन का सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह है
कि वह धुरी से उतर भी नहीं सकता!

नाटक की संवाद योजना निर्विवाद रूप से गत्यात्मक, भावपूर्ण, बिंबधर्मी, अभिनेय क्षणों की अभिव्यक्ति के अनुरूप और अभिनय की भाषा या हरकत की भाषा को पूर्णता प्रदान करने वाली है। संवाद योजना के माध्यम से पात्रों के गुणावगुणों की अभिव्यक्ति हुई है, नाट्यवस्तु को गति मिली है और वस्तु विधान को निश्चित प्रभाव तक ले जाने में संवाद योजना की सफलता रही है।

गांधारीः

तो, वह पड़ा है कंकाल मेरे पुत्र का
किया है यह सब कुछ कृष्ण
तुमने किया है यह
सुनो
आज तुम भी सुनो
मैं तपवसिनी गांधारी
अपने सारे पिछले जन्मों के पुण्यों का
बल लेकर कहती हूं
कृष्ण सुनो
तुम यदि चाहते तो रूक सकता था युद्ध यह
मैंने प्रसव नहीं किया था कंकाल वह
इंगित पर तुम्हारे ही भीम ने अधर्म किया
क्यों नहीं तुमने वहां शाप दिया भीम को
जो तुमने दिया निरपराध अश्वथामा को
तुमने किया है प्रभुता का दुरूपयोग

यह सही है कि कावय नाटकों में बोलचाल की सरल भाषा के प्रयोग का महत्वपूर्ण स्थान रहता है पर वह नितांत असाहित्यिक और नीरस भी हो जाए तो रचना भाषिक धरातल पर कहीं असफलता का अहसास कराने लगती हैं। 'अंधायुग' में दोनों प्रकार की भाषिक क्षमताओं का उपयोग सम्भव हुआ है। अर्थात् एक ओर जहां बोलचाल की भाषा की सरलता-सहजता है, वहीं साहित्यिकता या कहें कि काव्यात्मकता के सरस अर्थगभिंत, कलात्मक प्रयोग का संतुलन भी है। 'गूंगों के सिवा आज और कौन बोलेगा मेरी जय' 'हर क्षण इतिहास बदलने का क्षण होता है' 'अंतिम परिणति में दोनों जर्जर करते हैं, पक्ष चाहे सत्य का हो अथवा असत्य का' 'अधों को सत्य दिखाने में क्या मुझको भी अंधा ही होना है' जैसे संवादों के उदाहरण इस बात को समझने के लिए पर्याप्त है कि इन संवादों की व्याख्या की संभावनाओं के इनकी काव्यात्मकता असंधिग्ध बना दी है। यद्यपि भाषा सरल, सहज और बोलचाल की ही है।

एक बात तो साहित्य का सामान्य विद्यार्थी भी समझता है कि दर्शन और विज्ञान की भाषा अभिधामूलक और पारिभाषिक शब्दावली वाली होती है जबकि कविता की भाषा लक्षणा, व्यंजनामूलक बिंबात्मक और संदर्भमूलक होती है। संदर्भों के बिंब बनाने के लिए उपमानों की योजना की जाती है 'यह कथा ज्योति की है अंधों के माध्यम से। सादृश्यमूलक अलंकारों के लिए भी यही जगह उपयुक्त होती है संदर्भों के सदृश उपमान की योजना जैसे 'युधिष्ठिर के अर्द्धसत्य, घायल और कटा हुआ' या 'अंधेपन के अंधियारे में भटका हूं। अग्नि है नहीं यह ज्योतिवृत्त। प्रतीकों के प्रयोग की संभावना भी भाषा के इसी धरातल पर स्पष्ट होती है।

नाटककार धर्मवीर भारती ने 1972 में 'इनैक्ट' पत्रिका में अपने पत्र में यह स्पष्ट स्वीकार किया था कि 'अंधायुग' की रचना उन्होंने वस्तुतः मंचीय प्रस्तुति के लिए रामलीला के अनुकरण पर की थी। इसलिए नाटक का मंचन तो होना ही था। यह अलग बात है कि नाटक रेडियों प्रसारण में भी अपना सफल प्रभाव संप्रेषित करने में सक्षम रहा है।

'अंधायुग' का प्रथम मंचन 1962 के दिसम्बर में सत्यदेव दुबे के निर्देशन में खुले आंगन में हुआ। दो वर्ष बाद श्री दुबे के निर्देशन में ही थियेटर युनिट द्वारा बम्बई में इसकी प्रस्तुति हुई। कलकत्ता की नाट्य संस्था 'अनामिका' ने 25 दिसंबर 1964 को श्री दुबे के निर्देशन में ही इसे प्रस्तुत किया। इससे पहले 1963 में दिल्ली के फिरोजशाह कोटला के खंडहर में इब्राहिम अल्काजी द्वारा भी इसे प्रस्तुत किया गया। इसके बाद दिल्ली में ही 18 मई 1967 को तालकटोरा गार्डन और 28 अप्रैल से 5 मई 1974 के बीच पुराने किले में भी इसके कई प्रदर्शन हुए। नाट्य प्रदर्शन का यह सिलसिला अनवरत जारी रहा और इसे हिन्दी सहित कुछ अन्य भारतीय भाषाओं में भी खेला जाता रहा। नाटक की प्रस्तुतियों का विवरण संकलित करना जरा कठिन काम होता है क्योंकि अखबारी खबरों में ये बिखरी होती है और बहुत सारे प्रदर्शनों की सूचना तो अखबारों में भी नहीं आ पाती। फिर भी पत्र-पत्रिकाओं के आधार पर सुरेश गौतम और वीणा गौतम ने प्रस्तुतियों की लम्बी सूची परिश्रम से प्रस्तुत की है। यहां यह कहना आवश्यक है कि यह हिंदी के उन कुछ नाटकों में से हैं, जिन्हें रंगमंच पर भी अपार सफलता मिली और जिसे भारत के लगभग सभी प्रतिष्ठित निर्देशकों ने मंचित किया।

रंगमंचयिता

जैसा कि पहले कह चुके हैं, नाटक को रचते समय उस नाटक के मंचीय स्वरूप की एक कल्पना तो नाटककार के मन में रहती ही है और उसकी कल्पना पूरी तौर पर सही उतरे इसके लिए वह अपेक्षित रंग निर्देश दे देता है ताकि उन निर्देशों को ग्रहण कर निर्देशक नाटककार को कल्पना को सही रूपाकार दे सके। परन्तु कभी-कभी निर्देशक नाट्य प्रस्तुति का प्रभाव बढ़ाने के लिए अपनी सूझ-बूझ और प्रतिभा का प्रयोग करते हैं और प्रस्तुति में नाटक के कलात्मक सौंदर्य को बढ़ा देते हैं। जैसे लक्ष्मीनारायण लाल के नाटक 'करफ्यू' में क्रूरता का प्रभाव उभरने के लिए निर्देशक ने नाटककार द्वारा दिए हुए सेट के निर्देश से भिन्न अपनी कल्पना से सेट को पिंजड़े के सींखचों के रूप में ढाल दिया। मॉरीशस में 'अंधायुग' को प्रस्तुत करते हुए निर्देशक मोहन महर्षि ने भी कुछ ऐसे ही छोटे-मोटे प्रयोग किए और वे बड़े ही असरदार साबित हुए। जैसे यह कि युद्ध के हाहाकार को उन्होंने पार्श्वध्वनि से उभारा और लुंज-पुंज कौरव सेना को उन्होंने धृतराष्ट्र के हाथों द्वारा अभिव्यक्त कराया ताकि धृतराष्ट्र के साथ दर्शक भी यह महसूस कर सके कि युद्ध की परिणति कितनी कुत्सित और जघन्य होती है। महर्षि ने पांच अकों को तीन अकों में संक्षिप्त कर दिया था और सेट एक ही रखा था। रंग समीक्षकों की राय में मंच-रचना की दृष्टि से यह भी संभावनापूर्ण प्रयोग था।

हर नई संस्था द्वारा नए कलाकार और निर्देशकों के द्वारा एक ही नाटक की प्रस्तुति के अलग-अलग रंग देखने को मिलते हैं। अंधायुग की यह विशेषता है इसे नए-नए प्रयोगों के साथ प्रस्तुत किया जा सकता हे। हर नई प्रस्तुति में अंधा युग एक नए अर्थ में हमारे सामने प्रस्तुत हो सकता है। फिरोजशाह कोटला के खंडहर में अल्काजी के निर्देशक में हुई प्रस्तुति के प्रसंग में कहा गया कि 'अंधायुग' के अभिशप्त पात्रों और उनकी जर्जरता, पराजय, निराशा और टूटन से ध्वस्त पृष्ठभूमि में व्याप्त काली अंधी की छायाओं को मूर्त रूप देने के लिए कोटला के खंडहरों के बीच एक बुर्ज, टूटे दरवाजे, सीढ़ियों और रथचक्र वाले मुक्ताकाशी खुले मंच का आश्रय लिया गया। जाहिर है यह वातावरण अपने आप में नाटक की विषयवस्तु की भयावहता को प्रतिबिंबित करने में पूर्णतः समर्थ था। ध्वस्त खंडहर की पृष्ठभूमि में मृत्यु के प्रतीक गिद्ध समूह. सत्य की पराजय का प्रतीक टूटे हुए रथ का पहिया, बुझे हुए मन की तरह प्रकाशहीन मार्ग, कोने से छिपा बैठा अंधेरे का अहेरी आखेटक, भूतों की परछाई की तरह घूमते कौरवकुल गौरव, यह सब प्रस्तुत करना और दिखाना किसी प्रेक्षागृह के उपयुक्त भी नहीं था।

दूसरी ओर अल्काजी के ही 19 अप्रैल 1974 को प्रस्तुति को वेशभूषा एवं आलेख के विभिन्न अंशों के संपादन ने अलग ढंग से प्रभावित किया। इस प्रस्तुति से दर्शक चमत्कृत हुए और नाटक की तड़क भड़क विहीन सीधी साधी प्रस्तुति को सराहना मिली। रवि वासवानी ने नाटक की प्रस्तुति में एक नया प्रयोग यह किया कि उन्होंने प्रहरियों के हाथ में बंदूकें थमा दी और रसाभास की स्थिति बना दी। 'अंधायुग' का साधारण दर्शक भी यह आसानी से समझ

सकता था कि नाटक का कथ्य युद्ध के आधुनिक परिदृश्य से जुड़ा है, उसके लिए बंदूकें जरूरी नहीं थी। रवि वासवानी का हो लखनऊ का दूसरा प्रदर्शन 'दर्पण' की ओर से हुआ जो भिन्न रूप में प्रस्तुत हुआ और प्रशसित भी हुआ। अपनी इस प्रस्तुति में वासवानी ने इस बात पर जोर डाला कि यह कहना संभव नहीं कि युद्ध में विजय सत्य की होगी या असत्य की। ध्यान देने की बात यह है कि नाटक के अलग-अलग प्रस्तुतियों में नए व्यक्तित्व और रूप-रंग के साथ प्रकट होता है और दर्शकों को नया अनुभव देता है।

अंत में एक बात और कि यद्यपि नाटककार ने बार-बार इस बात की पुष्टि की है कि 'अंधायुग' मंच को ही ध्यान में रखकर लिखा गया है परन्तु लिखे जाने के बाद नाटक का रेडियों रूपांतर भी प्रस्तुत किया गया जिसके चलते नाटक के संवादों की लय, तान, टोन और भाषा को साफ करने का भारती को पूरा अवसर मिला। इस प्रकार सुमित्रानंदन पंत के आग्रह पर लिया गया नाटक का रेडियों प्रसारण नाटककार के लिए फायदेमंद ही साबित हुआ। अपने शिल्पगत कौशल से उन्होंने नाटक का शिल्पगता ढांचा इतना लचीला बना रखा है कि मंच विधान के हल्के से फेरबदल से नाटक खुले मंच के लायक बनाया जा सकता है और ऐसी प्रस्तुतियों की पीछे चर्चा भी हो चुकी है। दूसरी ओर यह लोकनाट्य की विभिन्न शैलियों में भी खेला जा सकता है। इसमें संदेह नहीं कि धर्मवीर भारत का यह नाटक संभावनाओं से भरपूर है।

• भाषा शैली

'अन्धायुग' ऐसी नाट्य कृति है जिसकी नाट्य संरचना में कई प्रकार की नाट्य शैलियों का समन्वय है। इस नाट्य शैली में कुछ तत्व संस्कृत नाट्य परंपरा से, कुछ पाश्चात्य से और कुछ लोक नाट्य से लिए गए हैं। इस परम्परा के मंचन लिए नाट्ककार ने विराट मंच की परिकल्पना की है। इसे देश और विदेश में जितनी रंगशैलियों एवं व्याख्याओं के साथ पेश किया गया है वह अपने आप में कीर्तिमान है। 'अन्धायुग' पद्य नाटक है उसमें काव्यात्मकता का सुंदर प्रयोग है। भाषा, ध्वनि और बिम्ब का सौन्दर्य अद्भुत है। नाटकीय मौन का सार्थक प्रयोग गांधारी के संवादों में देखने को मिलता है। संवाद मुक्त छंद में है और अनेक स्थानों पर नाटककार ने पद्य का आभास देने के साथ समासयुक्त गद्य का भी प्रयोग किया है। महाभारत की कथा पर आधारित होते हुए भी धर्मवीर भारती ने बोलचाल की हिंदी का सफल प्रयोग किया है और उसे अनावश्यक रूप से तत्सम शब्दों से नहीं लादा है। भारती जी की भाषा प्रवाहपूर्ण, सशक्त और पौढ़ है। इनकी रचनाओं में परिष्कृत और परिमार्जित भाषा का प्रयोग मिलता है। इनकी भाषा में सरलता, सहजता, सजीवता और आत्मीयता का पुट है तथा देशज, तत्सम और तद्भव सभी प्रकार के शब्दों के प्रयोग हुए हैं। मुहावरों तथा कहावतों के प्रयोग से भाषा में गति और बोधगम्यता आ गई है। विषय और विचार के अनुकूल भारती जी की रचनाओं में भिन्न-भिन्न प्रकार की शैलियों का प्रयोग हुआ है।

(अ) भावात्मक शैली

भारती जी मूलतः कवि थे। अतः इनका कवि हृदय इनकी गद्य रचनाओं में भी मुखर हुआ है। ऐसे स्थलों पर इनकी शैली भावात्मक हो गई है।

(ब) समीक्षात्मक शैली

अपनी आलोचनात्मक रचनाओं में भारती जी ने समीक्षात्मक शैली का प्रयोग किया है। इस शैली में गंभीरता है और भाषा तत्समप्रधान है।

(स) चित्रात्मक शैली

भारती जी शब्दचित्र अंकित करने में विशेष दक्ष हैं। जहां इन्होंने घटनाओं और व्यक्तियों शब्दचित्र अंकित किए हैं, वहां इनकी शैली चित्रात्मक हो गई है।

(द) वर्णनात्मक शैली

जहां घटनाओं, वस्तुओं या स्थानों का वर्णन हुआ है, वहां इनकी वर्णनात्मक शैली के दर्शन होते हैं।

(य) व्यंग्यपूर्ण प्रतीकात्मक शैली

भारती जी ने अपनी रचनाओं में यथास्थान हास्य और व्यंग्य का भी प्रयोग किया है। ऐसे स्थलों पर इनकी शैली में प्रतीकात्मकता आ गई है।

स्वयं आकलन हेतु प्रश्न

प्र. 1 अंधायुग का प्रकाशन कब हुआ ?

प्र. 2 अंधायुग का नायक कौन है ?

प्र. 3 फिर क्या हुआा संजय फिर क्या हुआ, यह कथन किसका है ?

9.4 सारांश

निष्कर्ष रूप ने कहा जा सकता है कि 'अंधायुग' नाटक मंच को ही ध्यान ने रखकर लिखा गया है। परन्तु लिखा जाने के बाद नाटक का रेडियो रूपांतर भी प्रस्तुत किया गया है। यह नाटक लोकनाट्य की विभिन्न शैलियों में भी खेला जा सकता है। धर्मवीर भारती कृत अंधायुग नाटक संभावनाओं से भरपूर है।

9.5 कठिन शब्दावली

(1) बिमलित — गला हुआ, शिथिल

(2) मर्यादा — गौरव, प्रतिष्ठा

(3) रक्तपात — खून बहाना, मारकाट

9.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

प्र. 1 उत्तर — 1954

प्र. 2 उत्तर — अश्वथामा

प्र. 3 उत्तर — गाधांरी

9.7 संदर्भित पुस्तकें

(1) अंधायुग - धर्मवीर भारती।

(2) धर्मवीर भारती का साहित्य सृजन के विविध रंग - डॉ. चन्द्राभानु सोनवणे।

9.8 सात्रिक प्रश्न

(1) अंधायुग नाटक की तात्विक समीक्षा कीजिए।

(2) अंधायुग नाटक की भाषा शैली पर प्रकाश डालिए।

(3) अंधायुग नाटक की रंगमचीयता का वर्णन करें।

*****

इकाई-10
अंधायुग नाटक के पात्रों का चरित्र चित्रण

संरचना

10.1 भूमिका

10.2 उद्देश्य

10.3 अंधायुग नाटक के पात्रों का चरित्र चित्रण

- श्रीकृष्ण का चरित्र चित्रण
- युयुत्सु का चरित्र चित्रण
- अश्वथामा का चरित्र चित्रण

स्वयं आकलन प्रश्न

10.4 सारांश

10.5 कठिन शब्दावली

10.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

10.7 संदर्भित पुस्तकें

10.8 सात्रिक प्रश्न

इकाई-10
अंधायुग नाटक के पात्रों का चरित्र चित्रण

10.1 भूमिका

इकाई नौ में हमने धर्मवीर भारती कृत अंधायुग नाटक का समीक्षात्मक अध्ययन किया। इकाई दस में हम धर्मवीर भारती कृत अंधायुग नाटक के पात्रों के चरित्र-चित्रण का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे। चरित्र-चित्रण के अंतर्गत श्रीकृष्ण, युयुत्सु एवं अश्वथामा के चरित्र-चित्रण का अध्ययन करेंगे।

10.2 उद्देश्य

इकाई दस का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि

1. अंधायुग नाटक के पात्रों का चरित्र-चित्रण का अध्ययन करेंगे।
2. अंधायुग नाटक के पात्र श्रीकृष्ण का चरित्र-चित्रण कैसा था ?
3. युयुत्सु के चरित्र की विशेषताओ का अध्ययन करेंगे।
4. अश्वथामा के चरित्र चित्रण पर प्रकाश डालेंगे।

10.3 अंधायुग नाटक के के पात्रों का चरित्र चित्रण

- **श्रीकृष्ण का चरित्र-चित्रण**

कृष्ण का चरित्र एक ऐसा चरित्र है जो युगा-युगों से भारतीय जनमानस को प्रेरित करता आ रहा है। साहित्यकार ने इसे अनेक रूपों में प्रस्तुत किया है। ये भगवान है, राजनीतिज्ञ है यागोरांज है तथा रसिक है। महाभारत में ये युग की राजनीति का संचालन और नियमन करते है। कृष्ण इस महायुद्ध को रोकने के लिए पाण्डवों के दूत के रूप में कौरवों के पास जाते हैं परन्तु दुर्योधन को हठधर्मिता उन्हें निराश करती है। अर्जुन के युद्ध से विरत हो जाने पर वे उसे कर्मयोग का संदेश देकर युद्ध के लिए प्रेरित करते हैं। कृष्ण की राजनीति के कारण ही भीष्म, द्रोण, दुर्योधन, कर्ण आदि मारे जाते हैं और पांडवों को युद्ध में विजय प्राप्त होती है।

इस नाटक में कृष्ण का चरित्र राजनीतिज्ञ और भगवान के रूप में प्रकट हुआ है। नाटक के बहुत-से पात्र कृष्ण को अन्यायी, फूटबुद्धि, प्रभुता का दुरुपयोग करने वाला कहते हैं परन्तु उनका चरित्र उन्हें प्रखर राजनीतिज्ञ शौर्यवान, कर्ममार्गी, दयालु, मानव भविष्य के रक्षक, क्षमाशील आदि के रूप में प्रस्तुत करता है। आलोच्य नाटक के आधार पर उनकी चारित्रिक विशेषताओं को निम्नलिखित वर्गों में बाँटा जा सकता है-

(1) कूटबुद्धि-नाटक की प्रमुख पात्र गाधांरी को तो उनकी प्रभुता पर ही सदेह है। वह कृष्ण मर्यादा-भंजक मानती है। उनके भाई बलराम भी उन्हें कूटबुद्धि और मर्यादाहीन मानते है-

'जानता हूँ मैं तुमको शैशव से
रहे हो सदा से ही मर्यादाहीन कूटबुद्धि'

बलराम उन्हें इसलिए कूटबुद्धि कहता है क्योंकि कृष्ण के सकेत पर ही भीम ने दुर्योधन पर अधर्म वार किया और उसे मार डाला। कृष्ण की इस नीति के कारण गांधारी उसे अन्यायी कहती है-

'अन्यायी कृष्ण इसके बाद अश्वत्थामा को
जीवित नहीं छोड़ेंगे।'

अश्वत्थामा भी कृष्ण के बारे में इसी प्रकार के विचार प्रकट करते हुए कहता है-

'मैं था अकेला और अन्यायी कृष्ण पांडवों के सहित
मेरा वध करने को आतुर थे।'

कौरव पक्ष के अधिकतर लोगों का विचार है कि यदि कृष्ण चाहते तो इस भीषण संग्राम को रोका जा सकता था। कृष्ण ने अपनी चतुरता से अपराजेय कौरवों को परास्त कर दिया। कृष्ण ने शिखण्डी से भीष्म को, धृष्टधुमन से गुरु द्रोण को, निहत्थे कर्ण को, भीम द्वारा दुर्योधन को मरवाया, इसीलिए गांधारी का कहना है कि नीति या मर्यादा सब दिखावटी वस्तुएँ हैं, निर्माण के क्षणों में ये महत्त्वहीन हो जाती हैं-

'मैंने यह बाहर का वस्तु जगत् अच्छी तरह जाना था
धर्म, नीति, मर्यादा, यह सब है केवल आडम्बर मात्र
मैंने यह बार-बार देखा था।'

इसी प्रकार जब गांधारी को पता चलता है कि कृष्ण ने अश्वत्थामा को भूण-हत्या का शाप दे दिया है और कोढ़ के कारण अश्वत्थामा का शरीर विकृत और घृणास्पद हो गया है तो वह अत्यन्त खिन्न होकर कह उठती है कि इस विनाश का कारण कृष्ण है। क्रोध के आवेश में वह कृष्ण को शाप दे देती है-

'प्रभु हो या परात्पर हो
कुछ भी हो
सारा तुम्हारा वंश
इसी तरह पागल कुत्तों की तरह
एक दूसरे को परस्पर फाड़ खायेगा
तुम खुद उनका विनाश करके कई वर्षों बाद
किसी घने जंगल में
साधारण व्याध के हाथों मारे जाओगे।
प्रभु हो पर मारे जाओगे पशुओं को तरह।'

(2) गम्भीर प्रवृत्ति -गांधारी का विचार है कि कृष्ण ने अपनी प्रभुता का अनुचित प्रयोग किया है। इतना होने पर भी कृष्ण के चरित्र में कोई कमी नहीं आती। वे गांधारी के शाप को स्वीकार लेते हैं। उनके इस शाप-स्वीकार में उनकी महानता दिखाई देती है।

वे शाप को अत्यन्त धैर्य और गाम्भीर्य से स्वीकार कर कहते हैं-

'प्रभु हूँ या परात्पर
पर पुत्र हूँ, तुम्हारा
तुम माता हो।'

इसके अनन्तर वे अपने कर्ता और फल-भोक्ता होने की बात को कहकर अपने ईश्वरत्व को प्रकट करते हैं-

'सारे तुम्हारे कर्मों का पाप-पुण्य, योग क्षेत्र मैं
वहन करूंगा अपने कंधों पर
अठारह दिनों के इस भीष्ण संग्राम में
कोई नहीं केवल मैं ही मरा हूं करोड़ों बार।'

कृष्ण के इस उदार और ममत्व-पूर्ण चरित्र के कारण उसे अपने शाप के कारण पश्चाताप-बोध होता है

'लेकिन कृष्णा तुम पर
मेरी अगाध ममता है
कर देते शाप यह मेरा तुम अस्वीकार
तो क्या मुझे बुख होता।'

(3) मर्यादा रक्षक-इस प्रकार पूरे नाटक में कृष्ण को एक मर्यादा-रक्षक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। नाटककार ने भी प्रारम्भ में यह उद्‌घोषणा की है कि मर्यादा की एक पतली डोरी शेष है भी कौरवों और पाण्डवों के बीच उलझी हुई है। इसे सुलझाने का साहस और क्षमता केवल कृष्ण में है।

वे दयालु है। क्षमाशील है। गाधांरी उन्हें वंचक कहती है तो विदूर कृष्ण से कहते हैं कि वह पुत्र-शोक से व्यथित है इसलिए उसे क्षमा कर दें, इसी प्रकार जब अश्वथात्मा क्रोध में अपने ब्रह्मास्त्र को उत्तरा के गर्भ की ओर मोड़ देता है तो भी कृष्ण उसका वध नहीं करते। उसे शाप देकर और मणि लेकर क्षमा कर देते हैं। इसी प्रकार वृद्ध याचक की अश्वत्थामा द्वारा हत्या और उसकी मुक्ति भी उनके इस रूप को प्रस्तुत करती है-

'अश्वत्थामा ने किया या तुम्हारा वध
उसका या पाप, दण्ड मैं दूंगा
मेरा मरण तुमको मुक्त करेगा प्रेतकारा से।'

(4) मानव जाति के रक्षक- कृष्ण केवल मर्यादा के रक्षक नहीं है, वे मानव भविष्य के भी रक्षक हैं। वे अश्वत्थामा द्वारा चलाए गए ब्रह्मास्त्र को उत्तरा के गर्भ पर गिरने की आशंका से ग्रस्त पांडवों को मुक्त करते हुए कहते हैं -

'यदि ये ब्रह्मास्त्र गिरता है तो गिरे
लेकिन जो मुर्दा शिशु होगा उत्पन्न
उसे जीवित करूँगा मैं देकर अपना जीवन।'

अन्त में व्याध के बाण लगने पर वे मानवता को अपना संदेश देकर प्रस्थान करते हैं कि संसार का कल्याण और मानव के भविष्य को रक्षा कैसे हो सकती है-

'सबका दायित्व लिया मैंने अपने ऊपर
अपना दायित्व सौप जाता हूँ मैं सबको।'

इस प्रकार हम कह सकते है कि 'अन्धा युग' नाटक में कृष्ण को एक केंद्रीय, जटिल और महत्त्वपूर्ण पात्र के रूप में चित्रित किया गया है। लेखक ने इसे इतिहास निर्यता के साथ-साथ मानव रूप में भी प्रस्तुत किया है। मानव के रूप में कृष्ण को अश्वत्थामा के विरुद्ध समान धरातल पर खड़ा किया है। तब वे एक सामान्य व्यक्ति दिखाई देते है। सामान्य व्यक्ति के रूप में उन्हें अन्यायी, मर्यादाहीन, निकम्मी धुरो तथा वंचक कहा गया है। धीरे-धीरे यह रूप प्रभु के रूप में विकसित होता है। प्रभु और मानव के यह दोनों रूप धीरे-धीरे कृष्ण के चरित्र में अन्तर्मुक्त हो जाते है। अनास्था और विरोध के बावजूद अश्वत्थामा और युयुत्सु जैसे प्रबल चरित्र भी उनके सामने झुक जाते हैं। डॉ. जयदेव तनेजा लिखते है- **'कृष्ण के माध्यम से कवि-नाटककार ने मानव के गौरव की प्रतिष्ठा की है और मानव के लिए उसके आगामी सोपान तक पहुँचने का मार्ग भी आलोकित किया है-**

पता नहीं
प्रभु हैं या नहीं
किन्तु, उस दिन यह सिद्ध हुआ
जब कोई भी मनुष्य
अनासक्त होकर चुनौती देता है इतिहास को
उस दिन नक्षत्रों की दिशा बदल जाती है।

याचक के सवादों में कृष्ण के चरित्र के इस दुहरेपन के दर्शन बार-बार होते हैं। एक ओर वह कृष्ण की अलौकिक शक्तियों की ओर तो दूसरी ओर उसको सामान्य व्यक्ति के रूप में देखता है। एक ऐसा व्यक्ति जो अपनी दृढ़ इच्छा शक्ति से नक्षत्रों की गति को बदल सकता है। जो मानव नियति और भविष्य का नियन्ता है। जो समय और परिस्थितियों को निर्धारित करता है। लेखक ने भागवत वाले प्रभु के रूप का प्रस्तुतीकरण कथागायन से और मानवी रूप का चित्रण कृष्ण के कार्यकलापों से किया है। इस संश्लिष्ट रूप के दर्शन **'प्रभु की मृत्यु'** के समय होते हैं। वे एक सामान्य व्यक्ति की भांति पशुवत् मारे जाते है परन्तु जिस प्रकार मरते है-वह अलौकिक है।

इस प्रकार जयदेव तनेजा के शब्दों में कहा जा सकता है **''कृष्ण का चरित्र नाटक में अप्रस्तुत रहकर भी केंद्रीय चरित्र है और नाटक के सभी पात्र सौरमंडल के ग्रहों की तरह इसी सूर्य के इर्द-गिर्द घूम रहे हैं। सब पात्रों की धुरी वास्तव में कृष्ण ही हैं।''**

- **युयुत्सु का चरित्र-चित्रण**

'अन्धा युग' नाटक में युयुत्सु एक ऐसा पात्र है जिसके चरित्रांकन में नाटककार ने अपनी कल्पना शक्ति का भरपूर उपयोग किया है। इसका चरित्र अत्यन्त जटिल और बहुआयामी है। इसे भिन्न-भिन्न दृष्टियों से देखने पर इसका स्वरूप और इसकी त्रासदी के मूल कारण भी भिन्न-भिन्न दिखाई देते हैं। आस्था के प्रांत अनास्था का सबसे गहरा और तीखा स्वर इसी का है क्योंकि आस्था से प्रताड़ित, प्रवंचित और प्रपीड़ित भी यही सबसे अधिक हुआ है। लेखक ने आधुनिक व्यक्ति की संशयग्रस्तता, द्वन्द्वात्मकता और अनिर्णय को इसी चरित्र के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

(1) सत्य का पक्षधर-युयुत्सु भी दुर्योधन की भांति धृतराष्ट्र का पुत्र है किन्तु अपनी सत्यनिष्ठा के कारण अन्यायी दुर्योधन का साथ न देकर पाण्डवों की ओर से कौरवों के साथ लड़ता है। यही सत्यनिष्ठा उसके जीवन का अभिशाप बन जाती है और वह आधुनिक व्यक्ति की पीड़ा और यंत्रणा का साकार प्रतिरूप बन जाता है। अपना परिचय देते हुए वह कहता है कि-

''मैं हूं युयुत्सु,
मैं उस पहिए की तरह हूं
जो पूरे युद्ध के दौरान रथ में लगा था
पर जिसे अब लगता है कि वह गलत धुरी में लगा था''

(2) अपमानित व प्रताड़ित - वह पराजित कौरव सेना के साथ लौटकर विदुर से मिलता है। नगर के लोग उसे विपक्षी योद्धा समझ कर भयभीत हो जाते है और अपने-अपने घरों में जा छिपते हैं। प्रजा में से कोई उसे मायावी कोई शिशु-भक्षी तथा कोई उसे दैत्याकार नर पक्षी गिद्ध समझता है। इस अपमान से वह विक्षुब्ध हो उठता है तथा सोचता है-

'डरने में
उतनी यातना नहीं है
जितनी वह होने में जिससे
सबके सब केवल भय खाते हों
वैसा ही हूँ मैं आज
ये हैं महल
मेरे पिता, मेरी माता के
लेकिन कौन जाने
यहाँ स्वागत हो मेरा
एक जहर बुझे भाले से'

(3) माता की उपेक्षा का शिकार – इस तीक्ष्ण मानसिक संताप, द्वन्द्व और क्लेश को मन:स्थिति में माँ से ममता और अपनत्व की वह अपेक्षा करता है। लेकिन ज्यों ही उसका गाधांरी से सामना होता है तो गांधारी उसे अपने व्यंग्य–बाणों से छेद देती है और वह आह तक नहीं कर पाता। गांधारी एक ही झटके से उसे विष–बुझे व्यंग्य बाणों से उसके रोम–रोम को बेंध देती है। इस प्रहार से उसकी सत्य के प्रति आस्था छिन्न–भिन्न हो जाती है–

'अच्छा था यदि मैं

कर लेता समझौता असत्य से।'

युयुत्सु को बोलने का अवसर दिए बिना गांधारी उपेक्षा और निष्ठुरता से तत्काल चली जाती है। गांधारी का यह प्रस्थान युयुत्सु को झकझोर देता है और उसकी व्यथा अनायास फूट पड़ती है–

माँ के तिरस्कार और कठोर व्यवहार तथा प्रजा के तीक्ष्ण आघात युयुत्सु को जर्जर बना देते हैं। वह टूट जाता है। वह एक गूंगे सैनिक को पानी पिलाना चाहता है किन्तु उस सैनिक के घुटने युयुत्सु के अग्निबाणों से झुलसे हैं। जब वह पानी पिलाने वाले को देखता है तो वहाँ से भाग जाता है–

'मैं ही अपराधी हूँ

यह था एक अश्वारोही कौरव सेना का

मेरे अग्नि बाणों से

झुलस गए थे घुटने इसके

नष्ट किया है खुद मैंने

जिसका जीवन

वह कैसे अब

मेरी ही करुणा स्वीकार करे।'

(4) अपराध–बोध से ग्रस्त– यद्यपि युयुत्सु ने महाभारत के युद्ध में सत्य का पक्ष लेने के लिए पांडवों की और से युद्ध किया था परन्तु युद्ध के उपरांत प्रजा माता–पिता आदि के कटु व्यवहार से उसके मन में अपने ही भाइयों की हत्या करने का अपराध–बोध उत्पन्न होता है।

युयुत्सु अपने बंधु–बांधवों का दाह संस्कार भी नहीं कर पाता क्योंकि उसने स्वयं उनकी हत्या की है–

'जिसने किया हो खुद वध

उसकी अंजलि का तर्पण

स्वीकार किसे होगा भला?'

(5) आत्मघाती– परिस्थितियाँ उसे निर्णायक मोड़ पर ले आती है। उसकी अनास्था उसे आत्मघात को ओर अग्रसर करती है। भीम बार–बार उसका अपमान करता है। एक दिन गूंगा सैनिक भी उसका तिरस्कार करता है। इससे क्षुब्ध होकर युयुत्सु आत्महत्या कर लेता है और अन्धा प्रेत बन जाता है। कृष्ण के मरण पर जब अश्वत्थामा को आस्था का बोध होता है तो वह क्रूर अट्टहास कर उठता है–

'आस्था नामक यह घिसा हुआ सिक्का

अब मिला अश्वत्थामा को

जिसे नकली और खोटा समझकर मैं

कूड़े पर फैंक चुका हूँ वर्षों पहले।'

युयुत्सु को कृष्ण के प्रति पूर्ण अनास्था हो जाती है। वह आस्था को झूठी तथा आस्था के ज्योति-वृक्ष को वंचना मानता है-

'जीकर वह जीत नहीं पाया अनास्था को
मरने का नाटक रचकर वह चाहता है
बांधना हमको
लेकिन मैं कहता हूँ
वंचक था, कायर था, शक्तिहीन था वह।'

जिस प्रभु के पीछे उसने जीवन भर सबकी उपेक्षा और घृणा सहन की, वही प्रभु अपने मरण तक को महिमामय बनाकर चुपचाप अपने लोक चला गया। व्याध मुक्त हो गया और अश्वत्थामा विगत शोक। परन्तु युयुत्सु को तो कुछ नहीं मिला। उसे कृष्ण के जीवन से न तो कुछ मिला और न ही मरण से। इसलिए पूरे नाटक में यही एक ऐसा पात्र है जो नाटक के समापन तक कृष्ण के सामने झुकने से इन्कार करता है और नाटक के अन्त तक अनास्था और अविश्वास की आग में झुलसता रहता है। इसकी इस नियति का कारण है कि इसने अपनी मनोबुद्धि पूर्ण आस्था के साथ कृष्ण को समर्पित कर दी या उसके प्रति संशयग्रस्त होने के कारण विनाश को प्राप्त हुआ। इसके अपराध को बताने वाला नाटक में कोई पात्र नहीं है। यहाँ प्रश्न पैदा होता है कि क्या अस्तित्ववादियों की भाँति जीवन और जगत् को तर्कहीन मान लिया जाए? इस प्रकार के प्रश्न नाटक में अनुत्तरित ही रह जाते हैं। लेखक युद्ध की भयानकता को प्रस्तुत करने के स्थान पर युयुत्सु के भीतरी संसार में पैठकर मानवीय सम्बन्धों और संवेदना के स्तर पर युद्ध की विभीषिका का उद्‌घाटन करता है। युयुत्सु ने इस युद्ध में अपने हाथ-पाँव नहीं खोये, बल्कि अपने विश्वास और आस्था को खोया है। उसे शारीरिक यातना नहीं मिली, बल्कि उपेक्षा, घृणा, अपमान, तिरस्कार तथा व्यंग्य जैसी मानसिक यंत्रणा मिली है। इस यंत्रणा को भोगते हुए आत्महत्या में अपने तनाव तथा संघर्ष के समाधान की मृग-मारीचिका में फंस जाता है। इस प्रकार नाटककार ने इस अभिशप्त पात्र की जटिल अनुभूतियों के माध्यम से अपने परिवेश के सत्य और उसकी विसंगतियों की खोज करने का सुन्दर प्रयास किया है।

युयुत्सु के चरित्र में अनेक विसंगतियाँ और विडम्बनाएँ हैं परन्तु उसमें आधुनिक बुद्धिजीवी, निष्ठावान जिज्ञासु और सत्य के लिए व्याकुल आत्मा तथा उसकी त्रासद अभिशप्त नियति भी दिखाई देती है।

• अश्वत्थामा का चरित्र चित्रण

अश्वत्थामा अन्धा युग नाटक का प्रमुख पात्र है। महाभारत युद्ध के बाद जो मूर्ल्याधता का युग शुरु हुआ अश्वत्थामा उसको सशक्त अभिव्यक्ति है। पारम्परिक जीर्ण आस्थाओं को ढहा कर नई आस्थाओं के पनपने की विचारधारा को दृष्टि में रखकर ब्रेख्त ने कहा था- **'अनास्था पहाड़ों को डिगा सकती है।'** इसी अनास्था को लेखक ने अश्वत्थामा के माध्यम में प्रस्तुत कर अनास्था को गहरी पहचान का परिचय दिया है। अनास्था की यह पहचान ही नाटक का उद्देश्य है। अनास्था को भाव प्रक्रिया लेखक ने गलितांग मर्यादाओं को निराई की प्रक्रिया द्वारा नष्ट करते हुए आस्था के अंकुर को जमने का मौका दिया है। **'अन्धा युग'** नाटक की मूल रूपरेखा में अनास्था का प्रमुख दायित्व गाधांरी पर था परंतु रचना की सृजन प्रक्रिया में अश्वत्थामा इस दायित्व को सँभाल लता है।

अश्वत्थामा की चारित्रिक विशेषताओं को मुख्यत: निम्नलिखित वर्गों में बाँटा जा सकता है-

(1) सच्चा योद्धा - अश्वत्थामा एक ईमानदार योद्धा है। कौरव पक्ष की ओर से लड़ने के बावजूद उसमें प्रभु कृष्ण के प्रति अगाध आस्था है। इसे धर्मराज युधिष्ठिर पर अटूट विश्वास है। परंतु ये आस्था और विश्वाम युद्ध के अन्त में टूट जाते हैं। उनकी यह दृटन अश्वत्थामा को नि:सत्व बनाकर खण्ड-खण्ड कर देती है। नाटक में अश्वत्थामा के प्रथम दर्शन हमें सब प्रकार से टूटे और असहाय व्यक्ति के रूप में होते हैं-

''यह मेरा धनुष है
धनुष अश्वत्थामा का
जिसकी प्रत्यंचा खुद द्रोण ने चढ़ाई थी
आज जब मैंने
दुर्योधन को देखा
निःशस्त्र, दीन
आँखों में आँसू भरे।
मैंने मरोड़ दिया
अपने इस धनुष को
कुचले हुए साँप सा
भयावह किन्तु
शक्तिहीन मेरा धनुष है या
जैसे है मेरा मन''।

(2) प्रतिशोध की भावना से ग्रस्त- अश्वत्थामा के मन में दुर्योधन की पराजय का दुःख ही नहीं है बल्कि उसके मन में अपने पिता की निर्मम हत्या का प्रतिशोध तथा न्याय और धर्म के नाम पर पाण्डवों द्वारा किए गए कुकृत्य भी विद्यमान हैं। वह इस बात को भूल नहीं पाता कि स्वयं को सत्यवादी कहलाने वाले युधिष्ठिर ने अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए झूठ का सहारा लिया। युधिष्ठिर के इस अर्द्धसत्य ने अश्वत्थामा को इतना आघात पहुँचाया कि वह मनुष्यत्व को खो बैठा और उसमें पशुत्व का उदय हुआ। अश्वत्थामा के शब्दों में-

''उस दिन से
मेरे अंदर भी
जो शुभ था कोमलतम
उसकी भ्रूण-हत्या
युधिष्ठिर के
अर्द्धसत्य ने कर दी
धर्मराज होकर वे बोले
नर या कुंजर
मानव को पशु से
उन्होंने पृथक् नहीं किया
उस दिन से मैं हूँ
पशु मात्र, अधबर्बर पशु।''

(3) पाशविक प्रवृत्तियों का स्वामी-अश्वत्थामा पशु नहीं है। परिस्थितियाँ उसमें पशुत्व को जाग्रत करती हैं। व्यास के तीन बार 'तुम पशु हो' कहकर धिक्कारने पर वह विकर अट्टहास कर स्पष्ट शब्दों में स्वीकार करता है-

'था मैं नहीं
मुझको युधिष्ठिर ने बना दिया।'

धर्मराज युधिष्ठिर के अर्द्ध सत्य ने द्रोण की ही हत्या नहीं की बल्कि अश्वत्थामा के भीतर के शुभ और करुण-कोमल को नष्ट कर उसे दोहरा आघात दिया है। विश्वास, आस्था और मर्यादा के टूटने में अश्वत्थामा को इस प्रकार की स्थिति हुई है। इस पराजय के कारण उसमें हीनता की ग्रंथि को पैदा कर दिया है जिससे उसे अपना जीवन एक भार लगने लगता है। इस कुण्ठाग्रस्त जीवन ने उसमें ऊब को उत्पन्न किया है-

''दुर्योधन सुनो
सुनो, द्रोण सुनो
मैं यह तुम्हारा अश्वत्थामा
कायर अश्वत्थामा
शेष हूँ अभी तक
जैसे रोगी मुर्दे के
मुख में शेष रहता है
शेष हूं अभी तक मैं।''

(4) आत्मघात की भावना से ग्रस्त- जीवन की इस ऊब और कुण्ठा ने उसके जीवन को निरर्थक बना दिया है। यह एक ऐसी पीड़ा है जो आत्महत्या से कम नहीं है। वह अपने नपुंसक अस्तित्व से छुटकारा पाने के लिए आत्मघात करके नरकाग्नि में उबलने को भी तैयार हो जाता है-

''आत्मघात कर लूँ?
इस नपुंसक अस्तित्व से
छुटकारा पाकर
यदि मुझे
पिघली मरकाग्नि में उबलना पड़े
तो भी शायद
इतनी यातना नहीं होगी।''

(5) प्रतिहिंसा व घृणा की भावना से ग्रस्त- लेकिन यहाँ तक आते-आते उसमें प्रतिहिंसा और घृणा की आग जल उठती है। प्रतिशोध की भावना के पैदा होते ही वह आत्महत्या वाले निर्णय को त्याग कर अपने पिता तथा दुर्योधन के हत्यारों से प्रतिशोध लेने का निर्णय लेता है। युधिष्ठिर के अर्द्ध सत्य की प्रतिक्रिया उसके मन में इस प्रकार होती है-

''जीवित रहूँगा मैं
अन्धे बर्बर पशु सा
वाणी हो सत्य धर्मराज की।''

और इस निर्णय के साथ ही वह अपने लक्ष्य का घेषित करता है-

''वध, केवल वध, केवल वध
अंतिम अर्थ बने
मेरे अस्तित्व का।''

इस प्रकार 'वध' अश्वथामा क लिए एक मनोग्रंथि बन जाता है और पराजित योद्धा अश्वत्थामा के भीतर एक पशु का उदय हाता है। प्रतिहिंसा और प्रतिशोध की भावना उसे इतना उन्माद से भर देती है कि उसे कर्तव्य-अकर्तव्य का ज्ञान ही नहीं रह जाता। वध ही उसके जीवन का एक मात्र लक्ष्य हो जाता है। वह मार्ग में जाते हुए संजय का गला भी दबोच लेता है। कृपाचार्य के कहने पर कि संजय तटस्थ और अवध्य है, अश्वत्थामा का कहना है -

''तटस्थ ?

मातुल में योद्धा नहीं हूं

बर्बर पशु हूं

यह तटस्थ शब्द

है मेरे लिए अर्थहीन।''

उसमें पशु इस प्रकार का उदय हो चुका है कि उसकी मानसिक स्थिति असंतुलित हा चुको है-

''मैं क्या करूं?

मातुल

मैं क्या करूं

वध मेरे लिए नहीं रही नीति

वह है अब मेरे लिए मनोग्रंथि।''

प्रतिहिंसा की आग ने उसे विक्षिप्त बना दिया है। उसका यह पागलपन कृतवर्मा का भी भयभीत कर देता है-

''कृपाचार्य

भय लगता है

मुझको

इस अश्वत्थामा से।''

नाटक में 88 पंक्तियों का उसका एकालाप उसके व्यक्तित्व की भीतरी झाँकी को प्रस्तुत करता है तथा उसके अन्तर्द्वन्द्व को भीतरी परतों का उद्घाटन करता है। यह उद्घाटन उसके पशु रूप को मनोवैज्ञानिक धरातल पर प्रतिष्ठित कर उसे मानवीय दृष्टि से विश्वसनीय बनाकर सहानुभूति का पात्र बना देता है।

इसके बाद अश्वत्थामा का वृद्ध याचक का वध करना, रात्रि में सोते हुए पाण्डवों की निर्मम हत्या, ब्रह्मास्त्र छोड़ना और अन्त में उस उत्तरा के गर्भ पर गिराना आदि घटनाएँ उसके कुण्ठित चरित्र की स्वाभाविक प्रतिक्रियाएँ है। नाटककार ने उसके क्रियाकलापों को उसको विकृत मानसिक स्थिति से सम्बद्ध कर और उसके कृत्यों को शब्दों में पिरोकर एक शक्तिशाली चरित्र का सृजन किया है। एक ऐसा चरित्र जो अपने तूफानी बहाव में सबका बहा सकता है। वृद्ध याचक के शब्दों में अश्वत्थामा की **''गति को मैं तो क्या श्रीकृष्ण भी रोक नहीं पाए हैं।''**

(6) भयाक्रांत- प्रतिशोध लेने के बाद उसकी शक्ति-क्रोध, प्रतिशोध, घृणा-चुक जाती है और भय की प्रतिमूर्ति दिखाई देना है। वह वल्कल धारण कर तपोवन चला जाना चाहता है परन्तु पाण्डवों के साथ कृष्ण उसे ढूंढ निकालते हैं। आत्मरक्षा के लिए उसे ब्रह्मास्त्र का सहारा लेना पड़ता है-

''मैं क्या करूं

मुझको विवश किया अर्जुन ने

मैं था अकेला और अन्यायी कृष्ण पाण्डवों के सहित

मेरा वध करने को आतुर थे।''

कृष्ण उसे भ्रूणहत्या का शाप देकर आजीवन रौरव नरक की यातना भोगने के लिए जीवित छोड़ देते हैं। अपने प्रत्येक अंग पर फोड़े लिए हुए, पीप रक्त और थूक तथा कफ से सना वह इस यातना को झेलने के बाद भी स्वयं को दुर्बल नहीं समझता। वह यदि दोषी है तो कृष्ण भी कम दोषी नहीं है। दण्ड अश्वत्थामा हो अकेला क्यों भोगे-

''क्यों ये, जख्म फूट नहीं पड़ते हैं

उसके कमल तन पर।''

जब वह 'प्रभु को मृत्यु' के समय कृष्ण को अपनी आँखों से देखता है तो उसके मन की चिरकाल से संचित घृणा बह जाती है-

''तलबों में बाण बिंधते ही
पीप धरा दुर्गंधित नीला रक्त
वैसा ही बहा
जैसे इन जख्मों से अक्सर बहा करता है
चरणों में वैसे ही घाव फूट निकाले।''

(7) आस्था का पुनः उदय-शोक से ग्रस्त अश्वत्थामा श्रीकृष्ण के बहते खून को देखकर स्वयं को स्वस्थ अनुभव करता है और एक लम्बे काल के बाद आस्था पर पुनः लौट आता है। अन्त में अपन पापों की स्वीकारोक्ति के बाद दण्डित होकर भी वह स्वयं को मुक्त अनुभव करता है। जो अन्धा युग अंधी प्रतिहिंसा बनकर अश्वत्थामा की नस-नस में पैठ गया था, जिसके कारण उसका पश्चातापदग्ध मन विगलित हो गया था वह अनुभव करता है, कि घृणा का तर्क अमानुषिक है। अश्वत्थामा अंत में अनुभव करता है-

''जिसको तुम कहते हो प्रभु
वह था मेरा शत्रु
पर उसने मेरी पीड़ा भी धारण
कर ली
जख्म हैं बदन पर मेरे
लेकिन पीड़ा सब शांत हो गई बिल्कुल
मैं हूँ दंडित
लेकिन मुक्त हूँ।''

इस प्रकार नाटककार ने अश्वत्थामा का चित्रण कृष्ण के समानान्तर किया है और पूरी सहानुभूति से किया है। अश्वत्थामा को मनोविश्लेषणात्मक चित्रण उसकी अमानवीयता और पशुता का सटीक कारण प्रस्तुत करता है।

स्वयं आकलन के लिए लिए प्रश्न

प्र. 1 युयुत्सु किसका भाई है ?

प्र. 2 आचार्य द्रोण के पुत्र का क्या नाम था ?

प्र. 3 अभिमन्यु की माता का क्या नाम था ?

10.4 सारांश

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि अंधायुग नाटक आधुनिक काल के चरित्र को सामने रखने की क्षमता रखता है। समय बदल गया, काल बदल गया परंतु परिस्थितियां आज भी वही है। अंधायुग नाटक का प्रमुख पात्र अश्वत्थामा है जो अपमानजनक दुर्दशा का शिकार होता है।

10.5 कठिन शब्दावली

(1) निरर्थक - अर्थरहित, व्यर्थ

(2) मातुल्य - मामा, धतूरा

(3) दुर्भाग्य - बुरा भाग्य, बुरी किस्मती

10.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

प्र. 1 उ. - कौरवों का

प्र. 2 उ. - अश्वत्थामा

प्र. 3 उ. - सुभद्रा

10.7 संदर्भित पुस्तकें

(1) अंधायुग धर्मवीर भारती

(2) धर्मवीर भारती व्यक्ति और साहित्यकार पुष्पा बास्कर

10.8 सात्रिक प्रश्न

(1) अंधायुग नाटक के पात्र श्रीकृष्ण की चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन करें।

(2) अंधायुग नाटक के पात्र युयुत्सु के चरित्र की विशेषताएँ बताइए।

*****

इकाई–11
अंधायुग नाटक का व्याख्या भाग

संरचना

11.1 भूमिका

11.2 उद्देश्य

11.3 अंधायुग नाटक का व्याख्या भाग

स्वयं आकलन प्रश्न

11.4 सारांश

11.5 कठिन शब्दावली

11.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

11.7 संदर्भित पुस्तकें

11.8 सात्रिक प्रश्न

इकाई-11

अंधायुग नाटक का व्याख्या भाग

11.1 भूमिका

इकाई दस में हमने धर्मवीर भारत कृत अंधायुग नाटक के पात्रों के चरित्र चित्रण का अध्ययन किया। इकाई ग्यारह के अंतर्गत हम धर्मवीर भारती कृत 'अंधायुग' नाटक की व्याख्या भाग का अध्ययन करेंगे।

11.2 उद्देश्य

इकाई ग्यारह का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि

1. अंधायुग नाटक के गद्य भाग की व्याख्या करेंगे।
2. अंधायुग नाटक के प्रसंग का अध्ययन करेंगे।

11.3 अंधायुग नाटक का व्याख्या भाग

उस भविष्य में
धर्म-अर्थ ह्रासोन्मुख होंगे
क्षय होगा धीरे-धीरे सारी धरती का।

'ततश्चार्थ एवाभिजन हेतु।'
सत्ता होगी उनकी।
जिनकी पूंजी होगी।

'कपटवेष धारणमेव महत्त्व हेतु।'
जिनके नकली चेहरे होंगे
केवल उन्हें महत्त्व मिलेगा।
'एवम् चाति लुब्धक राजा
सहशैलानामन्तरद्रोणी : प्रजा संश्रियष्यवन्ति।'
राजशक्तियाँ लोलुप होंगी,
जनता उनसे पीड़ित होकर
गहन गुफाओं में छिप-छिप कर दिन काटेगी।

प्रसंग : प्रस्तुत भावपूर्ण पक्तियाँ महाभारत की कथा पर आधारित नाट्य काव्य 'अन्धायुग' से उद्धृत हैं। इसके रचयिता प्रसिद्ध साहित्यकार डॉ. धर्मवीर भारती हैं। उन्होंने विष्णु पुराण का उल्लेख किया है। उनके अनुसार विष्णु पुराण ने भावी कलियुग के विषय में अपना दृष्टिकोण इस प्रकार व्यक्त किया है।

व्याख्या: चर्चित साहित्यकार डॉ धर्मवीर कहते हैं कि विष्णु पुराण के अनुसार भविष्य में आने वाले युग में धर्म और अर्थ के प्रति किसी भी व्यक्ति में आस्था नहीं रहेगी और इस प्रकार धर्म और अर्थ के प्रति किसी भी व्यक्ति में आस्था नहीं रहेगी और इस प्रकार धर्म और अर्थ संबंधी कार्य क्रमशः पतन की ओर अग्रसर होंगे। इसके कारण सम्पूर्ण पृथ्वी धीरे-धीरे विनष्ट होती जाएगी। अधर्म और अनर्थ बढ़ते जाएंगे तथा व्यक्ति और व्यक्तित्व संकुचित होता

जाएगा। व्यक्ति अपने आप में महत्त्वहीन हो जाएगा। एसा समय आएगा कि जो पूंजीपति होंगे (उन्हीं के हाथों में शासन सूत्र होगा अर्थात) पूंजीवाद के समक्ष मानवता नत मस्तक हो जाएगी। कंवल वही व्यक्ति समाज में सम्मान प्राप्त कर सकेंगे जो अपने वास्तविक मुखोश के ऊपर एक वचक मुखौटा धारण करते होंगे अर्थात् जिस व्यक्ति का मुखोश दूहरी भूमिका का सफलता से निर्वाह करेगा वही महत्व पाएगा। शासनारूढ़ शक्तियाँ अपने स्वार्थो में लिप्त रहेंगी और जनसेवा की अपेक्षा स्वयंसेवा का दुराग्रह उनमें होगा थे लालची, होंगे और सदैव अपना ही घर भरते रहेंगे। ऐसे निहित स्वार्थी शासकों से जनता त्रस्त और उत्पीड़ित रहेगी तथा भ्रमत्रस्त होकर गहरी अंधेरी गुफाओं में जा छिपेगी अथवा शंकालु और कुण्ठित मन के अन्धेरों में छिप जाएगी।

विशेषः

।. लोक कल्याणकारी दो जीवन मूल्यों के ह्रास का चित्रण।

2. वर्तमान युगीन कुंठाओं से ग्रस्त सामान्य व्यक्ति के उत्पीड़न का चित्रण।

3. पूंजीवादी व्यवस्था का परिचय।

4. आकर्षक अभियेता तथा स्पष्ट भावाभिव्यंजना।

5. प्रसाद-माधुर्वगुण सम्पन्न शैली।

6. आकर्षक लयात्मकता।

7. सूक्ष्म भावां की मनोरम प्रस्तुति।

8. तद्भव शब्दों के साथ तत्सम शब्दों का सुन्दर योग।

9. अप्रस्तुत भावों को सुन्दर प्रस्तुति।

10. गतिशील भाव-चित्रण।

11. भावानुकूल मानक हिंदी भाषा का रूप।

युद्धोपरांत
यह अंधा युग अवतरित हुआ
जिसमें स्थितियाँ, मनोवृत्तियां, आत्माएं सब विकृत हैं
है एक बहुत पतली डोरी मर्यादा की
पर वह भी उलझी है दोनों ही पक्षों में
सिर्फ कृष्ण में साहस है सुलझाने का
वह है भविष्य का रक्षक, वह है अनासक्त
पर शेष अधिकतर हैं अन्धे
पथभ्रष्ट, आत्महारा, विगलित
अपने अन्तर की अन्धगुफाओं के वासी
यह कथा उन्हीं अन्धों की है;
या कथा ज्योति की है अन्धों के माध्यम से

प्रसंगः प्रस्तुत भावपूर्ण नाट्य-काव्यात्मक पंक्तियाँ महाभारत की कथा पर आधारित चर्चित कृति 'अन्धायुग' से ली गई है। इसके रचयिता प्रसिद्ध साहित्यकार डॉ. धर्मवीर भारती हैं। साहित्यकार ने उद्घोषणा के रूप में अपने काव्य रूपक 'अन्धायुग' के वर्ण्य विषय की ओर इंगित करते हुए उस युग के अन्धेपन का परिचय देता है-

व्याख्या: डॉ. भारती कहते हैं कि इस भयंकर महायुद्ध के पश्चात् अन्धायुग अर्थात् कलियुग इस धरती में आया, युग के धन्धे होने के कारण इसमें अवस्थित स्थितियां मन की इच्छाए और व्यक्तियों की आस्थाएं सभी विकारों से युक्त है। अर्थात् जिस प्रकार अन्धा व्यक्ति किसी चित्र या खण्ड चित्र को उसके वास्तविक रूप में न देखकर अपनी इच्छा शक्ति से विकृत रूप में देखता है, उसी प्रकार यह युग अन्धा है। तो उसके समस्त कार्यकलाप भी अन्धे व्यक्ति की भांति ही विकृत हैं। इस युग में एक पतली और क्षीण डोरी को भांति मर्यादा अभी भी विद्यमान है किन्तु वह पाण्डव और कौरव पक्ष अर्थात् सत्य और असत्य के बीच उलझी हुई है। दोनों ही पक्ष उसे स्वहित में उपयोग करना चाहते हैं और इस प्रकार वह दोनों पक्षों में उलझ कर रह गई हैं। वे सब अधिकतर अन्धे अर्थात् विवेकहीन है उनमें ज्ञान और विवेक शक्ति नहीं है। वे पथ भ्रष्ट है और अपने हाथ से हारे अथवा छले हुए हैं तथा उनमें मनोबल का अभाव है। वे अपने कुंठित मन की अन्धी गुफाओं में निवास करते हैं अर्थात् कुण्ठाग्रस्त हैं। 'अन्धायुग' में वर्णित यह कथा ऐसे ही विवेकहीन व्यक्तियों की है जिन्होंने अपनी मूर्खता के कारण देश के वैभव और लक्ष्मी का विनष्ट करने का अपयश पाया है। इस कृति में अन्धे और विवेकहीन लोगों के माध्यम से प्रकाश अर्थात् ज्ञान की कथा कही गई है। यह ज्ञान है मानव भविष्य के सुख और उसको सम्पन्नता का।

1. इस कथा में सत्य और असत्य, कौरव और पाण्डवों पक्षों के मध्य कृष्ण ही एक साहसी व्यक्तित्व हैं।
2. डॉ. धर्मवीर भारती ने नेपथ्य से उद्घोषणा के द्वारा अपने उद्देश्य को प्रकट किया है।
3. यथार्थ से आदर्श की स्थापना करना लेखक का उद्देश्य है।
4. कृष्ण के रूप में भारत को भविष्य का रक्षक और अनासक्त घोषित किया है।
5. स्पष्ट भावाभिव्यंजना।
6. आकर्षक लयात्मकता
7. तद्भव शब्दों के साथ तत्सम् शब्दों का सुन्दर प्रयोग।
8. गतिशील भाव-चित्रण।
9. गावानुकूल मानक हिंदी का रूप
10. सूक्ष्म भावों की मनोरम प्रस्तुति
11. प्रसाद माधुर्यगुणसम्पन्न शैली।

टुकड़े-टुकड़े हो बिखर चुकी मर्यादा
उसको दोनों ही पक्षों ने तोड़ा है
पाण्डव ने कुछ कम कौरव ने कुछ ज्यादा
यह रक्तपात अब कब समाप्त होना है
यह अजब युद्ध है नहीं किसी की भी जय
दोनों पक्षों को खोना ही खोना है
अन्धों से शोभित या युग का सिंहासन
दोनों पक्षों में विवेक ही हारा
दोनों ही पक्षों में जीता अन्धापन
भय का अन्धापन, ममता का अन्धापन
अधिकारों का अन्धापन जीत गया
जो कुछ सुन्दर था, शुभ था, कोमलतम था
वह हार गया द्वापर युग बीत गया

प्रसंग: प्रस्तुत भावपूर्ण नाट्य-काव्यात्मक पंक्तियां महाभारत की कथा पर आधारित चर्चित कृति 'अन्धायुग' से ली गई हैं। इसके रचयिता डॉ. धर्मवीर भारती हैं। कथा-गायन के द्वारा रूपककार ने महाभारत के युद्ध से उत्पन्न विषमता, विनाश और रक्तपात की ओर संकेत करते हुए पाठकों-दर्शकों को नायक की ओर आकर्षित करने का प्रयास किया है। महाभारत युद्ध द्वारा हुई अपूरणीय क्षति के बारे कहा गया है-

व्याख्या: साहित्यकार कहता है कि इस महायुद्ध ने मर्यादा को खण्डित करके रख दिया और कई चीथड़ों के समान उसकी धज्जियाँ उड़ा दी है। ऐसा नहीं कहा जा सकता कि मर्यादा को किसी एक पक्ष ने ही खण्डित किया है वरन् उसको तोड़ने के भागीदार दोनों ही है इतना अवश्य है कि पाण्डवों का इसमें कुछ कम दोष है और कौरवों का अधिक किन्तु दोषी दोनों है। यह विनाशकारी युद्ध जिसमें लाखों-करोड़ों का रक्त बहा है कब समाप्त होगा? यह युद्ध इतना विलक्षण रही है कि इसमें विजय किसी भी पक्ष ने नहीं पाई, क्योंकि इसमें दोनों ही पक्ष श्रीहत हो चुके हैं और सभी प्रकार से रिक्त हो गए हैं। अन्दर से खोखला कर देने वाले इस युद्ध में यद्यपि प्रत्यक्षत: पाण्डव विजयी रहे हैं किन्तु वास्तविक विजय उन्हें इस युद्ध में नहीं मिली है, क्योंकि कौरव पक्ष की भांति ही वे भी अपना सब कुछ इस युद्ध में खो चुके हैं। अत: दोनों पक्षों ने इसमें केवल खोया ही है पाया कुछ नहीं। जब महाभारत युद्ध प्रारम्भ हुआ था तब सिंहासन पर अन्धा धृतराष्ट्र शासनारूढ़ था अत: अन्धेपन की विजय अवश्यम्भावी थी। मूर्खता से भरा हुआ यह युद्ध पूर्णत: मूर्खतापूर्ण था और मूर्ख शासनतंत्र तथा जनता ने इसमें सहयोग दिया। इसलिए यह निश्चित ही था कि इस युद्ध में विवेक की पराजय होती। विवेक हार गया और दोनों पाण्डव और कौरव पक्षों में अन्धेपन अर्थात् मूर्खता को ही विजय मिली। तात्पर्य यह है कि जिसने भी विवेक और मर्यादा का उल्लंघन किया वहीं विजय रहा। यदि एक पक्ष में भी विवेक होता तो युद्ध टल सकता था किन्तु ऐसा नहीं हुआ और विवेकी युयुत्सु को जो सत्य और न्याय के लिए कौरव होकर भी पाण्डवों के पक्ष में लड़ा, कौरव और पाण्डव दोनों ही पक्षों से लांछित तथा प्रताड़ित किया गया। अभिमन्यु के अमर्यादापूर्ण वध से कौरवों में उत्साह का संचार हुआ, गुरु द्रोणाचार्य को शस्त्रहीन रूप में धृष्टधुम्न ने मारा तक पाण्डव विजय हुए, अश्वत्थामा ने सोए हुए धृष्टधुम्न और पाण्डव-पुत्रों की हत्या की तो उसकी विजय हुई तथा इसी प्रकार भीम ने अधर्म वार करके दुर्योधन को मार डाला, यहां पाण्डवों की विजय हुई। इस प्रकार मर्यादा किसी ने भी नहीं निभाई और दोनों ही पक्षों का विवेक हार गया।

इस युद्ध में विजय केवल भय के अन्धेपन ममता के अन्धेपन और अधिकारों के अन्धेपन को ही मिली और वह सब तक पराजित हो गए जिनमें सौंदर्य था, कल्याणकारी भावना थी और जो अत्यधिक कोमल था। इस प्रकार से जय-पराजय के साथ ही मर्यादापूर्ण, श्री सम्पन्न और कल्याण भावना से भरा हुआ द्वापर युग समाप्त हो गया।

विशेष -

1. प्रतीकात्मक ढंग से वर्तमान युग का कुशल चित्रण।
2. 'शोभित' शब्द व्यंग्यार्थ है, इससे आशय है सिंहासन का कलंकित होना।
3. प्रसाद-माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।
4. आकर्षक लयात्मकता।
5. सूक्ष्म भावों की मनोरम प्रस्तुति।
6. मनमोहक अभिव्यंजना।
7. तद्‌भव शब्दों के साथ तत्सम शब्दों का सुन्दर योग।
8. गतिशील भाव-चित्रण।
9. अप्रस्तुत भावों की सुन्दर प्रस्तुति।
10. आकर्षक अभिनेता।
11. भावानुकूल मानक हिंदी भाषा का रूप।

संस्कृति थी एक बूढ़े और अंधे की
जिसकी संतानों ने
महायुद्ध घोषित किए
जिसके अंधेपन में मर्यादा
गलत अंग वेश्या-सी
प्रजाजनों को भो रोगी बनाती फिरी
उस अंधी संस्कृति
उस रोगी मर्यादा की
रक्षा हम करते रहे
सत्रह दिन।

शब्दार्थ- बूढ़े और अंधे की-धृतराष्ट्र की। **संतानों ने**-पुत्रों ने। **गलित अंग**-जिसके अंग गल गए हों। **रोगी**-बीमार।

प्रसंग-प्रस्तुत पंक्तियाँ आधुनिक साहित्यकार धर्मवीर भारती के लोकप्रिय दृश्य काव्य 'अंधा युग' से अवतरित है। इस नाटक में महाभारत के युद्ध के बाद आई जड़ता, व्यर्थता को समकालीन संदर्भो से जोड़ा गया है। इन पक्तियों में दो प्रहरियों के वार्तालाप दिखाया गया है तथा तत्कालीन स्थिति को अभिव्यक्त किया गया है।

व्याख्या-प्रहरियों का कहना है कि इस नगरी में ऐसी कोई वस्तु नहीं थी जिसकी रक्षा की जा सके परन्तु फिर भी उन्हें पहरा देना था तथा अपने कर्तव्य का पालन करना था। इस कौरव नगरी में एक बूढ़े और अंधे धृतराष्ट्र की संस्कृति थी जिसको सन्तानों ने एक भयंकर युद्ध की घोषणा कर दी थी। वह अंधा राजा पुत्र-मोह में इतना अन्धा हो गया था कि उसे उचित अनुचित का भान ही नहीं था। उसके बेटों दुर्योधन आदि ने पाण्डवों के विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया। इस अंधे धृतराष्ट्र के राज्य में मर्यादा नाम की कोई बात नहीं थी। मर्यादा की स्थिति गले हुए अंगों वाली वेश्या के समान थी जो स्वयं तो संक्रामक रोगों से ग्रस्त थी ही वह अपने संसर्ग से इस नगरी के प्रजाजनों को भी रोगो बना रही थी। कहने का तात्पर्य यह है कि दुर्योधन दु:शासन आदि के अमर्यादित व्यवहार का प्रजाजनों सीधा प्रभाव पड़ रहा था। इस प्रकार पूरी कौरव नगरी की संस्कृति हो अमर्यादित रूप धारण कर चुकीं थी। वे आगे कहते हैं कि उन प्रहरियों ने सत्रह दिनों तक उस अंधी संस्कृति की रक्षा की उस मर्यादा की रक्षा की जो रोगी थी तथा अपने संक्रामक रोग से सारे राज्य को रोगी बना रही थी। उन्हें अपने कर्तव्य को दायित्त्व को विवशता में निभाना पड़ा।

विशेष-

1. एक अंधी संस्कृति या विवेक शून्य संस्कृति की बात कही गई है जो धृतराष्ट्र का प्रतिनिधित्व करती है।
2. भाषा सरल, स्वाभाविक और रगंमंचोपयुक्त खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्‌भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. उपमा अलंकार का प्रयोग हुआ है।
6. वर्णनात्मक व प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

''मेहनत हमारी निरर्थक थी
आस्था का
साहस का

श्रम का

अस्तित्व का हमारे

कुछ अर्थ नहीं था

कुछ भी अर्थ नहीं था''

शब्दार्थ-मेहनत-परिश्रम। **निरर्थक**-बेकार। **आस्था**-विश्वास। **अर्थ**-अभिप्राय।

प्रसंग-प्रस्तुत पक्तियाँ आधुनिक साहित्यकार धर्मवीर भारती के लोकप्रिय दृश्य काव्य 'अन्धा युग' से अवतरित है। इस नाटक में महाभारत के युद्ध के बाद आई जड़ता, व्यर्थता को समकालीन संदर्भों में जोड़ा गया है। इन पंक्तियों में दो प्रहरियों के वार्तालाप दिखाया गया है तथा तत्कालीन स्थिति को अभिव्यक्त किया गया है।

व्याख्या-प्रहरी अपनी बात को आगे बढ़ाता हुआ कहता है कि सत्रह दिनों तक चले महाभारत के इस युद्ध में उनके द्वारा यहाँ राजमहल में रहकर किए गए परिश्रम का कोई अर्थ नहीं था। राज्य के प्रति उनकी आस्था, उनके साहस उनके परिश्रम, यहाँ तक कि उनके अस्तित्व का भी कोई अर्थ नहीं था। प्रहरी बड़ी निराशा के साथ अपनी बात को दोहराते हुए कहता है कि इस दौरान किए गए राजसेवा के उनके सभी कार्य अभिप्रायहीन थे। उसके कहने का अभिप्राय यह है कि उन्होंने सत्रह दिनों तक जिस अंधी संस्कृति की रक्षा की है उनका यह कार्य महत्त्वहीन व अर्थहीन ही है क्योंकि यह पाप और अधर्म की बुनियाद पर खड़ी है।

विशेष -

1. अधर्म की बुनियाद पर टिकी अंधी संस्कृति की रक्षा करने के अपने कार्य को प्रहरी द्वारा अर्थहीन बताया गया है।
2. भाषा सरल स्वाभाविक और रंगमंचोपयोक्त खड़ी बोली है।
3. तत्सम व तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. उल्लेख अलंकार का प्रयोग हुआ है।
6. संवाद व प्रतीकात्मक शैलियों का प्रयोग हुआ है।

स्वयं आकलन के प्रश्न

प्र. 1 'ठंडा लोहा' किसका काव्य संग्रह है।

प्र. 2 अंधायुग के पांचवें अंक का शीर्षक क्या है।

11.4 सारांश

अंधायुग की काव्य भाषा और संवाद योजना पात्रों के चरित्र-चित्रण में समर्थ है, परिस्थितियों के मर्म को उद्घाटित करने वाली है। संक्षिप्त है, सरस और सजीव है। नाटक की संवाद योजना निर्विवाद रूप से गत्यात्म्क है। वस्तु विधान को निश्चित प्रभाव तक ले जाने में संवाद योजना की सफलता रही है।

11.5 कठिन शब्दावली

(1) शोषित- सुन्दर, शोभा से युक्त

(2) सिंहासन - देवता, राजा का आसन

(3) विवेक - समझ, भले-बुरे का ज्ञान।

11.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

प्र. 1 उ. – धर्मवीर भारती

प्र. 2 उ. – विजन – एक क्रमिक हत्या

11.7 संदर्भित पुस्तकें

(1) अंधायुग धर्मवीर भारती

11.8 सात्रिक प्रश्न

प्र. 1 नाट्य काव्य की कसौटी पर अंधायुग का मूल्यांकन कीजिए।

प्र. 2 अंधायुग में वर्णित समस्याओं पर प्रकाश डालिए।

*****

इकाई–12

हिंदी उपन्यास का उद्‌भव एवं विकास

संरचना

12.1 भूमिका
12.1 उद्‌देश्य
12.3 हिंदी उपन्यास का उद्‌भव एवं विकास
  12.3.1 प्रेमचंदपूर्व हिंदी उपन्यास
  12.3.2 प्रेमचंदयुगीन हिंदी उपन्यास
  12.3.3 प्रेमचंदोत्तर हिंदी उपन्यास
  - सामाजिक उपन्यास
  - मनोवैज्ञानिक उपन्यास
  - ऐतिहासिक उपन्यास
  - आंचलिक उपन्यास

  स्वयं आकलन प्रश्न
12.4 सारांश
12.5 कठिन शब्दावली
12.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर
12.7 संदर्भित पुस्तकें
12.8 सात्रिक प्रश्न

इकाई-12
हिंदी उपन्यास का उद्‌भव एवं विकास

12.1 भूमिका

इकाई ग्यारह में हमने धर्मवीर भारती कृत 'अंधायुग' नाटक की व्याख्या भाग का अध्ययन किया। इकाई बारह के अंतर्गत हम हिंदी उपन्यास के उद्‌भव एक विकास मात्रा का अध्ययन करेंगे। उद्‌भव एवं विकास यात्रा के अंतर्गत हम प्रेमचंद युगीन और प्रेमचंदोत्तर हिंदी उपन्यास का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

12.2 उद्‌देश्य

इकाई बारह का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि -

1. हिन्दी उपन्यास का उद्‌भव एवं विकास कैसे हुआ ?
2. प्रेमचंद पूर्व हिन्दी उपन्यासकार कौन-कौन से हैं ?
3. प्रेमचंद युगीन हिन्दी उपन्यास की विशेषताएं क्या हैं ?
4. प्रेम चंदोत्तर हिन्दी उपन्यास की विशेषताएँ क्या हैं ?

12.3 हिंदी उपन्यास का उद्‌भव एवं विकास

उपन्यास आधुनिक युग की देन है। श्उपन्यासश शब्द अग्रेजी के श्नॉवलश शब्द का समानार्थक है। हिंदी उपन्यास साहित्य का इतिहास अधिक प्राचीन नहीं है। सर्वप्रथम हिंदी में उपन्यास बंगला उपन्यासों के अनुबाद रूप में आए। उपन्यास का विकास भारतेंदु युग से माना जाता है जिस प्रकार अन्य गद्य विधाओं का विकास भारतेंदु युग में हुआ उसी प्रकार उपन्यास को भी इसी युग में पहचान मिली। लाला श्री निवासदास द्वारा लिखित उपन्यास परीक्षा गुरूश हिंदी का पहला उपन्यास माना जाता है। हिंदी उपन्यास में प्रेमचंद का योगदान महत्वपूर्ण है। उन्होंने हिंदी उपन्यास को विशिष्ट दिशा दी है। इसी कारण हिंदी उपन्यास के विकास क्रम को उन्हीं के केंद्र में रखकर किया जाना है। हिंदी उपन्यास के विकास को तीन भागों में विभक्त करके देखा जा सकता है-

1. प्रेमचंद पूर्व हिंदी उपन्यास
2. प्रेम चंद युगीन हिंदी उपन्यास
3. प्रेमचन्दोत्तर हिंदी उपन्यास

12.3.1 प्रेमचंद पूर्व हिंदी उपन्यास

प्रेम चंद पूर्व हिंदी उपन्यासों को सुविधा की दृष्टि से तीन भागों में रख जा सकता है -

1. शुद्ध मनोरंजन प्रधान उपन्यास
2. उपदेश प्रधान उपन्यास
3. ऐतिहासिक उपन्यास

शुद्ध मनोरंजन प्रधान उपन्यासों के अन्तर्गत तिलिस्मी, एय्यारी और जासूसी उपन्यास आते हैं। तिलस्मी और एय्यारी उपन्यास के बीज फारसी के ग्रन्थ 'तिलस्म होशरूबा' 'दास्ताने अमीर हनजा' है। इन उपन्यासों के प्रमुख लेखक और उपन्यास है -देवकी नंदन खत्री का 'चंद्रकान्ता' 'चन्द्रकान्ता संताति' किशोरी लाल गोस्वामी का 'तिलिस्मी शीशमहल', हरे कृष्ण जौहर का 'कुसुमलता' राम लाल वर्मा का 'पुतनी महल'। 'तिलस्म' शब्द पर प्रकाश डालते हुए देवकी नंदन खत्री ने लिखा है कि 'खजाने की रक्षा के लिए मंत्रयुक्त बनी इमारत 'तिलस्म' कहलाती है और तिलस्म तोड़ने में सहायक होते हैं अय्यार, जो अति प्राकृतिक शक्तियों से पूर्ण होते हैं। शुद्ध मनोरंजन प्रधान जासूसी उपन्यासों में प्रमुख नाम गोपालराम गहमरी का है जिन्होंने 'अद्‌भुतलाश' 'बेकसूर की फाँसी', 'सरकटी लाश' आदि उपन्यास लिखे। जय राम दास ने 'बिना सवार का घोड़ा' 'विषय रहस्य' नामक जासूसी उपन्यास लिखे।

शुद्ध मनोरंजन प्रधान उपन्यासों का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन मात्र होता था। इन उपन्यासों को पातक बड़ी रूचि से पढ़ते थे। उपन्यासों में विचित्र घटनाओं के वर्णन से पाठकों का चमत्कृत किया जाता था तिलिस्मी घटनाओं के बीच में प्रेम कथाओं को रखा जाता था। इन उपन्यासों में दो-तीन कथाएँ आपस में मिली रहती थी। इनको सुलझाने में अनेक घटनाओं की सृजना की जाती थी। इन उपन्यासों को पढ़ने के लिए उर्दू जानने वाले लोगों ने हिन्दी का ज्ञान प्राप्त किया। इस बात से अन्दाजा लगाया जा सकता है कि ये बहुत चर्चित उपन्यास रहे। भाषा सरल होने की वजह से पाठक को पढ़ने में दिक्कत नहीं होती थी।

उपदेश प्रधान उपन्यासों के अन्तर्गत सामाजिक उपन्यासों को रखा जाता है। इन उपन्यासों के द्वारा तद्युगीन समाज की सामाजिक वास्तविकताओं का वर्णन किया था और साथ-ही-साथ उस समस्या का समाधान भी प्रस्तुत कर दिया जाता था। इन उपन्यासों के द्वारा उपन्यासकार ने समाज की बुराइयों का चित्रण किया है। लेखक का ध्यान मुख्य रूप यथार्थ चित्रण की ओर रहा है। इन उपन्यासों में मुख्यत: लाला श्री निवास दास का 'परीक्षा गुरू' राधाकृष्ण दास का 'निस्सहाय हिन्दू' बाल कृष्णा भट्ट का 'नूतन ब्रह्मचारी' 'सौ अजान एक सुजान' ठाकुर जगमोहन सिंह का 'श्यामा स्वप्न' अयोध्या सिंह उपाध्याय का 'अधखिला फूल' 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' आदि मुख्य है।

इस युग में ऐतिहासिक उपन्यासों को भी लिखा गया है। भारतीय इतिहास से कथा का चुनाव किया गया उसे कल्पना के द्वारा नवीन रूप में प्रस्तुत कर दिया गया। इन उपन्यासों के माध्यम से भारतीय समाज के गौरवपूर्ण इतिहास को पुनर्जीवित करने का ही प्रयास किया गया। इन उपन्यासों में रोमांचकारी घटनाओं की सृष्टि करना मनोरंजक बनाना ही उपन्यासकार का उद्देश्य रहा है। इन उपन्यास्सों में मुख्यत: किशोरी लाल गोस्वामी का 'हृदय हारिणी' 'आदर्शरमणी' 'तारा' 'रजिया बेगम' गंगा प्रसाद गुप्त का 'पृथ्वीराज चौहान' श्यामसुन्दर वैध का 'पंजाब पतन' आदि है।

अत: प्रेमचन्द पूर्व उपन्यास की सर्वप्रथम मुख्य विशेषता उनका घटना प्रधान होना है। इन उपन्यासों में मानव जीवन की उलझनों से असम्पृक्त, मनोवैज्ञानिक गहराइयों से सर्वथा हीन उपन्यासों की रचना हुई है। प्रेमचन्द पूर्व युग में उपन्यासों आदर्शवाद के साथ भावुकता तथा भारतीय आदर्श को ही प्रस्तुत किया गया है। भाषा की दृष्टि से जो प्रौढ़ता प्रेमचन्द युग में आई उसका इस युग की रचनाओं में अभाव ही मिलता है।

12.3.2 प्रेमचन्द युगीन हिन्दी उपन्यास

हिन्दी उपन्यास क्षेत्र में प्रेमचन्द के आगमन से एक नए युग की शुरूआत होती है। हिन्दी उपन्यास को उनकी देन अनेक मुखी है। चारों और फैले हुए जीवन और उससे जुड़ी अनेक सामयिक समस्याओं ने उन्हें उपन्यास लेखन की ओर प्रेरित किया और प्रेमचन्द ने इन्हीं को अपने उपन्यास का वर्ण्य-विषय बनाया। शुरू में उन्होंने आदर्शवादी उपन्यासों की ही रचना की किन्तु अनुभव की प्रौढ़ता के साथ-साथ उन्होंने यथार्थ को महत्ता देते हुए यथार्थवादी उपन्यासों की रचना की। आदर्शवादी उपन्यासों की शुरूआत 'सेवासदन' से होती है जो कि 1918 में लिखा गया। यह एक सामाजिक उपन्यास है जिसमें नारी को केंद्र में रखा गया। सामाजिक अत्याचार से पीड़ित नारी समाज के पतन और वेश्यावृत्ति में सुधार की समस्या को उपन्यास में चित्रित किया गया। प्रेमचन्द ने उपन्यास के पूर्व युग की चर्चा करते हुए स्पष्ट किया है कि विषय में परिवर्तन मुख्य बात थी। उनका कहना है कि हमने जिस युग को अभी पार किया है, उसे जीवन से कोई मतलब न था। हमारे साहित्यकार कल्पना की सृष्टि खड़ी कर उनमें मनमाने तिलिस्म बाँधा करते थे। कहीं पे फिसानये अजायब की दास्तान थी, कहीं बोस्ताने ख्याल की और कहीं चन्द्रकान्ता संतति की। इन आख्यानों का उद्देश्य केवल मनोरंजन था और हमारे अद्भुत रस-प्रेम की तृप्ति। साहित्य का जीवन से कोई लगाव है यह कल्पनातीत था। इस कहानी-कहानी है, जीवन-जीवन। दोनों परस्पर विरोधी समझी जाती थी।

प्रेमचन्द ने सामाजिक कुरीतियों को उपन्यास का विषय बनाया। साथ ही राष्ट्रीय भावनाओं और देश-प्रेम की भावना को चित्रित किया। ग्रामीण जीवन की अनेक समस्याओं और किसान व मजदूर के कष्टमय जीवन को उन्होंने उपन्यासों में चित्रित किया। यहाँ तक कि नेता, उपदेशक आदि सभी का यथार्थ चित्रण प्रेमचन्द ने किया। इस तरह

प्रेमचन्द ने अपने पूर्व युग से बिल्कुल भिन्न विषय वस्तु उपन्यास के लिए चुनी। जिसमें समाज को करीब से देखा गया। उन्होंने गरीब, असहायों और बेबस लोगों का मार्मिक और करूणामय चरित्रांकन किया। साथ ही मनुष्य में छिपी मानवता को प्रदर्शित किया। उनके प्रमुख उपन्यास हैं – 'प्रेमा', 'वरदान', 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि', 'कायाकल्प', 'निर्मला', 'गबन', 'कर्मभूमि', 'गोदान', 'मंगल सूत्र (अपूर्ण)। प्रेमचन्द ने आम आदमी की भाषा को अपनाया। इससे पाठक को उपन्यास पढ़ने में आसानी रही। उन्होंने मुहावरों और कहावतों आदि का प्रयोग करके भाषा को सहजता प्रदान की।

प्रेमचन्द युग के अन्य उपन्यासकारों ने भी समाज के यथार्थ चित्रण पर बल दिया। प्रेमचन्द युगीन उपन्यास है। विश्म्भरनाथ कौशिक का 'भिखारिणी और माँ, पांडेय बेचन शर्मा उग्र का 'बधुवा की बेटी', 'शराबी', चतुरसेन शास्त्री 'हृदय की प्यास', 'अमर अभिलाषा' 'बहते आँसू', सियाराम गुप्त का 'गोद' 'अंतिम आकांक्षा' आदि। जयशंकर प्रसाद ने भी इस युग में दो उपन्यासों की रचना को 'कंकाल' और 'तितली'। जयशंकर प्रसाद एक नवीन शैली लेकर उपन्यास जगत् में आए जबकि उपन्यासों में भी यथार्थ का चित्रण किया गया है। इन उपन्यासों में तत्कालीन समाज के उत्थान-पतन को चित्रित किया गया। परन्तु प्रसाद जी के उपन्यासों में अलगाव उनकी भिन्न शैली के द्वारा आया। इस प्रकार इस युग में दो प्रकार की शैलियाँ प्रचलन में आई। इन शैलियों को प्रेमचन्द शैली और प्रसाद शैली कहा गया। इन दोनों शैलियों में मुख्य अन्तर घटना और भावना के आधार पर रहा। प्रेमचन्द शैली के अन्तर्गत घटना का प्राधान्य रहा जबकि इसके विपरीत प्रसाद शैली में मानव मन के विश्लेषण पर बल दिया गया।

समग्र रूप से प्रेमचन्द्र युगीन उपन्यास में पहली बार यथार्थ के विभिन्न रूपों का वाणी दी गई। भारतीय नव जागरण, नारी, मध्यमवर्ग का विशद वर्णन किया गया। नई चेतना के कारण ग्रामीण और शहरी जीवन में आने वाले परिवर्तनों को रेखांकित किया। प्रेमचन्द पूर्व युग में उपन्यास का शिल्प घटना प्रधान था परन्तु पहली बार प्रेमचन्द युग में सहज घटनाओं मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण को स्थान प्राप्त हुआ। इस तरह प्रेमचन्द युग में उपन्यासों में स्वाभाविकता को महत्त्व दिया गया।

12.3.3 प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास

प्रेमचंद के बाद हिन्दी उपन्यास के विकास में गति आई है। प्रेमचन्द युग में ही दो धाराओं का प्रवाह उपन्यास क्षेत्र में देखा जाने लगा था। प्रेमचन्दोत्तर युग में इन दोनों धाराओं को व्यापक और स्पष्ट देखा जाने लगा। एक ओर प्रेमचन्द द्वारा प्रचलित यथार्थवाद की परम्परा का विकास हुआ और दूसरी और प्रसाद जी की भाववादी धारा विकास की ओर आगे बढ़ी। इन दो धाराओं के प्रभाव से प्रेमचन्दोत्तर युग में अनेक धाराएँ सामने आई जैसे सामाजिक उपन्यास, मनोवैज्ञानिक उपन्यास, ऐतिहासिक उपन्यास, आचलिक उपन्यास आदि।

- **सामाजिक उपन्यास**

सामाजिक उपन्यासों में सामाजिक फलक पर उभरते यथार्थ के नवीन रूपों की अभिव्यक्ति की गई परन्तु मूल दृष्टि मानवीय ही रही। सामाजिक उपन्यासों की दो कोटियां है

(1) समाजवादी उपन्यास (2) सामाजिक उपन्यास। समाजवादी उपन्यास की रचना लेखक की निजी दृष्टि से न होकर मार्क्सवादी दृष्टि से की गई है। इनमें नारी को परम्परागत बंधनों से हो मुक्त करने का प्रयास किया गया। इसमें मार्क्सवादी दृष्टि से ही कथावस्तु को भी प्रस्तुत किया जाता है। इन उपन्यासों में समाज की वास्तविकता को प्रमुख स्थान दिया गया। सामाजिक रूढ़ियों, धार्मिक अधविश्वासों आर्थिक शोषण को आधार बनाया गया। सामाजिक उपन्यास समाजवादी उपन्यासों का ही रूप है क्योंकि इसमें सामाजिक यथार्थ एवं बुनियादी का सत्यों को ही ग्रहण किया जाता है। उपन्यासकार की सहानुभूति किसान, मजदूर, अछूत कहे जाने वाले वर्गों एवं निम्न वर्ग से हैं। इस परम्परा में लिखे गए उपन्यास हैं-यशपाल का 'दादा कामरेड', 'झूठा सच', उपेन्द्रनाथ अश्क का 'गिरती दीवारें', 'गर्म राख', 'शहर में घूमता आईना', अमृतराय का 'बीज', धुआं, रांगेय राघव का 'घरौंदे', भीष्म साहनी का 'तमस', 'कड़ियाँ, झरोखे', अमृतलाल नागर का 'बूंद और समुद्र', 'अमृत और विष', 'बिखरे तिनके', मोहन राकेश का 'अंधेरे बंद कमरे', राजेन्द्र यादव का 'उखड़े हुए लोग', 'सारा आकाश' आदि।

- **मनोवैज्ञानिक उपन्यास-**

प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासों के क्षेत्र में कुछ ऐसे नए साहित्यकार आए जिन्होंने मानव मन को ही रचना का मुख्य समस्याओं के स्थान पर व्यक्ति की निजी या वैयक्तिक पीड़ा और उसके मानसिक द्वंद्व को प्रस्तुत किया जाने लगा। इन उपन्यासकारों की सोच और दृष्टि के पीछे पाश्चात्य मनोविश्लेषक फ्रायड, एडलर युग के सिद्धान्त रहें। इन उपन्यासों में मानव मन के चेतन, अचेतन, स्तरों का विश्लेषण होता है। इनका लक्ष्य पात्रों का मनोवैज्ञानिक शोध करना है कि मनुष्य वास्तव में कैसा है? जैनेन्द्र के 'परख' पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव दर्शाया गया। हिन्दी के प्रमुख मनोवैज्ञानिक उपन्यास हैं- जैनेन्द्र के 'सुनीता', 'त्यागपत्र', 'कल्याणी', 'जयवर्धन', 'सुखदा', इलाचन्द्र जोशी का 'निर्वासित', 'जहाज का पंछी' अज्ञेय का 'शेखर एक जीवनी' (दो भाग), 'अपने-अपने अजनबी', नदी के द्वीप आदि।

- **ऐतिहासिक उपन्यास**

प्रेमचन्द पूर्व युग में लिखे गए परन्तु उनमें कल्पना का प्रयोग होता था। इन उपन्यासों में इतिहास को कल्पना के द्वारा दर्शाया गया। प्रेमचन्दात्तर युग में या स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात भी ऐतिहासिक उपन्यास लिखे गए। लेकिन इन उपन्यासों में अपने पूर्व एतिहासिक उपन्यासों से काफी अन्तर था। वृंदावन लाल वर्मा ने ऐतिहासिक उपन्यासों की धारा में प्राण प्रतिष्ठा की। उनके 'गढ़ कुंढार' 'विराटा की पद्‌मिनी', 'मृगनयनी' उनके प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यास हैं। इन उपन्यासों के अतिरिक्त अन्य उपन्यास है। राहुल सांकृत्यायन का 'सिंह सेनापति' यशपाल का 'दिव्या' रागेय राघव का 'मुर्दो का टीला' आदि। ये उपन्यास समाजवादी दृष्टि के उपन्यासकारों के मार्क्सवादी दृष्टिकोण को स्वीकार करने वाले उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में मानवतावादी दृष्टि को ही उभारा। इस प्रकार के ऐतिहासिक उपन्यास है हजारी प्रसाद द्विवेदी का 'बाणभटट की आत्म कथा', 'अनामदास का पोथा', वृन्दावनलाल वर्मा का 'विराटा की पदमिनी' झांसी की रानी', अमृत लाल नागर का 'शतरंज को मोहरें' मानस का हस, भगवती चरण वर्मा का 'चित्र लेखा' 'वैशाली की नगरवधू', आचार्य चतुरसेन शास्त्री का 'सोमनाथ' आदि।

- **आंचलिक उपन्यास**

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में एक नई धारा का विकास हुआ वह था आंचलिक उपन्यास। आंचलिक उपन्यास किसी विशेष प्रदेश या अचल को लेकर उसके जन जीवन का यथार्थ एवं सर्वागीण चित्र प्रस्तुत करता है। इन उपन्यासों में रचनाकार क्षेत्र विशेष कथावस्तु का चयन करता है। इस धारा के उपन्यासों की शुरूआत फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आँचल' से मानी जाती है। जबकि इससे पूर्व भो ग्रामीण परिवेश को आधार बनाकर उपन्यास रचना की जा रही थी परन्तु इन उपन्यासों में आंचलिकता का अभाव रहता है। 'मैला आँचल' में रेणु जी ने बिहार के पूर्णिया जिले के एक गाँव मेरीगंज को कथा के लिए चुना। अंचल की सभी विशेषताओं को उपन्यास में स्थान दिया गया। उनकी भाषा रहन-सहन, खान-पान, व्यवहार आदि का खुलकर वर्णन किया गया। इन उपन्यासों में फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आंचल', 'परती परिकथा' नागार्जुन के 'रतिनाथ की चाची' 'बाबा बटेसर नाथ' देवेन्द्र सत्यार्थी का 'ब्रह्मपुत्र' 'दूधगाच्छ', 'रथ के पहिए', रागेय राघव का 'कब तक पुकारूं, उदयशंकर भट्ट का 'सागर लहरें और मनुष्य' राही मासूम रजा का 'आधा गाँव' आदि मुख्य आंचलिक उपन्यास माने जाते हैं।

इस तरह प्रेमचंद पूर्व युग से उपन्यास-साहित्य अनेक पड़ाव पार करता हुआ वर्तमान साहित्य-जगत में अपनी एक विशिष्ट पहचान बना चुका है। आज अनेक साहित्यकार उपन्यास-लेखन की ओर प्रवृत्त है और अपने सामाजिक परिवेश और अनुभवों को उपन्यास के माध्यम से व्यक्त कर रहे हैं।

स्वयं आकलन के लिए प्रश्न

प्र. 1 हिन्दी उपन्यास के विकास को कितने भागों में बांटा जाता है।

प्र. 2 अंग्रेजी शब्द नॉवल का हिंदी समानार्थ क्या है।

प्र. 3 वलचनामा किसका उपन्यास है।

12.4 सारांश

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि उपन्यास आधुनिक युग की देन है। हिंदी उपन्यास साहित्य का इतिहास अधिक प्राचीन नहीं है। अन्य गद्य विधाओं की तरह उपन्यास का विकास भी भारतेंदु युग में हुआ। लाला श्री निवास कृत परीक्षा गुरु को हिन्दी का पहला उपन्यास माना जाता है।

12.5 कठिन शब्दावली

(1) यथार्थ - उचित, जैसा होना चाहिए ठीक वैसा

(2) शैली- चाल, ढंग

(3) विराट - अत्यंत विशाल

12.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

प्र. 1 उत्तर - तीन भागों में

प्र. 2 उत्तर - उपन्यास

प्र. 3 उत्तर - नागार्जुन

12.7 संदर्भित पुस्तकें

(1) ...

(2) ...

(3) ...

(4) ...

12.8 सात्रिक प्रश्न

(1) हिन्दी उपन्यास के उद्‌भव विकास पर प्रकाश डालिए।

(2) आंचलिक उपन्यास का परिचय देते हुए प्रमुख आंचलिक उपन्यासों का परिचय दीजिए।

(3) हिंदी के प्रमुख मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों का परिचय दीजिए।

*****

इकाई–13
प्रेम चंद : जीवन एवं सृजित साहित्य

संरचना

13.1 भूमिका

13.2 उद्देश्य

13.3 प्रेम चंद : जीवन और सृजित साहित्य

- जीवन साहित्य
- रचना संसार

स्वयं आकलन प्रश्न

13.4 सारांश

13.5 कठिन शब्दावली

13.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

13.7 संदर्भित पुस्तकें

13.8 सात्रिक प्रश्न

इकाई-13

प्रेम चंद : जीवन एवं सृजित साहित्य

13.1 भूमिका

इकाई बारह में हमने हिन्दी उपन्यास के उद्भव एवं विकास यात्रा का अध्ययन किया। इकाई तेरह के अंतर्गत हम प्रेमचंद के जीवन और सृजित साहित्य का अध्ययन करेंगे। जीवन और सृजित साहित्य के अतर्गत प्रेमचंद के जीवन साहित्य और रचना संसार का अध्ययन करेंगे।

13.2 उद्देश्य

इकाई तेरह का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि

1. प्रेम चंद का जन्म कब और कहाँ हुआ ?

2. प्रेमचंद की प्रमुख रचनाएँ कौन-कौन सी है ?

3 प्रेमचंद की शिक्षा कहाँ तक हुई थी ?

13.3 प्रेमचंद : जीवन और सृजित साहित्य

प्रेमचंद (31 जुलाई, 1880-8 अक्तूबर, 1936) हिन्दी और उर्दू के महानतम भारतीय लेखकों में से एक थे। मूल नाम धनपत राय श्रीवास्तव, प्रेमचंद को नवाब राय और मुंशी प्रेमचंद के नाम से भी जाना जाता है। उपन्यास के क्षेत्र में उनके योगदान को देखकर बंगाल के विख्यात उपन्यासकार शरतचंद्र चट्टोपाध्याय ने उन्हें उपन्यास सम्राट कहकर संबोधित किया था। प्रेमचंद ने हिन्दी कहानी और उपन्यास की एक ऐसी परंपरा का विकास किया जिसने पूरी सदी के साहित्य का मार्गदर्शन किया। आगामी एक पूरी पीढ़ी को गहराई तक प्रभावित कर प्रेमचंद ने साहित्य की यथार्थवादी परंपरा की नींव रखी। उनका लेखन हिन्दी साहित्य की एक ऐसी विरासत है जिसके बिना हिन्दी के विकास का अध्ययन अधूरा होगा। वे एक संवेदनशील लेखक, सचेत नागरिक, कुशल वक्ता तथा सुधी (विद्वान) संपादक थे। बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में, जब हिन्दी में तकनीकी सुविधाओं का अभाव था, उनका योगदान अतुलनीय है। प्रेमचंद के बाद जिन लोगों ने साहित्य को सामाजिक सरोकारों और प्रगतिशील मूल्यों के साथ आगे बढ़ाने का काम किया, उनमें यशपाल से लेकर मुक्तिबोध तक शामिल हैं। उनके पुत्र हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार अमृतराय हैं जिन्होंने इन्हें कलम का सिपाही नाम दिया था।

● जीवन साहित्य

प्रेमचंद का जन्म वाराणसी के निकट लमही गाँव में हुआ था। उनकी माता का नाम आनन्दी देवी था तथा पिता मुंशी अजायबराय लमही में डाकमुंशी थे। उनकी शिक्षा का आरंभ उर्दू, फारसी में हुआ और जीवनयापन का अध्यापन से पढ़ने का शौक उन्हें बचपन से ही लग गया। 13 साल की उम्र में ही उन्होंने तिलिस्म-ए-होशरुबा पढ़ लिया और उन्होंने उर्दू के मशहूर रचनाकार रतननाथ 'शरमार', मिर्जा हादी रुम्बा और मौलाना शरर के उपन्यासों से परिचय प्राप्त कर लिया। १८९८ में मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद वे एक स्थानीय विद्यालय में शिक्षक नियुक्त हो गए। नौकरी के साथ ही उन्होंने पढ़ाई जारी रखी। १९१० में उन्होंने अंग्रेजी, दर्शन, फारसी और इतिहास लेकर इंटर पास किया और १९१९ में बीए पास करने के बाद शिक्षा विभाग के इंस्पेक्टर पद पर नियुक्त हुए।

सात वर्ष की अवस्था में उनकी माता तथा चौदह वर्ष की अवस्था में पिता का देहान्त हो जाने के कारण उनका प्रारंभिक जीवन संघर्षमय रहा। उनका पहला विवाह उन दिनों की परपरा के अनुसार पंद्रह साल की उम्र में हुआ जो सफल नहीं रहा। वे आर्य समाज मे प्रभावित रहे जो उस समय का बहुत बड़ा धार्मिक और सामाजिक आंदोलन था। उन्होंने विधवा-विवाह का समर्थन किया और १९०६ में दूसरा विवाह अपनी प्रगतिशील परंपरा के अनुरूप बाल-

विधवा शिवरानी देवी से किया। उनकी तीन संताने हुई– श्रीपत राय, अमृत राय और कमला देवी श्रीवास्तव। १९१० में उनकी रचना सोजे-वतन (राष्ट्र का विलाप) के लिए हमीरपुर के जिला कलेक्टर ने तलब किया और उन पर जनता को भड़काने का आरोप लगाया। सोजे-वतन की सभी प्रतियाँ जब्त कर नष्ट कर दी गई। कलेक्टर ने नवाबराय को हिदायत दी कि अब वे कुछ भी नहीं लिखेंगे, यदि लिखा तो जेल भेज दिया जाएगा। इस समय तक प्रेमचंद, धनपत राय नाम से लिखते थे। उर्दू में प्रकाशित होने वाली जमाना पत्रिका के सम्पादक और उनके अजीज दोस्त मुंशी दयानारायण निगम ने उन्हें प्रेमचंद नाम में लिखने की सलाह दी। इसके बाद वे प्रेमचन्द के नाम में लिखने लगे। उन्होंने आरंभिक लेखन जमाना पत्रिका में ही किया। जीवन के अंतिम दिनों में वे गंभीर रूप से बीमार पड़े। उनका उपन्यास मंगलसूत्र पूरा नहीं हो सका और लम्बी बीमारी के बाद ८ अक्टूबर १९३६ को उनका निधन हो गया। उनका अंतिम उपन्यास मंगल सूत्र उनके पुत्र अमृत ने पूरा किया।

- **कार्यक्षेत्र**

प्रेमचंद आधुनिक हिन्दी कहानी के पितामह और उपन्यास सम्राट माने जाते हैं। यों तो उनके माहित्यिक जीवन का आरंभ १९०१ में हो चुका था पर उनकी पहली हिन्दी कहानी सरस्वती पत्रिका के दिसम्बर अंक में १९१५ में सौत नाम में प्रकाशित हुई और १९३६ में अंतिम कहानी कफन नाम से प्रकाशित हुई। बीस वर्षो की इस अवधि में उनकी कहानियों के अनेक रंग देखने को मिलते हैं। उनसे पहले हिंदी में काल्पनिक, एय्यारी और पौराणिक धार्मिक रचनाए ही की जाती थी। प्रेमचंद ने हिंदी में यथार्थवाद की शुरुआत की। ''भारतीय साहित्य का बहुत सा विमर्श जो बाद में प्रमुखता में उभरा चाहे वह दलित साहित्य हो या नारी साहित्य उसकी जड़ कहीं गहरे प्रेमचंद के साहित्य में दिखाई देती हैं। ''प्रेमचंद के लेख 'पहली रचना' के अनुसार उनकी पहली रचना अपने मामा पर लिखा व्यंग्य थी, जो अब अनुपलब्ध है। उनका पहला उपलब्ध लेखन उनका उर्दू उपन्यास 'असरारे मआबिद' है। प्रेमचंद का दूसरा उपन्यास 'हमखुर्मा व हमसवाब' जिसका हिंदी रूपांतरण 'प्रेमा' नाम में 1907 में प्रकाशित हुआ। इसके बाद प्रेमचंद का पहला कहानी संग्रह सोजे वतन नाम में आया जो १९०८ में प्रकाशित हुआ। सोजे-वतन यानी देश का दर्द। देशभक्ति की भावना से ओतप्रोत होने के कारण इस पर अंग्रेजी सरकार ने रोक लगा दी और इसके लेखक को भविष्य में इस तरह का लेखन न करने की चेतावनी दी। इसके कारण उन्हें नाम बदलकर लिखना पड़ा। 'प्रेमचंद' नाम से उनकी पहली कहानी बड़े घर की बेटी जमाना पत्रिका के दिसम्बर १९१० के अंक में प्रकाशित हुई। मरणोपरांत उनकी कहानियाँ मानसरोवर नाम से 8 खंडों में प्रकाशित हुई। कथा सम्राट प्रेमचन्द का कहना था कि साहित्यकार देशभक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई नहीं बल्कि उसके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई है। यह बात उनके साहित्य में उजागर हुई है। १९२१ में उन्होंने महात्मा गांधी के आह्वान पर अपनी नौकरी छोड़ दी। कुछ महीने मर्यादा पत्रिका का संपादन भार संभाला, छह साल तक माधुरी नामक पत्रिका का संपादन किया, १९३० में बनारस से अपना मासिक पत्र हंस शुरू किया और १९३२ के आरंभ में जागरण नामक एक साप्ताहिक और निकाला। उन्होंने लखनऊ में १९३६ में अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ के सम्मेलन की अध्यक्षता की। उन्होंने मोहन दयाराम भवनानी की अजंता सिनेटोन कंपनी में कहानी-लेखक की नौकरी भी की। १९३४ में प्रदर्शित मजदूर नामक फिल्म की कथा लिखी और कंट्रेक्ट की साल भर की अवधि पूरी किये बिना ही दो महीने का वेतन छोड़कर बनारस भाग आये क्योंकि बंबई (आधुनिक मुंबई) का और उससे भी ज्यादा वहाँ की फिल्मी दुनिया का हवा-पानी उन्हें रास नहीं आया। उन्होंने मूल रूप से हिंदी में 1915 से कहानियां लिखना और 1918 (सेवासदन) से उपन्यास लिखना शुरू किया। प्रेमचंद ने कुल करीब तीन सौ कहानियाँ, लगभग एक दर्जन उपन्यास और कई लेख लिखे। उन्होंने कुछ नाटक भी लिखे और कुछ अनुवाद कार्य भी किया। प्रेमचंद के कई साहित्यिक कृतियों का अंग्रेजी, रूसी, जर्मन सहित अनेक भाषाओं में अनुवाद हुआ। गोदान उनकी कालजयी रचना है। कफन उनकी अंतिम कहानी मानी जाती है। उन्होंने हिंदी और उर्दू में पूरे अधिकार में लिखा। उनकी अधिकांश रचनाएं मूल रूप से उर्दू में लिखी गई हैं लेकिन उनका प्रकाशन हिंदी में पहले हुआ। तैंतीस वर्षों के रचनात्मक जीवन में वे साहित्य की ऐसी विरासत सौंप गए जो गुणों की दृष्टि में अमूल्य है और आकार की दृष्टि से असीमीत।

● **रचना संसार**

प्रेमचन्द की रचना–दृष्टि विभिन्न साहित्य रूपों में प्रवृत्त हुई। बहुमुखी प्रतिभा संपन्न प्रेमचंद ने उपन्यास, कहानी, नाटक, समीक्षा, लेख, सम्पादकीय, संस्मरण आदि अनेक विधाओं में साहित्य की सृष्टि की। प्रमुखतया उनकी ख्याति कथाकार के तौर पर हुई और अपने जीवन काल में ही वे 'उपन्यास सम्राट' की उपाधि से सम्मानित हुए। उन्होंने कुल १५ उपन्यास, ३०० से कुछ अधिक कहानियाँ, ३ नाटक, १० अनुवाद, ७ बाल–पुस्तकें तथा हजारों पृष्ठों के लेख, सम्पादकीय, भाषण, भूमिका, पत्र आदि की रचना की लेकिन जो यश और प्रतिष्ठा उन्हें उपन्यास और कहानियों से प्राप्त हुई, वह अन्य विधाओं से प्राप्त न हो सकी। यह स्थिति हिन्दी और उर्दू भाषा दोनों में समान रूप से दिखायी देती है।

उपन्यास

प्रेमचंद के उपन्यास न केवल हिन्दी उपन्यास साहित्य में बल्कि संपूर्ण भारतीय साहित्य में मील के पत्थर हैं। प्रेमचन्द कथा–साहित्य में उनके उपन्यासकार का आरम्भ पहले होता है। उनका पहला उर्दू उपन्यास (अपूर्ण) 'असरारे मआबिद उर्फ देवस्थान रहस्य' उर्दू साप्ताहिक ''आवाज–ए–खल्क'' में ८ अक्टूबर, १९०३ से १ फरवरी, १९०५ तक धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुआ। उनका दूसरा उपन्यास 'हमखुर्मा व हमसवाब' जिसका हिंदी रूपांतरण 'प्रेमा' नाम से 1907 में प्रकाशित हुआ। चूंकि प्रेमचंद मूल रूप से उर्दू के लेखक थे और उर्दू से हिंदी में आए थे, इसलिए उनके सभी आरंभिक उपन्यास मूल रूप से उर्दू में लिखे गए और बाद में उनका हिन्दी तर्जुमा किया गया। उन्होंने 'सेवासदन' (1918) उपन्यास से हिंदी उपन्यास की दुनिया में प्रवेश किया। यह मूल रूप से उन्होंने 'बाजारे–हुस्न' नाम से पहले उर्दू में लिखा लेकिन इसका हिंदी रूप 'सेवासदन' पहले प्रकाशित कराया। 'सेवासदन' एक नारी के वेश्या बनने की कहानी है। डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार 'सेवासदन' में व्यक्त मुख्य समस्या भारतीय नारी की पराधीनता है। इसके बाद किसान जीवन पर उनका पहला उपन्यास 'प्रेमाश्रम' (1921) आया। इसका मसौदा भी पहले उर्दू में 'गोशाए–आफियत' नाम से तैयार हुआ था लेकिन 'सेवासदन' की भांति इसे पहले हिंदी में प्रकाशित कराया। 'प्रेमाश्रम' किसान जीवन पर लिखा हिंदी का संभवतः पहला उपन्यास है। यह अवध के किसान आंदोलनों के दौर में लिखा गया। इसके बाद 'रंगभूमि' (1925), 'कायाकल्प' (1926), 'निर्मला' (1927), 'गबन' (1931), 'कर्मभूमि' (1932) से होता हुआ यह सफर 'गोदान' (1936) तक पूर्णता को प्राप्त हुआ। रंगभूमि में प्रेमचंद एक अंधे भिखारी सूरदास को कथा का नायक बनाकर हिंदी कथा माहित्य में क्रांतिकारी बदलाव का सूत्रपात कर चुके थे। गोदान का हिंदी साहित्य ही नहीं, विश्व साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। इसमें प्रेमचंद की साहित्य संबंधी विचारधारा 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' से 'आलोचनात्मक यथार्थवाद' तक की पूर्णता प्राप्त करती है। एक सामान्य किसान को पूरे उपन्यास का नायक बनाना भारतीय उपन्यास परंपरा की दिशा बदल देने जैसा था। सामंतवाद और पूंजीवाद के चक्र में फंसकर हुई कथानायक होरी की मृत्यु पाठकों के जहन को झकझोर कर रख जाती है। किसान जीवन पर अपने पिछले उपन्यासों 'प्रेमाश्रम' और 'कर्मभूमि' में प्रेमचंद यथार्थ की प्रस्तुति करते–करते उपन्यास के अंत तक आदर्श का दामन थाम लेते हैं। लेकिन गोदान का कारुणिक अंत इस बात का गवाह है कि तब तक प्रेमचद का आदर्शवाद से मोहभंग हो चुका था। यह उनकी आखिरी दौर की कहानियों में भी देखा जा सकता है। 'मंगलसूत्र' प्रेमचंद का अधूरा उपन्यास है। प्रेमचंद के उपन्यासों का मूल कथ्य भारतीय ग्रामीण जीवन था। प्रेमचंद ने हिंदी उपन्यास को जो ऊँचाई प्रदान की, वह परवर्ती उपन्यासकारों के लिए एक चुनौती बनी रही। प्रेमचंद के उपन्यास भारत और दुनिया की कई भाषाओं में अनुदित हुए, खासकर उनका सर्वाधिक चर्चित उपन्यास गोदान।

असरारे मआबिद उर्फ देवस्थान रहस्य उर्दू साप्ताहिक ''आवाज–ए–खल्क'' में ८ अक्टूबर, १९०३ से १ फरवरी, १९०५ तक प्रकाशित। सेवासदन १९१८, प्रेमाश्रम १९२२, रंगभूमि १९२५, निर्मला १९२५, कायाकल्प १९२७, गबन १९२८, कर्मभूमि १९३२, गोदान १९३६, मंगलसूत्र (अपूर्ण), प्रतिज्ञा, प्रेमा, रंगभूमि, मनोरमा, वरदान।

कहानी

उनकी अधिकतर कहानियों में निम्न व मध्यम वर्ग का चित्रण है। डॉ. कमलकिशोर गोयनका ने प्रेमचंद की संपूर्ण हिंदी-उर्दू कहानी को प्रेमचंद कहानी रचनावली नाम से प्रकाशित कराया है। उनके अनुसार प्रेमचंद ने कुल ३०१ कहानियाँ लिखी हैं जिनमें ३ अभी अप्राप्य हैं। प्रेमचंद का पहला कहानी संग्रह सोजे वतन नाम से जून १९०८ में प्रकाशित हुआ। इसी संग्रह की पहली कहानी दुनिया का सबसे अनमोल रतन को आम तौर पर उनकी पहली प्रकाशित कहानी माना जाता रहा है। डॉ. गोयनका के अनुसार कानपुर से निकलने वाली उर्दू मासिक पत्रिका जमाना के अप्रैल अंक में प्रकाशित सांसारिक प्रेम और देश-प्रेम (इश्के दुनिया और हुब्बे वतन) वास्तव में उनकी पहली प्रकाशित कहानी है।

उनके जीवन काल में कुल नौ कहानी संग्रह प्रकाशित हुए, सोजे वतन, 'सप्त सरोज', 'नवनिधि' 'प्रेमपूर्णिमा', 'प्रेम-पचीसी', 'प्रेम-प्रतिमा', 'प्रेम-द्वादशी', 'समर यात्रा' 'मानसरोवर' भाग एक व दो और 'कफन'। उनकी मृत्यु के बाद उनकी कहानियाँ 'मानसरोवर' शीर्षक से 8 भागों में प्रकाशित हुई। प्रेमचंद साहित्य के मुदराधिकार में मुक्त होते ही विभिन्न संपादकों और प्रकाशकों ने प्रेमचंद की कहानियों के सकलन तैयार कर प्रकाशित कराए। उनकी कहानियों में विषय और शिल्प की विविधता है। उन्होंने मनुष्य के सभी वर्गों से लेकर पशु-पक्षियों तक को अपनी कहानियों में मुख्य पात्र बनाया है। उनकी कहानियों में किसानों, मजदूरों, स्त्रियों, दलितों, आदि की समस्याएं गंभीरता से चित्रित हुई हैं। उन्होंने समाज सुधार देशप्रेम, स्वाधीनता संग्राम आदि से संबंधित कहानियाँ लिखी हैं। उनकी ऐतिहासिक कहानियाँ तथा प्रेम संबंधी कहानियाँ भी काफी लोकप्रिय साबित हुई। प्रेमचंद की प्रमुख कहानियों में ये नाम लिये जा सकते हैं- 'पंच परमेश्वर', 'गुल्ली डंडा', 'दो बैलों की कथा', 'ईदगाह', 'बड़े भाई साहब', 'पूस की रात', 'कफन', 'ठाकुर का कुआं' 'सदृती हूलि', 'बूढ़ी काकी', 'तावान', 'विध्वंस', 'दूध का दाम' 'मंत्र' आदि।

नाटक

प्रेमचंद ने संग्राम (1923), कर्बला (1924) और प्रेम की बेदी (1933) नाटकों की रचना की। ये नाटक शिल्प और संवेदना के स्तर पर अच्छे हैं लेकिन उनकी कहानियां और उपन्यासों ने इतनी ऊँचाई प्राप्त कर ली थी कि नाटक के क्षेत्र में प्रेमचन्द को कोई खास सफलता नहीं मिली। ये नाटक वस्तुत संवादात्मक उपन्यास ही बन गए हैं।

लेख/निबंध

प्रेमचंद एक संवेदनशील कथाकार ही नहीं, नागरिक व सजग व संपादक भी थे। उन्होंने 'हंस', 'माधुरी', 'जागरण' आदि पत्र-पत्रिकाओं का संपादन करते हुए व तत्कालीन अन्य सहगामी साहित्यिक पत्रिकाओं 'चाँद', 'मर्यादा', 'स्वदेश' आदि में अपनी साहित्यिक व सामाजिक चिंताओं को लेखों या निबंधों के माध्यम से अभिव्यक्त किया। अमृतराय द्वारा संपादित श्प्रेमचंद : विविध प्रसंग (तीन भाग) वास्तव में प्रेमचंद के लेखों का ही संकलन है। प्रेमचंद के लेख प्रकाशन संस्थान से 'कुछ विचार' शीर्षक से भी छपे हैं। प्रेमचंद के मशहूर लेखों में निम्न लेख शुमार होते हैं- साहित्य का उद्देश्य, पुराना जमाना नया जमाना, स्वराज के फायदे, कहानी कला (1,2,3), कौमी भाषा के विषय में कुछ विचार, हिंदी-उर्दू की एकता, महाजनी सभ्यता, उपन्यास, जीवन में साहित्य का स्थान आदि।

अनुवाद

प्रेमचंद एक सफल अनुवादक भी थे। उन्होंने दूसरी भाषाओं के जिन लेखकों को पढ़ा और जिनसे प्रभावित हुए, उनकी कृतियों का अनुवाद भी किया। टॉलस्टॉय की कहानियाँ' (1923), गाल्सवर्दी के तीन नाटकों का हड़ताल (1930), चाँदी की डिबिया (1931) और न्याय (1931) नाम से अनुवाद किया। आजाद-कथा (उर्दू से रतननाथ सरशार), पिता के पत्र पुत्री के नाम (अंग्रेजी में जवाहरलाल नेहरू) उनके द्वारा रतननाथ सरशार के उर्दू उपन्यास फसान-ए-आजाद का हिंदी अनुवाद आजाद कथा बहुत मशहूर हुआ।

विविध

बाल साहित्य : रामकथा, कुत्ते की कहानी, जंगल की कहानियाँ, दुर्गादास।

विचार : प्रेमचंद : विविध प्रसंग, प्रेमचंद के विचार (तीन खंडों में)

संपादन : मर्यादा, माधुरी, हंस, जागरण

समालोचना

प्रेमचन्द उर्दू का संस्कार लेकर हिन्दी में आए थे और हिन्दी के महान लेखक बने। हिन्दी को अपना खास मुहावरा और खुलापन दिया। कहानी और उपन्यास दोनो में युगान्तरकारी परिवर्तन किए। उन्होने साहित्य में सामयिकता प्रबल आग्रह स्थापित किया। आम आदमी को उन्होंने अपनी रचनाओं का विषय बनाया और उसकी समस्याओं पर खुलकर कलम चलाते हुए उन्हें साहित्य के नायकों के पद पर आसीन किया। प्रेमचंद से पहले हिंदी साहित्य राजा-रानी के किस्सों, रहस्य-रोमांच में उलझा हुआ था। प्रेमचंद ने साहित्य को सच्चाई के धरातल पर उतारा। उन्होंने जीवन और कालखंड की सच्चाई को पन्ने पर उतारा।

वे सांप्रदायिकता, भ्रष्टाचार, जमींदारी, कर्जखोरी, गरीबी, उपनिवेशवाद पर आजीवन लिखते रहे। प्रेमचन्द की ज्यादातर रचनाएँ उनकी ही गरीबी और दैन्यता की कहानी कहती है। ये भी गलत नहीं है कि वे आम भारतीय के रचनाकार थे। उनकी रचनाओं में वे नायक हुए, जिसे भारतीय समाज ने अद्‌भुत और घृणित समझा था। उन्होंने सरल, सहज और आम बोल-चाल की भाषा का उपयोग किया और अपने प्रगतिशील विचारों को दृढ़ता से तर्क देते हुए समाज के सामने प्रस्तुत किया। १९३६ में प्रगतिशील लेखक संघ के पहले सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए उन्होंने कहा कि लेखक स्वभाव से प्रगतिशील होता है और जो ऐसा नहीं है वह लेखक नहीं है। प्रेमचंद हिन्दी साहित्य के युग प्रवर्तक हैं। उन्होंने हिन्दी कहानी में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की एक नई परंपरा शुरू की।

प्रेमचंद के जीवन संबंधी विवाद

इतने महान रचनाकार होने के बावजूद प्रेमचंद का जीवन आरोपों से मुक्त नहीं है। प्रेमचंद के अध्येता कमलकिशोर गोयनका ने अपनी पुस्तक प्रेमचंद, अध्ययन की नई दिशाएं' में प्रेमचंद के जीवन पर कुछ आरोप लगाकर उनके साहित्य का महत्व कम करने की कोशिश की। प्रेमचंद पर लगे मुख्य आरोप हैं- प्रेमचंद ने अपनी पहली पत्नी को बिना वजह छोड़ा और दूसरे विवाह के बाद भी उनके अन्य किसी महिला से संबंध रहे (जैसा कि शिवरानी देवी ने 'प्रेमचंद घर में' में उद्धृत किया है), प्रेमचंद ने 'जागरण विवाद' में विनोदशंकर व्यास के साथ धोखा किया, प्रेमचंद ने अपनी प्रेस के वरिष्ठ कर्मचारी प्रवासीलाल वर्मा के साथ धोखाधड़ी की, प्रेमचंद की प्रेस में मजदूरों ने हड़ताल की, प्रेमचंद ने अपनी बेटी के बीमार होने पर झाड़-फूंक का सहारा लिया आदि।

कमलकिशोर गोयनका द्वारा लगाए गए ये आरोप प्रेमचंद के जीवन का एक पक्ष जरूर हमारे सामने लाते हैं जिसमें उनकी इंसानी कमजोरियां जाहिर होती हैं लेकिन उनके व्यापक साहित्य के मूल्यांकन पर इन आरोपों का कोई असर नहीं पड़ पाया है। प्रेमचंद को लोग आज उनकी काबिलियत की वजह से याद करते हैं जो विवादों को बहुत कम जगह देती है।

मुंशी के विषय में विवाद

प्रेमचंद को प्राय: 'मुंशी प्रेमचंद' के नाम से जाना जाता है। प्रेमचंद के नाम के साथ 'मुंशी' कब और कैसे जुड़ गया? इस विषय में अधिकांश लोग यही मान लेते हैं कि प्रारम्भ में प्रेमचंद अध्यापक रहे। अध्यापकों को प्राय: उस समय मुंशी जी कहा जाता था। इसके अतिरिक्त कायस्थों के नाम के पहले सम्मान स्वरूप 'मुंशी' शब्द लगाने की परम्परा रही है। संभवत: प्रेमचंद जी के नाम के साथ मुंशी शब्द जुड़कर रूढ़ हो गया। प्रोफेसर शुकदेव सिंह के अनुसार प्रेमचंद जी ने अपने नाम के आगे 'मुंशी' शब्द का प्रयोग स्वयं कभी नहीं किया। उनका यह भी मानना है कि मुंशी शब्द सम्मान सूचक है, जिसे प्रेमचंद के प्रशंसकों ने कभी लगा दिया होगा। यह तथ्य अनुमान पर आधारित है। लेकिन

प्रेमचंद के नाम के साथ मुंशी विशेषण जुड़ने का प्रामाणिक कारण यह है कि 'हंस' नामक पत्र प्रेमचंद एवं 'कन्हैयालाल मुंशी' के सह संपादन में निकलता था। जिसकी कुछ प्रतियों पर कन्हैयालाल मुंशी का पूरा नाम न छपकर मात्र 'मुंशी' छपा रहता था साथ ही प्रेमचंद का नाम इस प्रकार छपा होता था- (हंस की प्रतियों पर देखा जा सकता है)।

संपादक

मुंशी प्रेमचंद

हंस के संपादक प्रेमचंद तथा कन्हैयालाल मुंशी थे। परन्तु कालातर में पाठकों ने मुंशी तथा 'प्रेमचन्द' को एक समझ लिया और 'प्रेमचंद'- मुंशी प्रेमचंद बन गए। यह स्वाभाविक भी है। सामान्य पाठक प्राय लेखक की कृतियों को पढ़ता है, नाम की सूक्ष्मता को नहीं देखा करता। आज प्रेमचंद का मुंशी अलंकरण इतना रूढ़ हो गया है कि मात्र मुंशी से ही प्रेमचंद का बोध हो जाता है तथा 'मुंशी' न कहने से प्रेमचंद का नाम अधूरा-अधूरा सा लगता है।

विरासत

प्रेमचंद ने अपनी कला के शिखर पर पहुँचने के लिए अनेक प्रयोग किए। जिस युग में प्रेमचंद ने कलम उठाई थी, उस समय उनके पीछे ऐसी कोई ठोस विरासत नहीं थी और न ही विचार और प्रगतिशीलता का कोई मॉडल ही उनके सामने था। लेकिन होते-होते उन्होंने गोदान जैसे कालजयी उपन्यास की रचना की जो कि एक आधुनिक क्लासिक माना जाता है। उन्होंने चीजों को खुद गढ़ा और खुद आकार दिया। जब भारत का स्वतंत्रता आंदोलन चल रहा था तब उन्होंने कथा साहित्य द्वारा हिंदी और उर्दू दोनों भाषाओं को जो अभिव्यक्ति दी उसने सियासी सरगर्मी को, जोश को और आंदोलन को सभी को उभारा और उसे ताकतवर बनाया और इससे उनका लेखन भी ताकतवर होता गया। प्रेमचंद इस अर्थ में निश्चित रूप से हिंदी के पहले प्रगतिशील लेखक कहे जा सकते हैं। १९३६ में उन्होंने प्रगतिशील लेखक संघ के पहले सम्मेलन को सभापति के रूप में संबोधन किया था। उनका यही भाषण प्रगतिशील आदोलन के घोषणा पत्र का आधार बना। प्रेमचंद ने हिन्दी में कहानी की एक परंपरा को जन्म दिया और एक पूरी पीढ़ी उनके कदमों पर आगे बढ़ी ५०-६० के दशक में रेणु, नागार्जुन और इनके बाद श्रीनाथ सिंह ने ग्रामीण परिवेश की कहानियाँ लिखी है, वो एक तरह से प्रेमचंद की परंपरा के तारतम्य में आती है।

प्रेमचंद एक क्रांतिकारी रचनाकार थे, उन्होंने न केवल देशभक्ति बल्कि समाज में व्याप्त अनेक कुरीतियों को देखा और उनको कहानी के माध्यम से पहली बार लोगों के समक्ष रखा। उन्होंने उस समय के समाज की जो भी समस्याएँ थीं उन सभी को चित्रित करने की शुरुआत कर दी थी। उसमें दलित भी आते हैं, नारी भी आती हैं। ये सभी विषय आगे चलकर हिन्दी साहित्य के बड़े विमर्श बने। प्रेमचंद हिन्दी सिनेमा के सबसे अधिक लोकप्रिय साहित्यकारों में से हैं। सत्यजित राय ने उनकी दो कहानियों पर यादगार फिल्में बनाई। १९७७ में शतरंज के खिलाड़ी और १९८१ में सद्गति। उनके देहांत के दो वर्षों बाद के सुब्रमण्यम ने १९३८ में सेवासदन उपन्यास पर फिल्म बनाई जिसमें सुब्बालक्ष्मी ने मुख्य भूमिका निभाई थी। १९७७ में मृणाल सेन ने प्रेमचंद की कहानी कफन पर आधारित ओका ऊरी कथा नाम से एक तेलुगू फिल्म बनाई जिसको सर्वश्रेष्ठ तेलुगू फिल्म का राष्ट्रीय पुरस्कार भी मिला। १९६३ में गोदान और १९६६ में गबन उपन्यास पर लोकप्रिय फिल्में बनीं। १९८० में उनके उपन्यास पर बना टीवी धारावाहिक निर्मला भी बहुत लोकप्रिय हुआ था।

हिंदी साहित्य व आलोचना में प्रेमचंद को प्रतिष्ठित करने का श्रेय डॉ. रामविलास शर्मा को दिया जाता है परन्तु यह एक गलत धारणा है। दरअसल एक कहानीकार और उपन्यासकार के रूप में प्रेमचंद की लोकप्रियता उनके जीवनकाल में ही इतनी ज्यादा थी कि उन्हें ''उपन्यास सम्राट'' कहा जाने लगा था। प्रेमचंद को स्थापित करने वाले उनके पाठक थे आलोचक नहीं। प्रेमचंद के पत्रों को सहजने का काम अमृतराय और मदनगोपाल ने किया। प्रेमचंद पर हुए नए अध्ययनों में कमलकिशोर बोयनका और डॉ. धर्मवीर का नाम उल्लेखनीय है। कमलकिशोर गोयनका ने प्रेमचंद के जीवन के कमजार पक्षों को उजागर करने के साथ-साथ प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य (दो भाग) व 'प्रेमचंद विश्वकोश' (दो भाग) का संपादन भी किया है। डॉ. धर्मवीर ने दलित दृष्टि से प्रेमचंद साहित्य का मूल्यांकन करते हुए प्रेमचंद : सामंत का मुंशी व प्रेमचंद की नीली आंखें नाम से पुस्तकें लिखीं।

पुरस्कार व सम्मान

प्रेमचंद की स्मृति में भारतीय डाकतार विभाग की ओर से ३१ जुलाई १९८० को उनकी जन्मशती के अवसर पर ३० पैसे मूल्य का एक डाक टिकट जारी किया गया, गोरखपुर के जिस स्कूल में वे शिक्षक थे, वहाँ प्रेमचंद साहित्य संस्थान की स्थापना की गई है। इसके बरामदे में एक भित्तिलेख है जिसका चित्र दांहिनी ओर दिया गया है। यहाँ उनसे सबंधित वस्तुओं का एक संग्रहालय भी है। जहाँ उनकी एक वक्षप्रतिमा भी है। प्रेमचंद की १२५वीं सालगिरह पर सरकार की ओर से घोषणा की गई कि वाराणसी से लगे इस गाँव में प्रेमचंद के नाम पर एक स्मारक तथा शोध एवं अध्ययन संस्थान बनाया जाएगा। प्रेमचंद की पत्नी शिवरानी देवी ने प्रेमचंद घर में नाम से उनकी जीवनी लिखी और उनके व्यक्तित्व के उस हिस्से को उजागर किया है जिससे लोग अनभिज्ञ थे। यह पुस्तक १९४४ में पहली बार प्रकाशित हुई थी, लेकिन साहित्य के क्षेत्र में इसके महत्व का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि इस दुबारा २००५ में संशोधित करके प्रकाशित की गई, इस काम को उनके ही नाती प्रबोध कुमार ने अंजाम दिया। इसका अंग्रेजी व हसन मंजर का किया हुआ उर्दू अनुवाद भी प्रकाशित हुआ। उनके ही बेटे अमृतराय ने कलम का सिपाही नाम से पिता की जीवनी लिखी है। उनकी सभी पुस्तकों के अंग्रेजी व उर्दू रूपांतर तो हुए ही हैं, चीनी, रूसी आदि अनेक विदेशी भाषाओं में उनकी कहानियां लोकप्रिय हुई हैं।

स्वयं आकलन हेतु प्रश्न

प्र. 1 प्रेमचन्द के जन्म कब हुआ ?

प्र. 2 प्रेमचन्द के गांव का नाम बताइए ?

प्र. 3 प्रेमचन्द उर्दू में किस नाम से लिखते थे ?

13.4 सारांश

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि प्रेमचंद का मूल नाम घनपत राय था और उनका जन्म 31 जुलाई 1880 को वाराणसी के नजदीक लमही गांव में हुआ था। प्रेमचंद ने अपनी लेखनी द्वारा हिंदी साहित्य को एक नवीन दिशा प्रदान की। प्रेमचंद को उपन्यास सम्राट एवं कथा सम्राट के नाम से भी जाना जाता है। प्रेमचंद अपने जीवन के आरंभिक दौर में उर्दू में नवाबराय के नाम से लिखते थे।

13.5 कठिन शब्दावली

भीरू – डरपोक

महाजन – साहूकार

13.6 स्वयं आकलन प्रकनों के उत्तर

प्र.1 उ. 1880 ई.

प्र.2 उ. लमही ई.

प्र.3 उ. नवाबराय

13.7 संदर्भित पुस्तकें

शिवरानी देवी, प्रेम चंद घर में

रामविलास शर्मा, प्रेमचंद और उनका युग

13.8 सात्रिक प्रश्न

प्र. 1 प्रेमचंद का जीवन परिचय लिखिए।

प्र. 2 प्रेम चंद की साहित्यिक विधाओं पर प्रकाश डालिए।

*****

इकाई-14
गोदान उपन्यास का सार एवं उद्देश्य

संरचना

14.1 भूमिका

14.2 उद्देश्य

14.3 गोदान उपन्यास का सार

14.3.1 गोदान उपन्यास का उद्देश्य

स्वयं आकलन प्रश्न

14.4 सारांश

14.5 कठिन शब्दावली

14.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

14.7 संदर्भित पुस्तकें

14.8 सात्रिक प्रश्न

इकाई–14

गोदान उपन्यास का सार एवं उद्देश्य

14.1 भूमिका

इकाई तेरह में हमने प्रेमचंद के जीवन एवं सृजित साहित्य का अध्ययन किया। इकाई चौदह के अंतर्गत हम प्रेमचंद कृत 'गोदान' उपन्यास के सार एवं उद्देश्य का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

14.2 उद्देश्य

इकाई चौदह का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि

1. गोदान उपन्यास का सार क्या है ?
2. गोदान उपन्यास का उद्देश्य क्या है ?

14.3 गोदान उपन्यास का सार

अवध प्रात: में पांच मिल के फासले पर दो गाँव हैं सेमरी और बेलारी। होरी बेलारी में रहता है और राय साहब अमर पाल सिंह सेमरी में रहते हैं। खन्ना, मालती और डॉ. मेहता लखनऊ में रहते हैं।

गोदान का आरंभ ग्रामीण परिवेश से होता है धनिया के मना करने पर भी होरी रायसाहब से मिलने बेलारी से सेमरी जाता है। उसे लगता है कि रायसाहब से मिलते रहने से कुछ सामाजिक मर्यादा बढ़ जाती है। वह कहता है, 'यह इसी मिलते–जुलते रहने का परसाद है कि अब तब जान बची हुई है।' वह समझता है कि इनके पाँवों तले अपनी गर्दन दबी हुई है। इसलिए उन पाँवों के सहलाने में ही कुशल है।

रास्ते में उसे पड़ोस के गाँव का ग्वाला भोला मिलता है। उसकी गायों को देखकर होरी के मन में एक गाय रखने की लालसा उत्पन्न होती है। वह विधुर भोला के मन में फिर से सगाई करा देने का लालच देता है। भोला उसे अस्सी रुपये की गाय उधार पर ले जाने का आग्रह करता है और अपने पास भूसे की कमी की बात करता है होरी अभाव में पड़े आदमी से गाय ले लेने को उचित न मानकर फिर ले लूंगा। कहकर गाय लेने से मना कर देता है, पर भूसा देने का वायदा कर सेमरी में पहुंचता है।

रायसाहब अपनी असुविधाओं को बता कर चाहते हैं कि टैक्स की वसूली में होरी उनकी सहायता करे। होरी उनकी बातों में आ जाता है। इस समय एक आदमी आकर राय साहब को बताता है कि मजदूर बेगार करने से मना कर रहे हैं। यह सुनकर राय साहब आग बबूला हो जाते हैं और उन्हें हंटर से ठीक करने की कह उठकर चले जाते हैं।

घर पर पहुँचकर होरी रायसाहब की तारीफ करता है तो बेटा गोबर उन्हें 'रंगा सियार' कहकर उनसे अपनी नफरत जाहिर करता है। होरी बताता है कि उसने भोला को भूसा देने का वचन दिया है। यह सुनकर गोबर और धनिया उस पर बिगडते हैं। होरी जब बताता है कि भोला धनिया की प्रशंसा कर रहा था, तब धनिया कुछ नरम पड़ जाती है। भोला भूसा लेने आता है। धनिया तीन खोंचे भूसा भरवाकर पति और बेटे को उसके घर तक भूसा पहुँचाने को कहती है।

भोला के घर पर उसकी विधवा बेटी झुनिया है। उससे गोबर की मुलाकात होती है। दोनों परस्पर के प्रति आकर्षित हो जाते हैं। भोला होरी से दूसरे दिन गाय ले लेने को कहता है।

दूसरे दिन गोबर भोला के घर से गाय लाता है। झुनिया उसे छोड़ने बेलारी के निकट तक आती है। फिर मिलने का वायदा करके लौट जाती है।

गाय के आते ही होरी के घर में आनन्द की लहर उमड़ती है। गाय का भव्य स्वागत किया जाता है। गाय के लिए आँगन में नाँद गाड़ी जाती है। गाँववाले आकर गाय के लक्षण भी और होरी की खुशकिस्मती की तारीफ करते हैं। केवल अलग्योझा हो गए उसके दो भाई हीरा और शोभा नहीं आते। इससे होरा को बड़ा दु:ख होता है। वह जब हीरा को बुलाने जाता है तो सुनता है कि हीरा शोभा के सामने होरी की निंदा कर रहा था। होरी धनिया को यह बताता है। धनिया यह सुनकर उससे झगड़ती है।

सेमरी में राय साहब के घर पर उत्सव है। उसमें धनुषयज्ञ नाटक में होरी जनक के माली का अभिनय करता है। उत्सव के लिए होरी को पांच रुपये नजराना देना है। राय साहब के मेहमानों में गाँव और शहर के लोग हैं। शहर के मेहमान हैं बिजली पत्र के संपादक प. ओंकारनाथ, वकील तथा दलाल मि. तंखा, दर्शनशास्त्र के प्रोफसर डॉ मेहता, मिल मालिक मि. खन्ना, उनकी धर्मपत्नी कामिनी (गोविन्दी) डाक्टर भिम मालती और मिर्जा खुर्शीद।

वहाँ बातचीत में रायसाहब जमींदारी प्रथा के शोषण की निंदा करते हैं। डॉ मेहता और रायसाहब की कथनी और करनी के अंतर के प्रति व्यंग्य करते हैं। भोजन के समय मास-मदिरा का स्थान छोड़कर ओंकारनाथ अलग से फलाहार करना चाहते है। पर मिस मालती अपनी बातों से ओंकारनाथ को भुलावे में डालकर शराब पिलवा देती है और वायदे के मुताबिक एक हजार रुपये इनाम लेती है। उसी समय पठान के वेश में डॉ महता आकर रुपये मांगते हैं और धमकी देते हैं कि रुपये न मिले तो वे गोली चला देंगे । अंत में होरी वहाँ प्रवेश करके पठान को गिराकर उसकी मूँछे उखाड़ लेता है। पठान के वेश में आए मेहता की नाटकबाजी वहीं खत्म हो जाती है। उसी समय सब शिकार खेलने जाने का कार्यक्रम बनाते हैं। तीन टोलियाँ बनती है। पहली टोली में मेहता और मालती जाते हैं। मालती मेहता के प्रति आकर्षित है, पर मेहता को इस ओर कोई आकर्षण नहीं है। महता को शिकार की चिड़िया पानी से लाकर एक जंगली लड़की देती है और दोनों को अपने घर तक ले जाकर मधुर व्यवहार से खुश कर देती है। इससे मालती ईर्ष्या करती है तो यह मेहता की नजर में गिर जाती है। दूसरी टोली के रायसाहब और खन्ना के बीच मिल के शेयर के बारे में बातचीत होती है। रायसाहब शेयर खरीदने की बात टाल देते हैं। तीसरी टोली में तंखा और मिर्जा है। मिर्जा एक हिरन का शिकार करते हैं। हिरन को एक ग्रामीण युवक को देते हैं। सब मिलकर उस युवक के गाँव में जाते हैं। खा-पीकर खुशी से सारा दिन वहाँ बिताकर शाम को लौट आते हैं। होरी के घर पर गाय आ जाने से सब खुश थे। इतने में रायसाहब का कारिंदा कहता है कि होरी नोखेराम बाकी लगान न चुकाने वाले खेत में हल नहीं जोत सकेंगे । होरी पैसे का इंतजाम करने के लिए साहूकार झींगुरीसिंह के पास पहुँचता है। झींगुरी सिंह की आँख गाय पर थी। उसने गाय ले लेने का चक्कर चलाया और कर्ज न लेकर लाचार होकर गाय बेचकर लगान चुकाने के लिए वह राजी हो जाता है और धनिया को भी राजी कर लेता है। रात को घर के भीतर उमस होने के कारण वह गाय को बाहर लाकर बांधता है और बीमार शोभा को देखकर लौटते समय गाय के पास हीरा को देखकर ठिठक जाता है। उसी रात को विष दिए जाने से गाय मर जाती है तो होरी धनिया को हीरा पर शक होने की बात बता देता है तो धनिया हीरा को गालियाँ देती है और सारे गाँव में कोहराम मचा देती है। होरी भाई को बचाने के लिए सच को छिपाकर गोबर की झूठी कसम खा लेता है। जाँच पड़ताल करने दरोगा गाँव में आता है। गाँव के मुखिया लोग इस विपत्ति का फायदा उठाने के लिए हीरा पर जुर्माना लगाते हैं। कुर्की से बचने तथा परिवार की इज्जत बचाने होरी, झिंगुरी सिंह से कर्ज लेकर रिश्वत के पैसे लाता है, पर धनिया के कारण वह दारोगा को मिल नहीं पाता। दारोगा मुखिया लोगों के घर की तलाशी लेने की धमकी देकर उनसे भी रिश्वत के पैसे वसूल करके चला जाता है।

गोहत्या करके पाप के डर से हीरां घर से भाग जाता है। होरी हीरा की पत्नी पुनिया का खेत संभालता है। बीच में एक महीने तक बीमार भी पड़ जाता है। एक रात होरी कड़कती सर्दी में खेत की रखवाली कर रहा था कि धनिया वहाँ पहुँच जाती है और बताती है कि पांच महीने का गर्भ लेकर झुनिया घर में आ गई है। होरी पहले उसे निकाल देने की बात तो करता है, बाद में धनिया के समझाने पर उसे अपने घर में रहने का आश्वासन देता है। अब फिर से पंचायत को होरी का गला दबाने का मौका मिल जाता है। झुनिया के एक लड़का होता है। बिरादरी में ऐसे पाप के लिए गाँव की पंचायत होरी पर सौ रुपए नकद और तीस मन अनाज का डाँड लगाती है। धनिया पंचायत पर बहुत फुफकारती है पर होरी झिंगुरी सिंह के पास मकान रेहन पर रखकर अस्सी रुपये लाता है और डाँड चुकांता है।

गोबर-झुनिया को चुपके से अपने घर में छोड़कर लोकलज्जा के भय से लखनऊ शहर भाग जाता है। वह मिर्जा खुर्शीद के यहाँ महीने के पंद्रह रुपये वेतन पर नौकरी करता है उनकी दी कोठरी में रहता है।

डाँड में सारा अनाज दे देने के बाद होरी के पास कुछ नहीं बचता। इसी समय पुनिया उसकी सहायता करती है। वर्षा के अभाव से उसकी ईख सूख जाती है। भोला गाय के रुपये लेना चाहता है। होरी रुपये दे नहीं पाता। भोला होरी के बैल खोलकर ले जाता है। गाँववाले इसका विरोध करते हैं, पर धर्म के भय से मर्यादावादी और ईमानदार होरी विवश होकर इसकी अनुमति दे देता है।

मालती राजनीतिक और सामाजिक कार्यों में व्यस्त रहने वाली महिला है। उसके प्रत्यत्न से मेहता वीमेन्स लीग में भाषण देने के दौरान महिलाओं को समान अधिकार की मांग छोड़कर त्याग, दया, क्षमा अपनाने का सुझाव देते हैं, जो गृहस्थ जीवन के लिए निहायत जरूरी है।

मालती मेहता से सहमत हाती है। वह मेहता को अपने घर पर खाने पर बुलाती है। उसी समय मेहता आरोप लगाते हैं कि उसी के कारण मि. खन्ना, मिसेज खन्ना से अच्छा बर्ताव नहीं करते। यह सुनकर मालती बिगड़ जाती है और अपने घर चली जाती है।

रायसाहब को पता चल जाता है कि होरी से वसूल किए गए डाँड के सारे के सारे पैसे गाँव के मुखिया लोग खा गए। वे नोखेराम से रुपये देने को कहते हैं तो चारों महाजन 'बिजली' के संपादक ओंकारनाथ को सूचना दे देते हैं कि रायसाहब आसामियों से जुर्माना वसूल करते हैं। ओंकारनाथ रायसाहब को बताते हैं कि वे अपनी पत्रिका में ऐसी सनसनीखेज खबर छापने जा रहे हैं। रायसाहब सौ ग्राहकों का चंदा रिश्वत के रूप में भरकर किसी तरह इसे छापने से रोक लेते हैं।

जब गाँव में बुवाई शुरू हो जाती है तब होरी के पास बैल नहीं है। होरी की लाचारी का फायदा उठाकर दातादीन होरी से साझे में बुवाई करने का प्रस्ताव देकर होरी को मजदूर के स्तर तक ले जाता है।

उधर दातादीन का बेटा, मातादीन झुनिया को प्रेम-पाश में फंसाने के लिए प्रयास करता है। लेकिन बीच में सोना पहुँच जाने से मामला गड़बड़ होने से बच जाता है। होरी ईख बेचने जाता है तो मिल मालिक से मिलकर महाजन सारा रुपया कर्ज के लिए वसूल कर लेते हैं।

मि. खन्ना और उसकी पत्नी गोविंदी के स्वभाव में आकाश पाताल का अंतर है। गोविंदी सादा जीवन पसन्द करती है तो मि. खत्रा विलासमय जीवन। एक बार पति-पत्नी में बेटे के इलाज के लिए भिन्न-भिन्न डाक्टरों को बुलाने के मतातर पर झगड़ा हो जाता है। क्रोध से गोविंदी पार्क में चली जाती है। वहीं उसकी मुलाकात मेहता से होती है। मेहता उसकी प्रशंसा कर के उसे समझाबुझा कर घर लौटा लाते हैं। होरी दातादीन की मजूरी करने लगता है।

होरी दातादीन की मजदूरी करने लगता है। ऊख काटते समय कड़ी मेहनत करने के कारण वह बेहोश हो जाता है। उधरं गोबर, अब नौकरी छोड़कर खोंचा लगाने के काम में लग जाता है। उसके पास दो पैसे हो जाते हैं। वह एक दिन गांव में पहुँचता है। वह सभी के लिए सामान लाता है। गाँव में गोबर महाजनों की बड़ी बेइज्जती करता है। होली के अवसर पर गाँव के मुखिया लोगों की नकल करके अभिनय किया जाता है। फलस्वरूप गोबर सभी महाजनों के क्रोध का शिकार बन जाता है। जगी को शहर में नौकरी कराने का लोभ दिखाकर उसे प्रभावित कर देते हैं। वह भोला को मना कर उससे अपने बैल ले आता है। दातादीन को तीस रुपये उधार के लिए सत्तर रुपये देना चाहता है। नोखेराम को लगान वसूल करके रसीद न देने पर उसे अदालत की धमकी देता है। झुनिया को फुसलाकर शहर जाते समय माँ से झगड़ा, हो जाता है। माँ के पांव में सिर न झुकाकर बिलकुल उद्दंड और स्वार्थी बनकर बालबच्चों को लेकर शहर चला जाता है।

राय साहब की कई समस्याएँ थीं। उनको कन्या का विवाह करना था, अदालत में एक मुकदमा करना था और सिर पर चुनाव भी थे। कुंवर दिग्विजय सिंह के साथ शादी तय हुई थी। राजा साहब के साथ चुनाव लड़ना था। पैसों की कमी थी इसीलिए वे तंखा के पास उधार मांगने के लिए जाते हैं। वे मना करते हैं तो वे खन्ना के पास जाते हैं। खन्ना पहले आनाकानी करके बाद में कमीशन लेकर पैसों का इंतजाम कर सकने की बात बताते हैं। बातचीत के दौरान

मेहता महिलाओं की व्यायामशाला के लिए चंदा मांगने पहुँचते हैं। खन्ना कुछ देने से मना करते हैं। गोविंदी को भी व्यायामशाला की नीव रखने के लिए मना करते हैं। रायसाहब पांच हजार लिख देते हैं। फिर मालती पहुँचती है तो खत्रा से एक हजार का चेक लिखवा लेती है।

मातादीन की रखैल सिलिया अनाज के ढेर से कोई सेर भर अनाज दुलारी सहुआइन को दे देती है तो मातादीन उसे धिक्कारता है। निकल जाने को कहता है। सिलिया दु:खी होती है। सिलिया के बाप हरखू के कहने पर उसके साथी मातादीन के मुँह पर हड्डी डालकर उसे जातिभ्रष्ट कर देते हैं। धनिया सिलिया को अपने घर पर रख लेती है। सिलिया मजदूरी करके गुजरबसर करती है। सोना सत्रह साल की हो गई थी उसके विवाह के लिए पैसों की जरूरत थी। सोना को मालूम हुआ कि पिता विवाह के लिए दुलारी से दो सौ रुपये लाएँगे। सोना सिलिया को भावी पति मथुरा के पास भेजती है। ससुरालवाले बिना दहेज के बहू लेने को तैयार हो गए। लेकिन धनिया अपनी मर्यादा बचाने के लिए दहेज देना चाहती है।

भोला एक जवान विधवा नोहरी से विवाह करता है। नोहरी के साथ बहुओं से नहीं पटती। पुत्र कामना भोला को घर से भगा देती है। नोखेराम नोहरी की लालसा से भोला को नौकर रख लेता है। नोहरी गाँव की रानी की जाती का है। लाला पटेश्वरी साहूकार मंगरू शाह को भड़काकर होरी की सारी ईख नीलाम कर देता है। इससे, उमाही की उम्मीद न होने से दुलारी होरी को शादी के लिए दो सौ रुपये नहीं देती है। इतने में सहानुभूति दिखाकर नोहरी होरी को दो सौ रुपये देकर अपनी दयाशीलता का परिचय देती है।

शहर में परिवार लाकर गोबर देखता है कि जहाँ वह खोंचा लगाता था, वहीं दूसरा बैठने लगा है। उसको कारोबार में घाटा हुवा तो बहू मिल में नौकरी कर लेता है। झुनिया को गोबर की कामुकता पसंद नहीं आती। गोबर का बेटा मर जाता है। झुनिया गर्भवती है। गोबर नशा करने लगा है। झुनिया को पीटता है, गालियाँ देता है। चुहिया की सहायता से झुनिया एक बेटे को जन्म देती है। मिल में झगड़ा हो जाने से गोबर घायल हो जाता है। मिल गोबर की सेवा करने के दौरान पति पत्नी में फिर सबंध स्वाभाविक हो जाता है।

मातादीन नोहरी के प्रति फिर से अर्मित होता है। वह सिलिया के लिए छोटी को दो रुपये देता है। रुपये पाकर सिलिया खुश होती है। यह समाचार देने सोना के ससुराल पहुँचती है। मथुरा नोहरी से प्रेम-निवेदन करता है। दोनों पास, पास आ जाते हैं तो सोना की आवाज से पीछे हट जाते हैं। सोना सिलिया को बहुत फटकारती है।

मिल में आग लग गई थी। मिल में नए मजदूर ठीक से काम नहीं कर पा रहे थे। इसलिए पुराने मजदूर ले लिए जाते हैं। खन्ना-गोविंदी का मनमुटाव मिट जाता है। मेहता से प्रेरित होकर मालती सेवा-व्रत में लगी रहती है। एक दिन मेहता और मालती होरी के गांव में पहुँचकर लोगों से मिलते हैं। सहायता करते हैं। राय साहब की लड़की की शादी हो जाती है। मुकदमे और चुनाव में भी जीत होती है। वे लोग होम मेंबर भी बन ज्ञाते हैं। राजा साहब रायसाहब के पुत्र रुद्रप्रताप से अपनी बेटी के विवाह का प्रस्ताव भेजते हैं पर रुद्रप्रताप मालती की बहन सरोज से विवाह करके इंग्लैंड चला जाता है। फिर रायसाहब की बेटी और दामाद में विवाह विच्छेद हो जाता है। मालती देखती है कि दूसरों की सेवा करने के कारण ऊँची वेतन के बावजूद उन पर कर्ज है। कुर्की भी आई है। तब मालती मेहता को अपने घर पर ले आती है। उनकी सहायता करती है। मालती गोबर को माली रख लेती है। उसके बेटे की चिकित्सा और सेवा भी करती है। मालती मेहता से विवाह करना अस्वीकार करके मित्र बनकर रहने को पसंद करती है।

मातादीन सिलिया के बालक को प्यार करता है। वह निमोनिया में मर जाता है। मातादीन सिलिया के प्रति आकर्षित होता है। सारा जाति-बंधन तोड़कर उसके साथ रहता है।

होरी की आर्थिक दशा दिनोंदिन गिरती जाती है । तीन साल तक लगान न चुकाने से नोखेराम बेदखली का दावा करता है। मातादीन होरी कों सुझाव देता है कि अधेड़ रामसेवक मेहता से रूपा की शादी करके बदले में कुछ रुपए ले लें और खेती करे। होरी यह सुनकर बड़ा दु:खी होता है पर अंत में होरी और धनिया राजी हो जाते हैं। गीबर को शादी में आने की खबर दी जाती है। गोबर झुनिया को लेकर गाँव में पहुँचता है। रूपा की शादी होती है। मालती भी शादी में शरीक होती है। गोबर गाँव में झुनिया को छोड़कर लखनऊ चलाता है।

रूपा ससुराल में समृद्धि देखकर पिता की गाय की लालसा की बात सोचकर दु:खी होती है। मैके जाते समय वह एक गाय ले जाने की बात सोचती है। होरी पोते मंगल के लिए गाय लेना चाहता था। इसलिए वह कंकड़ खोदने की मजदूरी करता है। रात को बैठकर धनिया के साथ सुतली कातता है। एक दिन हीरा आकर पहुँचता है और होरी से माफी मांगता है। होरी खुश हो जाता है। होरी कंकड़ खोदते समय दोपहर की छुट्टी के समय लेट जाता है उसको कै होती है। उसे लू लग जाती है।

धनिया भाग कर आती हैं। सब इकट्ठे हो जाते हैं। शोभा और हीरा होरी को घर पर ले गए। होरी की जबान बंद हो गई । धनिला घरेलू उपचार करती है। सब बेकार जाता है। हीरा गो-दान करने को कहता है। दूसरे लोग भी यही कहते हैं। धनिया सुतली बेचकर रखे बीस आने पैसे पति के ठंडे हाथ में रखकर ब्राह्मण दातादीन से, बोलती है- महाराज घर में न गाय है न बछिया, न पैसा। यही इनका गोदान है।

14.3.1 गोदान उपन्यास का उद्देश्य

हम साहित्य को मनोरंजन और विलासिता की वस्तु नहीं समझते। हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा, जिसमें चित्रण की स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाई का प्रकाश हो, जो हममें गति संघर्ष और बेचेनी पैदा करे सुलावे नहीं।

प्रेमचन्द जी की दृष्टि बहुत साफ थी। प्रगतिशीलता उनकी रग-रग में समायी थी। धन को उन्होंने बहुत महत्त्व नहीं दिया। साहित्य सेवा में ही स्वयं को आजीवन लगाये रहे और भारतीय समाज को एक से एक कालजयी कृतियाँ प्रदान कर सके। इन कृतियों का सुजन सोद्देश्य किया गया है।

सुषुप्तावस्था में पड़े भारतीय जनमानस में नवीन चेतना का संचार तथा सामाजिक विषमता एवं विरूपता को दूर करने का यत्न ही उपन्यासकार एवं कहानीकार प्रेमचन्दजी का मुख्य उद्देश्य था। आलोच्य कृति गोदान उनका सर्वाधिक प्रौढ़ उपन्यास है। आलोचकों की दृष्टि भी इसी कृति पर सर्वाधिक बार टिकी है। उनके द्वारा इसमें उठायी गयी समस्याओं का अनुसंधान तथा प्रस्तुत महाकाव्यात्मक औपन्यासिक कृति के सृजन के उद्देश्यों पर प्रकाश भी डाला गया है। प्रेमचन्द जी के उपन्यास गोदान के उद्देश्य निम्न है -

भारतीय कृषक के विसंगतिपूर्ण जीवन की अभिव्यंजना

गोदान में दो कथाएँ है, पहली, ग्रामीण जीवन की कथा तथा दूसरी शहरी जीवन की कथा। इन दोनों कथाओं के अलग-अलग पात्र है। पूर उपन्यास में एकमात्र पात्र रायसाहब ग्रामीण और शहरी कथा के बीच की कड़ी का काम करते हैं। वस्तुत: ग्रामीण जीवन में जी रहे पात्रों की दशा बहुत ही दयनीय है। ग्रामीण परिवेश की पूरी में मूलत: किसान ही है। जिसका शोषण सेठ-साहूकार और जमीदार करते हैं और परिणामत: वह मजदूर बनने को विवश है। कृषकों की दयनीय दशा का मूल कारण उनकी अज्ञानता ही है। उनकी रूढ़िवादिता, भाग्यवादिता तथा अज्ञानता उन्हें प्रगति पथ पर चलने से रोकती है। गोबर को समझाता हुआ होरी कहता है कि ''छोटे-बड़े भगवान् के घर से बन कर आते हैं। सम्पत्ति बड़ी तपस्या से मिलती है। उन्होंने पूर्वजन्म में जैसे कर्म किये हैं उनका आनन्द भोग रहे हैं। हमने कुछ नहीं संचा तो भोगे क्या? अज्ञानता में जी रहे भारतीय कृषक की यह सोच है। लेकिन होरी के उक्त कथन का खण्डन प्रेमचन्दजी उसी के पुत्र गोबर से करवाते हैं और इस प्रकार तत्कालीन कृषकों के सामने गोबर जैसे प्रगतिशील युवक का चरित्र प्रस्तुत करते हैं।

गोदान में कृषक जीवन की त्रासदी को दर्शाया गया है। यह त्रासदी उसकी व्यक्तिगत खामियों के कारण है। वह अपने दूसरे किसान भाई को देखकर ईर्ष्या करता है, रूढ़ियों में जकड़ा हुआ है। भोला स्पष्टत: कहता है कि- ''कौन कहता है कि हम तुम आदमी हैं। हममें आदमियत कहाँ। आदमी वह है जिसके पास धन है, अख्तियार है. इल्म है। हम लोग तो बैल हैं और खेत में जुतने के लिए पैदा हुए है। उस पर एक दूसरे को देख नहीं सकते। एकता का नाम नहीं। एक किसान दूसरे के खेत पर न चढ़े तो कोई जाफा कैसे करे, प्रेम तो संसार से उठ गया।''

सामाजिक शोषकों का यथार्थ चित्रण

गोदान उपन्यास की कथावस्तु शोषणकारी शक्तियों की स्थिति को अपने में समेटे है। प्रेमचन्दजी इस स्थिति का मार्मिक चित्रण यथार्थ के धरातल पर करते है। शोषणकारी शक्तियों के विविध रूप हैं। वस्तुतः इनका एक जाल है, जिसमें उलझकर किसान अपने को असहाय महसूस करने लगता है। जहाँ एक तरफ छोटे स्तर पर महाजन, साहूकार, पटवारी, कारिन्दा, कारकुन तथा अन्य छोटे कर्मचारी किसानों का शोषण करते हैं, वहीं दूसरी तरफ समाज के तथाकथित गणमान्य लोग जैसे पुरोहित, जमींदार, थानेदार तथा गाँव के मुखिया भी इन किसानों का दोनों हाथों से गला दबाने में नहीं चूकते। तत्कालीन किसान की दयनीय दशा का चित्रांकन होरी के निम्न कथन से हो जाता है। कथन द्रष्टव्य है ''उसी की चिंता तो मारे डालती है, दादा। अनाज तो सब का सब खलिहान में ही तुल गया। जमींदार ने अपना लिया, महाजन ने अपना लिया। मेरे लिए पाँच सेर अनाज बच रहा। जमींदार तो एक है, पर महाजन तीन तीन है। सहुआइन अलग और मंगरू अलग और दातादीन पण्डित अलग। किसी का भी ब्याज पूरा न चुका। जमींदार के भी आधे रुपये बाकी पड़ गये। सहुआइन से फिर रुपये उधार लिये तो काम चला। सब तरह से किफायत करके देख लिया भैया, कुछ नहीं होता। हमारा जन्म इसीलिए हुआ है कि अपना रक्त बहाएँ और बड़ों का घर भरें। मूल का दुगुना सूद भर चुका पर मूल ज्यों का त्यों सिर पर सवार है।''

समाजवादी व्यवस्था की स्थापना पर बल

प्रेमचन्दजी प्रगतिवादी विचारधारा से ओत प्रोत थे। समाज में निरन्तर विसंगति का बोल-बाला बढ़ता जा रहा था। अर्थात् अमीर और गरीब के बीच की खाई बढ़ती जा रही थी। अमीर अधिक अमीर तथा गरीब अधिक गरीब होता जा रहा था। उपन्यासकार ने इस स्थिति को देखकर ही अपनी कृति में खन्ना जैसे पूँजीपति का चरित्र गढ़ा, जो मजदूरों का शोषण करके अपनी धन सम्पदा में निरन्तर बढ़ोत्तरी कर रहा था।

प्रेमचन्द जी ने इस प्रतिनिधि पूँजीपति को गर्त में मिलते हुए और मजदूर वर्ग को सचेत होते हुए प्रदर्शित किया है। खन्ना की पत्नी गोविन्दी सात्विक विचारधारा की महिला है वह मिल (फैक्ट्री) के जल जाने पर खन्ना को समझाती है कि ''जीवन का सुख दूसरों को सुखी करने में है, उन्हें लूटने में नहीं। मेरे विचार से तो पीड़क होने से पीड़ित होना कहीं श्रेष्ठ है। धन खोकर अगर हम अपनी आत्मा को पा सके तो यह कोई महँगा सौदा नहीं है।''

क्रान्तिधर्मी नारी-चरित्रों की सृष्टि

प्रेमचन्द की प्रगतिशीलता बहुआयामी थी। वे नारी को परदे की वस्तु नहीं बनाना चाहते थे। उनका तक्ष्य था। तत्कालीन परिप्रेक्ष्य में नारी की भूमिका की तलाश करना। आलोच्य उपन्यास में उनकी तलाश पूरी भी हुई है। उन्होंने धनिया, मिस मालती, गोविंदी, झुनिया, चुहिया, सिलिया सोना तथा रूपा आदि चरित्रों के माध्यम से अपनी प्रगतिशील विचारणारा अपने पाठकों तक संप्रेषित की है। प्रेमचन्द, अपने पाठकों से मिस मालती का परिचय इस प्रकार कराते हैं ''दूसरी महिला जो ऊँची एड़ी का जूता पहने हुए है और जिनकी मुख छवि पर हँसी फूटी पड़ती है मिस मालती हैं। आप इंग्लैण्ड से डाक्टरी पढ़ कर आयी है और अब प्रेक्टिस करती हैं। ताल्लुकेदारों के महलों में उनका प्रवेश है। आप नवयुग की साक्षात प्रतिमा है। गात कोमत पर चपलता कुट कूट कर भरी हई है। झिझक या संकोच का कहीं नाम भी नहीं। मेक-अप में प्रवीण, बला की हाजिर जवाब, पुरुष मनोविज्ञान की अच्छी जानकार, आमोद-प्रमोद को जीवन का तत्व मानने वाली, लुभाने और रिझाने की कला में निपुण। जहाँ आत्मा का स्थान है वहीं प्रदर्शन जहाँ हृदय का स्थान है, वहाँ हाव-भाव, मनोद्वारों पर कठोर निग्रह, जिसमें इच्छा या अभिलाषा का को लोप सा हो गया हो।''

आदर्श समाज की स्थापना

प्रेमचन्द जी गाँधी जी के रामराज्य जैसे समाज की स्थापना करना चाहते थे। एक ऐसे समाज की परिकल्पना उन्होंने की थी, जो अन्याय, अत्याचार शोषण तथा सामाजिक विरूपताओं से रहित हो। लोगों में परस्पर सद्भाव हो। वैसे भी भारतीय दृष्टि बहुत व्यापक है। वह वसुधैव कुटुम्बकम् और 'कृण्ठन्तो विश्वमार्यम्' का उद्घोष करती है। इसी तरह के समाज की परिकल्पना करती हई मालती कहती है कि 'संसार में अन्याय का, आतंक की, भय की दुहाई मची हुई है। अंधविश्वास और स्वार्थ का प्रकोप छाया हुआ है। हम इन सबको समाप्त करने की ओर अग्रसर रहे हैं।''

निष्कर्षत: कह सकते है कि गोदान एक उद्देश्यपरक रचना है। इसमें समस्याओं का उद्घाटन करके लेखक ने उनका निराकरण भी किया है।

स्वयं आकलन हेतु प्रश्न

प्र. 1 प्रेमचंद का पूरा नाम क्या था ?

प्र. 2 प्रेमचंद उर्दू में किस नाम से लिखते थे ?

14.4 सारांश

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि गोदान मुंशी प्रेमचंद द्वारा रचित एक महत्वपूर्ण कृति है। गोदान को कृषक जीवन का महाकाव्य भी कहा जाता है। इस उपन्यास में होरी नाम का एक किसान मेहनत मदजूरी करता है और अपने परिवार का पेट पालता है। लेकिन भाग्य का मारा होरी बहुत से कर्ज के तले दबा होता है।

14.5 कठिन शब्दावली

जोते हैं - बोए हैं

कंवर - ब्योंत

14.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

प्र. 1 उ. धनपत राय

प्र. 2 उ. नबाबराय

14.7 संदर्भित पुस्तकें

प्रेमचंद, गोदान

रामविलास शर्मा, प्रेमचंद और उनका युग

14.8 सात्रिक प्रश्न

प्र. 1 गोदान उपन्यास का सार अपने शब्दों में लिखिए।

प्र. 2 गोदान उपन्यास का उद्‌देश्य क्या है, विस्तारपूर्वक लिखिए।

*****

इकाई–15

गोदान : समीक्षात्मक अध्ययन

संरचना

15.1 भूमिका

15.2 उद्देश्य

15.3 गोदान : समीक्षात्मक अध्ययन

- कथानक
- पात्र
- संवाद
- देशकाल एवं वातावरण
- प्रतिपाद्य या उद्देश्य
- गोदान के नामकरण की सार्थकता
- आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद

स्वयं आकलन प्रश्न

15.4 सारांश

15.5 कठिन शब्दावली

15.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

15.7 संदर्भित पुस्तकें

15.8 सात्रिक प्रश्न

इकाई-15
गोदान : समीक्षात्मक अध्ययन

15.1 भूमिका

इकाई चौदह में हमने गोदान उपन्यास के सार एवं उददेश्य का अध्ययन किया। इकाई पंद्रह में हम गोदान उपन्यास का समीक्षात्मक अध्ययन करेंगे। समीक्षात्मक अध्ययन के अंतर्गत कथानक, पात्र, संवाद, देशकाल एवं वातावरण इत्यादि का अध्ययन करेंगे।

15.2 उद्देश्य

इकाई पन्द्रह का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि

1. गोदान उपन्यास का समीक्षात्मक अध्ययन करेंगे।
2. गोदान का कथानक क्या है ?
3. गोदान उपन्यास की पात्र योजना कैसी है ?

15.3 गोदान : समीक्षात्मक अध्ययन

प्रेमचंद हिंदी उपन्यास साहित्य में उपन्यास-सम्राट की उपाधि से प्रतिष्ठित किए जाते हैं। 'गोदान' प्रेमचंद की अंतिम पूर्ण व प्रौढ़ रचना है। प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में भोगा व जिया हुआ यथार्थ प्रस्तुत किया है। उनकी प्रारंभ की रचनाओं में आदर्शात्मकता की अभिव्यक्ति मिलती है। ज्यों-ज्यों वे परिवेशगत वातावरण से जुड़ते गए उनकी रचनाओं में प्रौढ़ता आती जाती चली गई। जिसकी परिणति हम 'गोदान' में बखूबी देखते हैं।

- **कथानक**

'गोदान' का कलेवर ग्रामीण और शहरी जीवन दोनों को साथ लेकर चला है। जहां एक ओर होरी, धनिया, गोबर, झुनिया, मातादीन, दातादीन आदि पात्र ग्रामीण परिवेश में जीवनयापन करते दृष्टिगत होते हैं, वहीं दूसरी ओर मालती, मेहता, खन्ना, तंखा आदि अनेक पात्र शहरी जीवन की पहचान बनाते हैं। 36 खण्डों में विभाजित उपन्यास का कलेवर बहुत ही व्यापक है। 'गोदान' के केन्द्र में गांवों की कथा है और यही मुख्य कथा भी मानी जा सकती है। कथा का प्रारम्भ गांव से होता है और अन्त भी ग्रामीण परिवेश में ही। परन्तु ग्रामीण कथा के साथ-साथ यहां शहरी जीवन को भी लेखक ने खूबसूरती से प्रस्तुति प्रदान की है। कहीं पर भी दोनों परिवेशों की अभिव्यक्ति में टकराहट नहीं मिलती है। इतने पर भी यह कहना आवश्यक है कि मुख्य रूप से गांव की कथा को ही केन्द्र में रखा गया है। पूरे उपन्यास में कहानी होरी और धनिया के इर्द-गिर्द घूमती है परन्तु उससे जुड़ी अनेकानेक प्रासंगिक कथाएं में अनायास जुड़ती चली जाती है जो कथा को आगे बढ़ाने में सहायक सिद्ध होती हैं। ये सभी प्रासंगिक कथाएं कहीं न कहीं एक दूसरे से जुड़ जाती हैं।

गोदान की आधिकारिक या मुख्य कथा होरी की है। क्योंकि वह गाय पालने की अभिलाषा को लिए हुए जीवन जीता है और उसी अभिलाषा को लिए अन्त में मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। साथ ही 'गोदान' उपन्यास का उद्देश्य व नामकरण भी ग्रामीण कथा अर्थात् होरी पर ही केन्द्रित है। प्रेमचन्द ने होरी के द्वारा न केवल गरीब किसान की व्यथा का चित्रण किया है बल्कि गांव में विद्यमान महाजनी सभ्यता को भी प्रस्तुत किया है जिसका प्रतिनिधित्व रायसाहब दातादीन, झिंगुरीसिंह, दुलारी, पटवारी आदि करते हैं। जो भी व्यक्ति एक बार इनके चंगुल में फंस जाता है। वह उम्र भर इनके चंगुल से निकल नहीं पाता है। उन पर ब्याज की मार इतनी पड़ती है कि वह उस मूल को छोड़ ब्याज को चुकाने में ही अपने आपको खपा देते हैं। परन्तु मूल वैसे का वैसा ही रह जाता है। उपन्यास में गांव के गरीब किसान शोषण का शिकार होते रहते हैं। रायसाहब जमींदार हैं जो गांव की गरीब व असहाय जनता का मनमाना शोषण करते हैं। गांव वालों की विवशता है कि वह भी शोषण का शिकार बनते चले जाते हैं। होरी के जीवन में अनेक उतार-चढ़ावों को

उपन्यास में दर्शाया गया है। उनका भाइयों के साथ अलगोझा हो जाता है। भाइयों में आपसी टकराहट होती है। झगड़ा इतना बढ़ जाता है कि वह अलग हो जाते हैं। होरी के जीवन में कुछ पल सुख के आते हैं जबकि उसे भोला द्वारा गाय की प्राप्ति हो जाती है। परन्तु यह सुख क्षण भर का ही होता है और उसी का भाई गाय को जहर देकर मार देता है। इस दुर्घटना से होरी मुश्किल से उभर पाता है। 'गोदान'। में एक अन्य कहानी होरी के पुत्र गोबर की है जो कि झुनिया को गर्भवती छोड़ पलायन कर जाता है और झुनिया को होरी व धनिया अपने साथ रखते हैं। गोबर के द्वारा शहरी जीवन को प्रस्तुत किया गया है।

दूसरी ओर शहरी जीवन को आधार बनाकर कथा आगे बढ़ती है। मालती और मेहता, गोविन्दी व खन्ना, आदि। प्रासंगिक कथाएं शहरी वातावरण को दर्शाते हैं। इन पात्रों के द्वारा विवाह और प्रेम के सम्बन्ध में भी प्रेमचन्द ने अपने विचारों को व्यक्त किया है। साथ ही नारी को आधुनिक संस्कृति में ढला हुआ दिखाते हुए भी उसे अपने संस्कारों से जुड़ा हुआ दिखाया गया है। शहरी जीवन के अनेक उतार चढ़ाव उपन्यास में दर्शाए गए हैं। पति-पत्नी सम्बन्धों में तनाव व स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की प्रस्तुति मिलती है। जहां एक ओर होरी व धनिया, सिलिया और मातादीन, गोबर व झुनिया के द्वारा स्त्री-पुरुष के बीच एक अलग ही सम्बन्ध उभरता है जहां प्रेम व त्याग है। वहीं मेहता और मालती, खन्ना और गोविन्दी स्त्री-पुरुष के एक भिन्न ही रिश्ते को प्रस्तुत करते हैं। इनके रिश्तों में कहीं अविश्वास का भाव अधिक उभरकर सामने आता है। कथा-विन्यास में इन भिन्न-भिन्न बिन्दुओं को बहुत ही कुशलता के साथ संजोया गया है। जिससे कोई तार टूट नहीं रहा है बल्कि विषय को कहीं अधिक सजीव और जीवन्त रूप में प्रस्तुत कर रहा है।

उपन्यास में गोबर की कथा का अपना विशिष्ट ही स्थान है। वह मूल कथा से नहीं जुड़ती है परन्तु फिर उसकी उपस्थिति कहीं-न-कहीं होरी व धनिया को प्रभावित करती है। कारण है कि वह होरी और धनिया का पुत्र है। उपन्यास में वह नई पीढ़ी का प्रतीक है। गोबर के कारण ही उसके माता-पिता को अनेक समस्याओं से जूझना पड़ता है और वह विषम परिस्थितियों में भाग खड़ा होता है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से एक बात स्पष्ट है कि अवसर 'गोदान' में प्रेमचन्द ने एक नवीन प्रयोग किया है कि उन्होंने ग्रामीण और शहरी परिवेश दोनों साथ लेकर उपन्यास का समझता कलेवर रचा। इतने व्यापक परिवेश को व्यवस्थित और सजोकर प्रस्तुत करने में प्रेमचन्द ने सफलता प्राप्त की है। संघर्ष व मुख्य कथा के साथ समानान्तर चलने वाली कथाएं भी अनायास ही मुख्य कथा से जुड़ती चली जाती है। ये प्रासंगिक कथाएं कहीं पर भी अनावश्यक प्रतीत नहीं होती हैं। इसी होरी के कारण 'गोदान' प्रेमचन्द की प्रौढ़तम रचना मानी जाती है।

- **पात्र**

जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया गया है कि 'गोदान' का कथा क्षेत्र बहुत व्यापक है। इसी कारण से 'गोदान' में अनेक पात्रों के द्वारा अभिव्यक्ति देखने को मिलती है जो कि स्वाभाविक है। उपन्यास में ग्रामीण और शहरी दोनों हो परिवेशों के पात्रों को लिया गया है। होरी धनिया, गोबर, झुनिया, सीलिया आई है। मातादीन, आदि अनेक पात्र ग्रामीण परिवेश का प्रतिनिधित्व करते हैं वहीं दूसरी ओर मालती, मेहता, खन्ना, गोंविन्दी, तंखा आदि पात्र शहरी जीवन का परिचय है। प्रेमचन्द की रचनाओं में पात्र जमीन से जुड़े होते हैं। साथ ही इनके पात्र सजीव और की पहचान बन कर पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत होते हैं जिसके कारण सहजता से पाठक व रचना के मध्य तारतम्य स्थापित हो जाता है।

होरी 'गोदान' का प्रमुख पात्र है। पूरी कथा उसी पर होरी (केन्द्रित है। होरी भारतीय किसान का प्रतिनिधि बनकर रचना में आया है। वह एक आम व्यक्ति है जो कि जीवन भर अनेक त्रासदियों से घिरा रहता है। उपन्यास के आरम्भ से अन्त तक वह गाय पालने की एक स्वाभाविक इच्छा को जीता-मरता है। गाय भारतीय किसान के लिए पूजनीय है। होरी चाहता है कि उसके द्वार पर भी गाय बंधी हो जो कि पुण्य और सुख का प्रतीक बने। क्षण भर को उसकी इच्छा पूरी भी होती है परन्तु भाई द्वारा गाय को जहर देकर मार दिया जाता है। होरी स्नेहशील और संवेदनशील व्यक्ति है जो अपने भाइयों व सम्बन्धित व्यक्तियों से स्नेह भाव रखता है। उन्हें मजबूरी में फंसा देख अपनी दयनीय स्थिति को

भूलकर उनकी मदद के काम करने के लिए तत्पर रहता है। होरी की रचना सामान्य धरातल पर हुई है। उसमें आम व्यक्ति में विद्यमान विशेषताओं को सहजता से देखा जा सकता है। होरी अपनी वास्तविक स्थिति से परिचित भी है। इस कारण वह कोई भी कार्य बिना सोचे समझे नहीं करता। यदि वह महाजनों की चमचागिरी करता है तो वह जानता है उनसे बिना तालमेल बिठाए उसका गुजर–बसर संभव नहीं होरी शोषित वर्ग के प्रतीक के रूप में दर्शाया गया है। वह मानकर चलता है कि उसे इस समाज के ठेकेदारों के सम्मुख झुककर चलना है। होरी विरोधी प्रवृति का मालिक है। अवसर आने पर अपने साथ के लोगों से हल्का मजाक भी कर लेता है। वह पत्नी की दुरावस्था और परेशानियों को भी समझता है। कह सकते हैं कि उपन्यास में होरी को एक आम देहाती की तरह चित्रित किया गया है जो कि जिन्दगी भर संघर्ष करते हुए अपने जीवन को समाप्त कर देता है। धनिया 'गोदान' की प्रमुख स्त्री पात्र है। धनिया होरी की पत्नी है जो कि हर संघर्ष में अपने पति के साथ है। वह चाहे होरी से कितना भी तकरार कर ले परन्तु साथ वह हमेशा होरी का ही देती है। उसमें नारी सुलभ अनेक विशेषताओं को देखा जा सकता है। वह चाहे ऊपर से कितने ही कटु वचन बोलती हो परन्तु कोमल हृदय है। होरी को भी अपशब्द कहने पर भी मन से उसके साथ रहती है। उपन्यास में धनिया को पतिव्रता नारी के रूप में चित्रित किया गया है। हर अच्छे–बुरे समय वह अपने पति का साथ देती है। वह नारी आदर्श बनकर सामने आई है। धनिया में नारी के प्रति भी संरक्षण की भावना देखने को मिलती है। अवसर पड़ने पर झुनिया और सीलिया की मदद करती है। समाज से लड़ने के लिए तत्पर रहती है।

प्रेमचन्द ने धनिया को मानवीय धरातल पर ही उपस्थित किया है।

गोदान में गोबर एक अन्य पात्र है। यह पात्र अनेक कारणों से विशिष्ट पात्र बन जाता है। उपन्यास में गोबर को युवा पीढ़ी का प्रतिनिधि बनाकर प्रस्तुत किया गया है। गोबर होरी धनिया का पुत्र है। युवा होने के कारण उसमें समाज में परिवर्तन की इच्छा है। वह विद्रोही प्रकृति का है। वह झुनिया को बिना विवाह किए मां बना देता है और परिस्थितियों का सामना करने की अपेक्षा उनसे भाग जाता है। गोबर के द्वारा प्रेमचन्द ने दर्शाया है कि वर्तमान समय में ग्रामीण युवा वर्ग शहरों की चकाचौंध से आकर्षित है। वह गांव में रहकर खेती करना नहीं चाहता बल्कि शहर में मजदूरी करना पसन्द करता है। गोबर विपरीत स्थितियों का सामना नहीं कर पाता है और उनमें उलझकर रह जाता है। गोबर लखनऊ में रहकर शहरी जीवन का अनुभव प्राप्त करता है। गांव से भाग कर शहर में चाय की दुकान चलाता है। बाद में खन्ना की चीनी मिल में काम करता है। वहां पर मजदूरी बढ़ाने के लिए हड़ताल में भी योगदान देते हुए लाठी खाता है। तत्पश्चात वह मालती के घर माली का काम करता है। शहर में भी अथक परिश्रम करने पर भी आर्थिक तंगी का शिकार बना रहना पड़ता है। गोबर में नेतृत्व करने की प्रवृत्ति भी देखी जा सकती है।

'गोदान' की एक अन्य पात्र झुनिया है जो कि विधवा है और झुनिया गोबर परस्पर प्रेम करते हैं। गोबर उसे विवाह बिना मां बनाकर अपने घर के बाहर छोड़कर भाग जाता है। झुनिया में अदम्य साहस है और वह अनेक विपत्तियों का सामना करके बच्चे को जन्म देती है। वह गोबर के प्रति पूर्ण समर्पित है और उसका इंतजार करती है। झुनिया चरित्र की धनी है। साथ ही उसमें कर्तव्य की भावना भी है। होरी और धनिया को पूरा सम्मान देती है क्योंकि उन्हीं लोगों की वजह से उसे सिर छिपाने को घर मिलता है।

उपन्यास में जहां गांव के पात्रों की अधिकता देखी जा सकती है। वहीं शहरी जीवन से जुड़े हुए पात्र भी है जिन्हें अनदेखा नहीं किया जा सकता है। शहरी परिवेश की एक चर्चित पात्र मालती है जो दिखने में तो चंचल है परन्तु उसे समझना सहज नहीं है। आधुनिक पहनावे व साज सज्जा से सज्जित होते हुए भी वह नारी की मर्यादा की पक्षधर है। वह मेहता से प्रेम करती है। उसका विवाह के प्रति दृष्टिकोण अलग है परन्तु बाद में वह मेहता के साथ रहना ही स्वीकार करती है। वह विदेश से डाक्टरी की पढ़ाई करके आती है। वह एक मुक्त विचारों वाली महिला है। प्रेमचन्द ने मालती के साथ प्रो. मेहता को जोड़ा है। यह दोनों ही पात्र शहरी पात्रों में प्रमुख हैं। मेहता दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर हैं। वह नारी के प्रति आदर का भाव रखते हैं। नारी के प्रति उनकी सोच परम्परावादी है। नारी को क्षमा, दया, त्याग

की मूर्ति मानते हैं। प्रेमचन्द ने उपन्यास के अनेक स्थलों पर मेहता के नारी सम्बन्धी विचारों का उद्घाटन किया है। साथ ही मेहता द्वारा प्रेम और विवाह के प्रति दृष्टिकोण भी स्पष्ट किया गया है। प्रो. मेहता दब्बू स्वभाव का व्यक्ति है। मेहता व मालती का परस्पर साथ होते हुए ही उनके विचारों में परिवर्तन आता है।

इन पात्रों के अतिरिक्त 'गोदान' में अनेक पात्रों को चित्रित किया गया है जिससे कथा का विकास होता है। सीलिया, पंचों मातादीन, रायसाहब, वातादीन खन्ना, गोविन्दी आदि अनेक पात्र हैं जो प्रसंगवश आते हैं परन्तु सभी पात्र उपन्यास में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। सभी पात्रों के द्वारा प्रेमचन्द कुछ न कुछ विशेष प्रस्तुत करना चाहा है। इसी कारण से 'गोदान' के सभी पात्र आम होते हुए भी विशिष्टताओं के आधार पर विशेष हो जाते हैं।

- **संवाद-योजना**

संवादों की उपन्यास में उपयोगिता यह है कि इसके द्वारा पाठक वर्ग सहजता के साथ पात्रों से जुड़ जाता है। संवादों के द्वारा परस्पर पात्रों की बातचीत से अनेक पात्रों की चरित्रगत विशेषताएं सामने आती हैं। साथ ही संवाद पात्रों की उपन्यास में उपस्थिति के अनुसार ही रचे जाने चाहिए। इससे पाठकों को पात्रों के साथ तादात्मय स्थापित करने में सफलता मिलती है और पात्रों की सामाजिक स्थिति का अंकन भी हो जाता है। जहां तक 'गोदान' की संवाद-योजना का प्रश्न है तो प्रेमचन्द ने संवादों की प्रस्तुति में निश्चित ही सफलता पाई है।

'गोदान' में ग्रामीण व शहरी जीवन के परिवेश को आधार बनाया गया है। जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका परिवेश को मुख्यत: इंगित किया गया है तथा 'गोदान' में ग्रामीण परिवेश को मुख्यत: इंगित किया गया है तथा 'गोदान' में ग्रामीण परिवेश को ध्यान में रखकर ही संवादों को रचा गया है। आमतौर पर उपन्यास में खड़ी बोली हिन्दी को ही स्थान दिया गया है परन्तु संवादों में ग्रामीण या क्षेत्रीय शब्दों का संवाद में प्रयोग मिलता है। परन्तु इससे संवादों की सहजता कहीं पर भी बाधित नहीं होती है। स्थानीय शब्दों का प्रयोग वाक्य-विन्यास के स्तर पर नहीं मिलता है बल्कि कहीं-कहीं उसका प्रभाव संवादों में देखा जा सकता है। ऐसे उदाहरण उपन्यास में देखे जाते हैं। जैसे होरी का यह कथन देखा जा सकता है- 'अब तुमसे बहस कौन करे भाई। जैजात किसी से छोड़ी जाती है कि वही छोड़ देंगे? हमी को खेती से क्या मिलता है? एक आने नफरी की मजूरी भी तो नहीं पड़ती है। जो दस रुपये महीने का भी नौकर है, वह भी हमसे अच्छा खाता-पहनता है, लेकिन खेतों को छोड़ा तो नहीं जाता, खेती छोड़ दें, तो और क्या करें? नौकरी कहीं मिलती है? फिर मरजाद भी तो पालना ही पड़ता है। एक अन्य उदाहरण द्रष्टव्य हैं- 'तुम जैसा घमंड़ चमड़ आदमी ने क्यों रचा।'

'गोदान' में पात्रों के आपसी संवादों के द्वारा उनकी व अन्य पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं का परिचय मिलता है। ऐसे संवादों स्वाभाविकता देखी जा सकती है। कहीं पर भी बनावटीपन देखने को नहीं मिलता है। एक उदाहरण इस प्रकार है। 'तू क्यों बोलती है धनिया! पंच में परमेश्वर रहते हैं। उनका जो न्याय है, वह सिर आंखों पर अगर भगवान की यही इच्छा है कि हम गांव छोड़कर भाग जायें तो हमारा क्या बस। पंचों, हमारे पास जो कुछ है, वह खलिहान में है। एक दाना भी घर में नहीं आया, जितना ले लो। सब लेना चाहो, सब ले लो। हमारा भगवान, मालिक है, जितनी कमी पड़े उनमें हमारे दोनों बैल ले लेना। होरी द्वारा कहे गए इस संवाद में उसकी पंचो के प्रति भक्ति भावना की चरित्रगत विशेषता का पता चलता है।

'गोदान' में शहरी जीवन के चित्रण में संवादों के अन्तर्गत संतुलित वाक्य-विन्यास को प्रयोग में लाया गया है। उनकी भाषा में गांवों की भाषा जैसी अनगढ़ता नहीं है। उदाहरण 'मालती ने प्रसन्न होकर कहा-अब तो लौटना पड़ा। क्यों? उस पार चलेंगे। यहाँ तो शिकार मिलेंगे।' (धारा में कितना वेग है। मैं तो बह जाऊंगी। 'अच्छी बात है। तुम यहीं बैठो, मैं जाता हूँ।' हाँ, आप जाइए। मुझे अपनी जान से बैर नहीं है। 'गोदान' के संवादों में जहां पर पात्रों के मध्य आपसी वार्तालाप होता है वहां पर सहजता उन संवादों की विशेषता बन जाती है। उपन्यास में कहीं पर भी ऐसा प्रतीत नहीं होता है कि संवादों को जबरदस्ती गढ़ा गया है। कहने का अभिप्राय है कि संवाद कहीं पर अनावश्यक नहीं प्रतीत होते। साथ ही संवाद सरल, हल्केपन के साथ-साथ विषय के प्रतिपावन में भी सफल रहे।

● **देशकाल और वातावरण**

1936 में प्रकाशित उपन्यास 'गोदान' का वातावरण आजादी से पूर्व भारतीय गांव का है। यह गांव सेमरी और बेलारी है। जहां शहरी जीवन का वर्णन है वहां लखनऊ को केन्द्र में रखा गया है। परन्तु मुख्य कथा बेलारी गांव से सम्बन्धित है जहां पर होरी रहता है। उपन्यास में आजादी से पहले के गांव की स्थिति का अंकन प्रेमचन्द ने किया है। भारतीय किसान अनेक समस्याओं परेशानियों से घिरा हुआ जीवन जी रहा है। उसे सारी उम्र शोषण का शिकार बना रहना पड़ता है। उसकी स्थिति अधिक खराब जब होती है जबकि वह मजबूरीवश कुछ रुपया ब्याज पर लेता है। वह मरते दम तक इस कर्ज से मुक्त नहीं हो पाता है। यह स्थिति 'गोदान' के होरी की ही नहीं बल्कि भारतीय किसान की भी दयनीय स्थिति है। आज भी भारतीय गांव का किसान होरी की तरह जिन्दगी बसर करते रहते हैं। आधुनिक मशीनी व्यवस्थाओं ने गांवों को प्रभावित तो अवश्य किया है परन्तु किसान की सामाजिक व आर्थिक स्थिति में विशेष सुधार नहीं हुआ है।

'गोदान' में भारतीय किसान की आर्थिक तंगी व उससे उत्पन्न अनेक समस्याओं को उजागर किया गया है। होरी की स्थिति इतनी खराब हो जाती है कि उसके घर में खाने तक को अनाज नहीं है। स्वतन्त्रता पूर्व भारतीय ग्रामीण वातावरण में किसान के पास दो वक्त को रोटी भी नहीं थी। प्रेमचन्द जी ने 'गोदान' के माध्यम से पाठकों के सम्मुख किसी भी भारतीय गांवों का वातावरण प्रस्तुत किया है। जमींदार अपने अधीनस्थ किसान का शोषण करता है और किसान भी अपने को इस विकट परिस्थितियों से उबार नहीं पाता है।

'गोदान' में सामाजिक वातावरण को भी उभारा गया है। और किसान की समाज में स्थिति अच्छी नहीं है। वह सिर उठाकर जोवनयापन नहीं कर सकता है। गांव का व्यक्ति पढ़ा-लिखा न होने के कारण अनेक अंधविश्वासों व रूढ़ियों में जकड़ा होता है। होरी व धनिया भी अनेक अंधविश्वासों का शिकार हैं। होरी को तो पंचों के प्रति भी अथाह आस्था है। वह उन्हें 'परमेश्वर' मानता है। पंचों द्वारा कही गई बात की वह अवहेलना नहीं करना चाहता है। 'गोदान' में जन्म के आधार जाति का निर्धारण स्वीकार किया गया है। आज भी भारतीय परिवेश विशेषकर ग्रामीण वातावरण में यह निर्धारण देखने को मिल जाता है। मातादीन ब्राह्मण होकर चमारिन से विवाह नहीं कर सकता है। जब निम्न जाति के लोग मिलकर उसका धर्म भ्रष्ट कर देते हैं तो अनेक जतन करके उसे दोबारा शुद्ध किया जाता है और ब्राह्मण स्वीकार किया जाता है।

समाज में हमेशा से ही 'अर्थ' व्यक्ति की सामाजिक स्थिति को नियन्त्रित करता है। जिसके पास जितना धन है वह उतना संपन्न है उसकी समाज में स्थिति या पकड़ उतनी ही मजबूत होगी। उसके किसी भी कृत्य को सहजता के साथ गलत नहीं ठहराया जा सकता है। साथ ही वह व्यक्ति अनायास ही किसी अन्य व्यक्ति को लांछित कर सकता है। इस तरह का वातावरण विशेषकर गांव में अधिक देखा जा सकता है। 'गोदान' में भी जब गोबर अपनी इच्छा से विधवा झुनिया को सहारा देता है परन्तु घर के बाहर कायरों की तरह छोड़कर भाग जाता है। तो समाज (गांव) के ठेकेदार होरी ओर धनिया पर आरोप लगाते हैं। उन्हें पंचायत द्वारा दंडित किया जाता है। जबकि भोला जैसा व्यक्ति धन के बल पर दूसरा विवाह कर लेता है। इसी तरह झिंगुरीसिंह की दो पत्नियां हैं। परन्तु उन पर उंगली उठाने वाला व उन्हें दण्डित करने वाला कोई नहीं है।

'गोदान' में चित्रित गांव में अनेक वर्गों व वर्णों के लोग रहते हैं। ग्रामीण परिवेश में जाति व्यवस्था व छुआछूत पर विशेष बल दिया जाता है। समाज के ठेकेदार धर्म के नाम पर भोली भाली जनता को छलते हैं। अनपढ़ किसान, धर्म के प्रति पूर्णतया समर्पित रहता हैं। होरी भी इसी व्यवस्था में पला जिया है। वह समाज के कर्ता-धर्ता को ईश्वर मानता है कह सकते हैं कि 'गोदान' में जिस ग्रामीण वातावरण को चित्रित किया है वह भारत का कोई भी गांव हो सकता है। प्रेमचन्द ने जिस तरह गांव का चित्र खींचा है वह यथार्थ के करीब लगता है। उसमें कहीं भी सतहीपन नहीं देखने को मिलता है।

जहां एक ओर 'गोदान' में ग्रामीण वातावरण को प्रस्तुत किया गया है वहीं शहरी देश काल का अंकन भी किया गया है। शहरी जीवन की चमक दमक, उस जीवन के पहलुओं को भी उपन्यास में स्थान दिया गया है। मालती और मेहता के द्वारा प्रेम और विवाह सम्बन्धी दृष्टिकोण को स्पष्ट किया गया है। मालती प्रेम में उन्मुक्तता चाहती है और विवाह का बन्धन नहीं जबकि मेहता का मानना है कि 'प्रेम जब आत्म समर्पण का रूप ले लेता है, तभी ब्याह है, उसके पहले एयाशी है? इस तरह प्रेमचन्द ने दो विपरीत सोच वाले व्यक्तियों को साथ दिखलाया है। शहरी जीवन में नारी की बदली हुई स्थिति का अंकन हुआ है। मालती के द्वारा एक ऐसी नारी का चित्र खींचा है जो अपनी इच्छानुसार स्वतन्त्र जीवन जी रही है। मेहता नारी के आदर्श रूप का पक्षधर है। प्रेमचन्द ने गोदान में खन्ना व गोविन्दी के माध्यम से पति पत्नी सम्बन्ध में आए तनाव को दर्शाया है।

'गोदान' के अन्तर्गत चीनी मिल का लगना इस बात का संकेत करता है कि समाज में औद्योगिकरण हो रहा है। समाज उन्नति की ओर बढ़ रहा है। इस मशीनी व्यवस्था ने ग्रामीण युवक को शहर का रूख करने को विवश कर दिया है। ग्रामीण व्यक्ति शहर की ओर भाग रहा है। गांव का किसान खेती छोड़कर मजदूर बनने को तैयार हो गया है। परंतु शहर में आकर भी उसकी समस्याओं का समाधान नहीं होता है। वह दिन भर मेहनत मजदूरी करके सहजता से रोटी प्राप्त नहीं कर पाता है। यदि मिल आदि का काम बंद हो जाए तो फिर से उसे बेकारी का जीवन व्यतीत करना पड़ता है। उपन्यास में होरी भी अंततः मजदूर बन जाता है। उसका पुत्र गोबर भाग कर शहर आ जाता है और अनेक कार्य करके भी सतुष्टि प्राप्त नहीं कर पाता है।

इस तरह कहा जा सकता है कि 'गोदान' के अंतर्गत तत्कालीन ग्रामीण और शहरी वातावरण का सजीव चित्रण पाठकों के सम्मुख उपस्थित किया गया है। शहरी और ग्रामीण वातावरण एक-दूसरे से अलग न होकर कहीं एक दूसरे से मिल गए हैं जिससे कथा में तारतम्य बना रहता है। कथा कहीं पर भी हल्की नहीं बन पड़ती है। प्रेमचंद ने समाज में आए अनेक परिवर्तनों व जड़ताओं को अभिव्यक्ति दी है।

- **भाषा**

गोदान उपान्यास में भाषा के अनेक रूप देखे जा सकते हैं। विषय प्रतिपादन के लिए जिस ढंग की भाषा की आवश्यकता हुई प्रेमचंद जी ने उसी भाषा का प्रयोग किया है। भाषा सहज ही कथ्य को स्पष्ट करने में समर्थ है। प्रेमचंद ने आम बोलचाल की भाषा में ही उपन्यास की रचना की है परंतु कहीं पर भी भाषा में हल्कापन नहीं देखा जा सकता है। हल्के-फुल्के प्रसंगों में सरल व हल्की भाषा का प्रयोग किया गया है जिससे विषय की अभिव्यक्ति में पाठक को पूरा आनंद मिल सके व उस प्रसंग या घटना से अपने आपको सहजता से जोड़ सके। उदाहरण इस प्रकार है-

'मेहता इसे उसी के लिए तो जमीन तैयार कर रहा हूँ।'

'मिस मालती से जोड़ा भी अच्छा है।'

'शर्त यही है कि कुछ दिन आपके चरणों में बैठकर आपसे नारी धर्म सीखें।',

'वही स्वार्थी पुरूषों की बात। अपने पुरूष कर्तव्य सीख लिया है?'

'यही सोच रहा हूं, किससे सीखें।'

''मिस्टर खन्ना आपको बहुत अच्छी तरह सिखा सकते हैं।''

''मेहता ने चहचहा मारा-नहीं मैं पुरूष कर्तव्य भी आप ही से सीखूंगा।''

जहां पर भी हल्की मजाकिया भाषा प्रयोग में लाई गई है वहां पर भी किसी गहन विचार बिन्दु को प्रस्तुत करने का प्रयास ही किया गया है। प्रेमचंद जी ने पात्रों के द्वारा गंभीर विषयों को भी प्रस्तुत किया है। ऐसे स्थानों पर भाषा सधी और परिपक्व है। मेहता द्वारा कालेज में भाषण के दौरान गंभीर विषय को कुछ इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है-मैं प्राणियों के विकास में स्त्री के पद को पुरुषों के पद से श्रेष्ठ समझता हूं उसी तरह जैसे प्रेम और त्याग और श्रद्धा को

हिस्सा और संग्राम और कलह से श्रेष्ठ समझता हूँ। अगर हमारी देवियां सृष्टि और पालन के देव – मन्दिर से हिंसा और कलह के दानव क्षेत्र में आना चाहती हैं तो उससे समाज का कल्याण न होगा। मैं इस विषय में दृढ़ हूँ। पुरुष ने अपने अभिमान में अपनी कीर्ति को अधिक महत्त्व दिया। वह अपने भाई का स्वप्न छीनकर और उसका रक्त बहाकर समझने लगा, उसने बहुत बड़ी विजय पायी। 'गंभीर विषयों की अभिव्यक्ति में भाषा विश्वनीयता को कायम करने में सफल है।

'गोदान' में प्रेमचन्द ने संवादों की भाषा में छोटे-छोटे वाक्य-विन्यास का ध्यान रखा है। इन छोटे-छोटे वाक्यों के द्वारा गंभीर बात ही सामने आती है। इन वार्तालाप के दौरान थोड़े के द्वारा बहुत कुछ कहने का प्रयास किया गया है। शोभा और पटेश्वरी के बीच की वार्तालाप के दौरान छोटे वाक्यों का प्रयोग किया है परन्तु जिस विषय के सन्दर्भ में दोनों बातचीत कर रहे हैं वह गंभीर है

'शोभा बदल पड़ा। बोला मेरे पास दस रूपए नहीं है, तुम्हें जो कुछ करना हो कर लो।

पटेश्वरी ने गर्म होकर कहा ऊख बेची है कि नहीं, हां बेची है?

'तुम्हारा यही वादा तो था कि ऊख बेच दूंगा।'

'हां था तो,

'फिर क्यों नहीं देते और सब लोगों को दिए है कि नहीं?

'मेरे पास अब जो कुछ बचा है, वह बाल बच्चों के लिए है।'

प्रेमचन्द अपनी धरती व प्रकृति से जुड़े हुए साहित्यकार हैं। 'गोदान' में भी कहीं-कहीं उनका यह प्रकृति प्रेम देखने को मिल जाता है। इस वर्णन में उन्होंने आलंकारिक भाषा का चयन किया है जिसका सौष्ठव पढ़कर ही अनुभव किया जा सकता है- 'वैवाहिक जीवन के प्रभात में लालसा अपनी गुलाबी मादकता के साथ उदय होती है और हृदय के आकाश को अपने माधुर्य की सुनहरी किरणों से रंजित कर देती है। फिर मध्याह्न का प्रखर ताप, आता है, क्षण-क्षण पर बगूले उठते हैं और पृथ्वी कांपने लगती है। लालसा का सुनहरा आवरण हट जाता है और वास्तविकता अपने नग्न रूप में सामने पर आ खड़ी होती है। उसके बाद विश्राममय संध्या आती है, और शीतल और शान्त जब हम थके हुए पथिकों की भांति दिन-भर की यात्रा का वृत्तान्त कहते और सुनते हैं तटस्थ भाव से मानो हम किसी ऊंचे शिखर पर जा बैठे हैं, जहां नीचे का जन हम तक नहीं पहुंचता। 'गोदान' में लेखक ने मुहावरे व लोकोक्तियों का प्रयोग किया है। जैसे पांच सहलाना, साठे पर साठा होना, जल में रहकर मगर से बैर, आड़े हाथों लेना, काठ का उल्लू आदि। यह प्रयोग अनायास ही किया गया है जिससे भाषा में स्वाभाविकता और प्रभावोत्पादकता आ जाती है। 'गोदान' में ग्रामीण और शहरी दोनों परिवेशों का चित्रण मिलता है। इस कारण जिस परिवेश या वातावरण को चित्रित किया जा रहा है उसी परिवेश की भाषा को भी स्थान दिया गया है। प्रेमचंद ने चरित्रों की सामाजिक स्थिति के अनुसार ही उनकी भाषा को निर्धारित किया है। जब मेहता अफगान का वेश धारण करके आता है तो प्रेमचंद जी ने उनके मुख से कुछ इस प्रकार की भाषा का प्रयोग किया है- 'अमारी कोठी में पचास जवान हैं' आमारा आदमी रूपए तहसील कर लाता था। एक हजारा वह तुम लूट लिया और कहता है कि कैसा डाका? अम बतलायेगा, कैसा डाका होता है। अमारा पचीसों जवान अबी आता है। अब तुम्हारा गांव लुट लेगा। कोई साला कुछ नहीं कर सकता।

कह सकते हैं कि 'गोदान' की भाषा सधी हुई है। प्रेमचंद ने भाषा को संवारकर प्रस्तुत किया है। जिस वातावरण या मनः स्थिति को प्रस्तुत करना है ठीक वैसी ही भाषा का चयन 'गोदान' में देखने को मिलता है। भाषा में आवश्यकतानुसार गांभीर्य है तो हल्की चुहलबाजी भी। वहीं भाषा थोड़े द्वारा बहुत कुछ कहती है तो कहीं पर किसी पात्र की पहचान बन जाती है। इस तरह 'गोदान' में प्रेमचंद सफल भाषा के परखी के रूप में सामने आए हैं।

- **प्रतिपाद्य या उद्देश्य**

'गोदान' का मुख्य उद्देश्य भारतीय कृषक की दुरावस्था का चित्रण करना है। प्रेमचंद ने होरी के माध्यम से दरिद्र और असहाय भारतीय किसान का चित्र प्रस्तुत किया है। होरी जिंदगी भर सुखी नहीं रह पाता है। उसे दो वक्त की रोटी जुटाने के लिए अथाह मेहनत करनी पड़ती है। उपन्यास के आरंभ से ही होरी-एक मात्र लालसा गाय पालने की रखता है। भारतीय किसान के लिए गाय पवित्रता व सुख-शांति का प्रतीक है जिसके घर के आगे गाय बंधी हो, वह संपन्न है। होरी मरते दम तक इस एक इच्छा को पूरी नहीं कर पाता है। उपन्यास के अंत में जब होरी मर जाता है तो उसकी पत्नी धनिया उसके ठंडे हाथ पर बीस आने पैसे रखकर दातादीन को गो-दान करने को कहती है। इस तरह गांवों में रह रहे कृषक की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं है न उसके पास खाने को अन्न है न पहनने को कपड़ा। होरी के द्वारा कृषक जीवन की मार्मिक वेदना को प्रस्तुति दी गई है।

साथ ही 'गोदान' में शोषण की मार झेल रहे कृषक भी दर्शाया गया है। जमींदार, सरकारी कर्मचारी, पुरोहित आदि समाज से कथित निर्माता कहे जाने वाले लोग गरीब किसान का शोषण करते हैं। जब स्वयं कोई कृत्य करते हैं तो वह उचित और महान है। परन्तु वहीं कार्य जब एक गरीब किसान कर बैठे तो वह उसके लिए दण्डनीय अपराध बन जाता है। होरी को समय-समय इन समाज के ठेकेदारों के अत्याचार का सामना करना पड़ता है। उसकी छोटी सी गलती का भुगतान उसे करना पड़ता है। वह कभी भी सिर उठाकर नहीं चल सकता। न ही इन लोगों के विरुद्ध, कुछ कह पाने की हिम्मत ही रख सकता है। किसान की विवशता यहीं तक सीमित नहीं है। जमींदार से पीछा छुड़ाता है तो उसे महाजनों द्वारा घेर लिया जाता है। उपन्यास में एक स्थल पर होरी अपनी विवशता को कुछ इस प्रकार अभिव्यक्त करता है 'अनाज तो सब का सब खलिहान में ही तुल गया। जमींदार ने अपना लिया, महाजन ने अपना लिया। मेरे लिए पांच सेर अनाज बच रहा है। यह भूसा तो मैंने रातों रात ढोकर छिपा दिया था, नहीं तिनका भी न बचता। जमींदार तो एक ही है, मगर महाजन तीन-तीन हैं, सहुआइन अलग और मंगरू अलग और दातादीन पण्डित अलग किसी का ब्याज भी पूरा न चुका। जमींदार के भी आधे रुपये बाकी पड़ गये। सहुआइन से कुछ रुपये उधार लिये तो काम चला।'

उपन्यास का उद्देश्य यह सिद्ध करना भी रहा है कि यदि किसान एक बार महाजन से ऋण उधार ले ले तो फिर वह उस ऋण से कभी उबर नहीं सकता है। मूल तो हमेशा बना रहता है और ब्याज ही कभी नहीं चुका पाता है। मूल से ज्यादा ब्याज हो जाता है। गरीब किसान के लिए मूल तो दूर की बात ब्याज चुकाना भी असंभव हो जाता है। होरी की स्थिति भी ठीक ऐसी ही है ब्याज ने उसकी कमर तोड़ दी है। महाजन और केवल अपने फायदे की ही सोचते हैं उन्हें किसान को कोई चिन्ता नहीं होती है। वह अपनी इच्छानुसार उनका शोषण करते हैं और उन्हें हमेशा दबा कर रखते हैं ताकि उनकी स्वार्थपूर्ति हो सके।

'गोदान' का एक अन्य उद्देश्य यह भी रहा है कि प्रेमचन्द ने इसके माध्यम से किसान की मजदूर बनने की स्थिति मार्मिक वर्णन किया है। होरी अपने खेत में काम करना पसन्द करता है। वह मानता है कि इससे हटकर उससे कोई अन्य कार्य नहीं हो सकेगा। परन्तु यह भी मानता है कि खेती से कुछ प्राप्त नहीं हो पाता है। वह मानता है कि 'जैजात किसी से छोड़ी जाती है कि वही छोड़ देंगे? हमी को खेत से क्या मिलता है? एक आने नफरी की मजूरी भी तो नहीं पड़ती। जो दस रुपये महीने का भी नौकर है, वह भी हमसे अच्छा खाता-पहनता है। लेकिन खेतों को छोड़ा तो नहीं जाता। खेती छोड़ दें तो और करें क्या नौकरी कहीं मिलती है? फिर मरजाद भी तो पालना ही पड़ता है। खेती में जो मरजाद है, वह नौकरी में तो नहीं। बाद में होरी को दातादीन के खेत में मजदूरी करनी पड़ रही थी। अब वह 'किसान नहीं, मजदूर है। दातादीन से उसका पुरोहित जजमान का नाता नहीं, मालिक मजदूर का नाता है।

'गोदान' के द्वारा प्रेमचन्द का उद्देश्य शहरी जीवन को चित्रित करने के साथ उसकी अनेक समस्याओं पर प्रकाश डालना भी रहा है। शहरों में गहराता स्वार्थपरता का वातावरण, महत्वपूर्ण राजनीतिक अवसरवादिता, झूठी शान, चमक-दमक को दर्शाया गया है। शहरी जीवन में नारी को एक अलग की रूप में चित्रित किया गया है। मालती

अत्याधुनिक नारी है जो अपने जीवन के फैसले लेने के लिए स्वतन्त्र है। वही अपनी इच्छा से अपना मार्ग चुनती है। 'गोदान' में स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों को नए ढंग से देखने का भी प्रयास किया गया है। यहाँ स्त्री-पुरुष में आकर्षण के साथ-साथ मित्रता का सम्बन्ध भी दिखाना प्रेमचन्द जी का अभीष्ट रहा है। लड़कियां स्कूल के बाद कालेज की पढ़ाई करने लगी हैं। जहां उनका विकास होता है उनमें आत्मनिर्भरता बढ़ती है। दूसरी ओर गोविन्दी जैसी नारी की भी चर्चा की गई है जो अपने पति के द्वारा दुर्व्यवहार करने भी उसी के साथ रहने को विवश है।

राय साहब राजनीति की अनेक चालें चलने में माहिर हैं। वह राजनीति में सफलता भी प्राप्त करते हैं।

प्रेमचन्द ने 'गोदान' में एक बात और स्पष्ट करनी चाही है कि शहरी जीवन का प्रभाव गांव पर पड़ रहा है। ग्रामीण नवयुवक कृषक जीवन की अपेक्षा शहर जाकर मजदूरी करना अधिक उचित समझता है। गोबर विषम परिस्थितियों में गांव छोड़कर शहर भाग जाता है। और वहां अनेक छोटे काम करने को तैयार रहता है। अनेक कष्ट सहकर भी वह वापिस नहीं आना चाहता है। शहरी जीवन की चकाचौंध बराबर ग्रामीण युवा को आकर्षित करती है। वह जल्दी-से-जल्दी अधिक धन न कमाने और कुछ बन जाने का इच्छुक रहता है।

अत: प्रेमचंद 'गोदान' के उद्देश्य को इस प्रकार निरूपित किया है कि वह शहरी संवेदना के साथ पाठकों के हृदय को भेद देता है चाहे उद्देश्य कृषक जीवन की व्यथा को चित्रित करना रहा है परंतु उससे जुड़े अनेकानेक पहलुओं का भी खुलासा किया गया है। उनका दर्द व पीड़ा का हृदयगाही चित्र 'गोदान' में खींचा है। ग्रामीण और शहरी जीवन से जुड़े परिवेश को साथ लेकर चलते हुए उपन्यास में बिखराव नहीं है। बल्कि ग्रामीण और शहरी जीवन में बखूबी तारतम्य बिठाया गया है। ग्रामीण व्यक्ति की जिन्दगी को करीब से पाठकों के सम्मुख रखा गया है जिससे पाठक वर्ग भी उनकी व्यथा से अपने को जोड़ पाए और न केवल उनकी पीड़ा, का अनुभव हो कर सके बल्कि कोई समाधान ढूंढने की ओर अग्रसर हो। इस प्रकार 'गोदान' का उद्देश्य भलेही डोरी की दीन-हीन दशा का वर्णन करना रहा है। इसी के साथ होरी भारतीय कृषक का प्रतिनिधि बनकर भी सामने आता है जिसे भारतीय ग्रामीण परिवेश सहजता से देखा जा सकता है।

● 'गोदान' के नामकरण की सार्थकता

किसी भी रचना के लिए उसका शीर्षक बहुत ही महत्वपूर्ण बिन्दु होता है। शीर्षक के द्वारा हो रचना की केन्द्रीय संवेदना व उसके प्रतिपाद्य का पता चलता है। रचनाकार का कौशल समझा जाता है कि वह रचना और उसके शीर्षक में तारतम्य बना सके। यदि शीर्षक को पढ़कर ही पाठक को स्पष्ट हो जाए कि अब वह रचना में क्या पढ़ने वाला है तो यही उस शीर्षक की सार्थकता है। शीर्षक के द्वारा रचना के अनेक पक्षों का खुलासा होता है। जय रचना और शीर्षक में तारतम्य नहीं बैठ पाता है तो उस रचना को असफलता का कारण बन जाता है। इस दृष्टि से विचार किया जाए तो 'गोदान' का नामकरण परिपूर्णता को प्राप्त होता है। प्रेमचन्द रचना और नामकरण में तारतम्य कायम बनाने में सफल हुए हैं। जो शीर्षक स्पष्ट करता है वही वाक्य विचार बनकर उपन्यास के रूप में पाठक समूह के सामने रखा जाता है।

उपन्यास का आरम्भ ही होरी की गाय पाने की लालसा से होता है। उसके जीवन का महत्त्वपूर्ण लक्ष्य ही गाय पालना है। परन्तु होरी एक निम्न वर्गीय परिवार से सम्बद्ध है। उसकी आर्थिक स्थिति ठीक नहीं है। वह अपने जीवन की एक मात्र लालसा को आर्थिक अभाव के कारण पूरा नहीं कर पाता है। जबकि गाय उसके जीवन में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। उसके मन की साध है नहीं, वह पछाई गाय लेगा। उसकी खूब सेवा करेगा। कुछ नहीं तो चार-पांच सेर दूध होगा। गोबर दूध के लिए तरस कर रह जाता है। इस उमिर में न खाया पिया तो फिर कब खायेगा? साल भर भी दूध पीले तो देखने लायक जाय, बछवे भी अच्छे बैल निकलेंगे। दो सौ से कम की गोई न होगी। फिर, गऊ से ही तो द्वार की शोभा है। सवेरे-सवेरे। गऊ के दर्शन उसके हो जायें तो क्या कहना। न जाने कब यह साध पूरी होगी कब वह शुभ दिन आयुगा!?

उसके जीवन में गाय की इच्छा पूरी होती है। जब वह विधुर भोला को विवाह का लालच देता है और उससे गाय उधार ले लेता है। यह बात गांव के अधिपतियों को हजम नहीं होती है। दूसरी ओर हारी का भाई हीरा ईर्ष्यावश गाय को जहर देकर मार डालता है। स्वयं भाग खड़ा होता है। पुलिस उससे पैसा हड़पना चाहती है उसे गौ हत्या का प्रायश्चित करना पड़ता है। दूसरी ओर भोला भी उससे कर्ज का रुपया मांगने लगता है। इस तरह होरी महाजनों के चंगुल में फंसता चला जाता है। पूरी जिन्दगी वह कर्ज से मुक्त नहीं हो पाता है। गो-दान की इच्छा के लिए इस संसार को त्याग देता है। इस प्रकार 'गोदान' नामकरण की यह उपादेयता है कि सम्पूर्ण कथ्य होरी की इस लालसा को ही अभिव्यक्त करता है।

गाय पालने की इच्छा के कारण ही होरी को ऋण लेना पड़ता है और एक किसान की दयनीय स्थिति का प्रकटीकरण उपन्यास में होता है। एक बार महाजन के चंगुल में फंसने के उपरान्त फिर उनके मुक्ति पा लेना मुश्किल है। होरी के साथ भी ऐसा ही होता है। वह दिन-प्रतिदिन ऋण के बोझ तले दबता चला जाता है। उसकी आर्थिक स्थिति खराब होती चली जाती है। उपन्यास के माध्यम से यह संदेश भी मिलता है कि गरीब व्यक्ति के लिए अपनी छोटी सी इच्छा पूरी करना सहज नहीं है। वह उम्र बिता देता है परन्तु अपने जीवन की साध पूरी नहीं कर पाता हैं।

इस प्रकार 'गोदान' के नामकरण की यह सार्थकता है कि वह किसान जीवन को पूरी मार्मिकता के साथ प्रस्तुत करता है। एक किसान की मामूली सी अभिलाषा को दर्शाते हुए उससे जुड़े अनेक पक्षों का खुलासा किया गया है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि 'गोदान' नामकरण सर्वथा उचित और सार्थक है।

- **आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद**

'गोदान' के विषय में एक अन्य बात जो सामने आती है वह है कि इसमें आदर्श और यथार्थ दोनों का ही समन्वय देखा जा सकता है। इसी कारणवश 'गोदान' की आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद को लेकर काफी विवाद रहा है। कुछ विद्वानों का मत है कि उनके साहित्य में यथार्थवाद नहीं देखा जा सकता है। जबकि इसको श्रम के रूप में स्वीकार करते हैं। आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद अपने आप में अस्पष्ट भी ठहराया जाता है। यदि इन विवादों से हटकर देखा जाए तो 'गोदान' में जहां एक ओर प्रेमचन्द ने आदर्श की स्थापना की है वहीं दूसरी ओर आदर्श को यथार्थ की भूमि पर ही प्रस्तुत किया है।

'गोदान' की कथा में भी आदर्श और यथार्थ देखा जा सकता है। उन्होंने भारतीय किसान के जीवन को होरी के माध्यम से प्रस्तुत किया है। होरी का आदर्श एक गाय की लालसा है जिसको पूरा करने के लिए उसे जीवन के यथार्थ से प्रेमचन्द ने जोड़ दिया है। यथार्थ में देखा जाए तो क्या भारतीय किसान जीवन का सजीव चित्र प्रस्तुत करती है। कृषक जीवन के अनेक समस्याओं उतार-चढ़ाव के साथ उनके जीवन के हर्ष, उल्लास को भी प्रस्तुत किया है। 'गोदान' में आदर्श को पकाकर यथार्थ की ओर उन्मुख किया गया है। जिससे कथा में सहजता व स्वाभाविकता आ जाती है। आम जीवन में गांव में रह रहा व्यक्ति जमींदार और महाजनों के चंगुल में फंस जाता है और चाहकर भी उससे मुक्त नहीं हो पाता है यही स्थिति होरी की भी है। वह गांव के करता धरता के बीच ऐसा फंसता है कि वह अन्त तक उनसे पीछा नहीं छुड़ा पाता है। इसी जाए तो प्रेमचन्द ने 'गोदान' में जिन पात्रों को चुना है वह भी यथार्थ से ही लिए गए हैं। चाहे वह ग्रामीण पात्र शहरी जीवन से जुड़े पात्रों होरी, धनिया, गोबर, झुनिया के चित्रण में यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाया गया है। उनमें जहां आदर्श दिखाया गया है वहीं उनमें अनेक मानवीय दुर्बलताओं को भी दर्शाने में प्रेमचन्द चूके नहीं। इसी तरह मेहता और मालती के चित्रण में भी यथार्थ की भाव भूमि को आधार बनाया गया है। मेहता-मालती आदर्शों को व्यक्त करते हैं, परन्तु फिर भी उनमें यथार्थवादी दृष्टिकोण को भी व्यक्त किया गया है। रायसाहब, दातादीन, झिंगुरीसिंह दुलारी आदि पात्रों को यथार्थ के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। साथ ही इन पात्रों को कहीं-कहीं पर करता हास-विलास करते दिखाया गया है जिसके द्वारा उन्हें आदर्शवाद के करीब ले जाया गया है गया है। क्योंकि मानवीय स्वभाव को छोड़कर जीवनयापन नहीं किया जा कहा जा सकता है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि 'गोदान' एक आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी उपन्यास है। जिसमें आदर्श और यथार्थ को साथ-साथ लेकर चला गया है। यही कारण है कि पाठक वर्ग सहजता के साथ रचना से जुड़ जाता है। रचना पढ़कर लगता है कि यह घटना किसी भी भारतीय गांव में घटित होती देखी जा सकती है। इस तरह 'गोदान' में आदर्श उन्मुख होकर ओर अग्रसर होता है वहीं यथार्थ भी आदर्श की ओर उन्मुख होता है।

- **महाकाव्यात्मकता**

'गोदान' में महाकाव्यात्मकता को पाश्चात्य 'एपिक नॉवल' के आधार पर देखा जा सकता है। वास्तव में 'गोदान' एक गद्य विधा है जिसमें उपन्यास के तत्वों की विशेषताओं को देखा जा सकता है। यदि 'गोदान' को महाकाव्यात्मकता की संज्ञा दी जाती है तो उसका कारण है कि इसका अभिप्राय महाकाव्य नामक विद्या से नहीं है। बल्कि महाकाव्य के तत्वों से है। महाकाव्य में वर्ण्य-विषय विस्तृत होता है और उसमें पान भी अधिक होते हैं। साथ ही गहराई, औदात्य, रसात्मकता आदि अनेक तत्व समाहित रहते हैं। इन सभी तत्वों को 'गोदान' में देखा जा सकता है। जिस कारण से विद्वानों ने 'गोदान' को महाकाव्यात्मकता की संज्ञा दी है।

'गोदान' को कृषक जीवन का महागाथा कहा जा सकता है। यहां 'महा' शब्द लग जाने से व्यापकता का समोवश हो जाता है। यह व्यापकता इसे महाकाव्यात्मकता प्रदान करती है। कथा कृषक जीवन की अनेक समस्याओं को उद्‌घाटित करती है। एक छोटी सी लालसा होरी के मन में है - गाय पालने की। इस एक इच्छापूर्ति के लिए उसे अनेक मुकिश्लों का सामना करना पड़ता है। वह ऋण के बोझ से दब जाता है। इस पहलू को प्रेमचन्द ने पूरी तन्मयता और व्यापकता के साथ प्रस्तुत किया है। ग्रामीण परिवेश का चित्रण करते हुए प्रकृति को यथा स्थान दर्शाना प्रेमचन्द नहीं भूले हैं। ग्रामीण व्यक्ति की मन: स्थिति को मार्मिकता के साथ पाठकों के सम्मुख रखा गया है। 'गोदान' में महाकाव्यात्मकता इस आधार पर भी देखी जा सकती है कि पात्रों की संख्या अधिक है और साथ ही प्रेमचन्द ने जहां एक ओर इनकी चारित्रिक विशेषताओं को प्रस्तुत किया है वहीं उनके बाह्य व्यक्तित्व को खुला भी किया। इस तरह उपन्यास में व्यापकता दिखाई गई है। इन पात्रों के द्वारा सामान्य व्यक्ति के जनजीवन को रेखांकित किया गया है। गांवों में विद्यमान जनजीवन को करीब से दर्शाया गया है। होरी के माध्यम से किसानों की दयनीय स्थिति, गरीबी आर्थिक तंगी, परस्पर विद्वेष, आपसी मनमुटाव, धार्मिक रूढ़िवादिता, अंधविश्वास आदि को भी गहराई से प्रस्तुत किया गया है। पति-पत्नी सम्बन्धों की घनिष्टता व उनके बीच तनाव को भी दिखाया गया है। इस तरह कहा जा सकता है कि 'गोदान' में महाकाव्यात्मकता देखी जा सकती है। यह महाकाव्यात्मकता वर्ण्य विषय या पात्रों की बनावट आदि के आधार पर ही सिद्ध की जा सकती है। 'गोदान' की महाकाव्यात्मकता इस तरह बताई जा सकती है कि इसमें तत्कालीन परिस्थितियों का खुलासा किया गया है। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक परिवेश को इस तरह चित्रित किया गया है वह एक सजीव व जीवन्त परिवेश को उद्‌घाटित करता है।

स्वयं आकलन हेतु प्रश्न

प्र.1 गोदान उपन्यास का नायक कौन है ?

प्र. 2 होरी के गांव का नाम बताइए ?

15.4 सारांश

अत: कहा जा सकता है कि गोदान उपन्यास का प्रमुख पात्र होरी है। उपन्यास की पूरी कथा होरी के इर्द-गिर्द घुमती है। इस उपन्यास में प्रेमचंद ने होरी की लालसा गांव के पूंजीपति लोगों का षड्‌यंत्र नारी के प्रति लोगों की असमान की भावना व गरीबों के साथ हो रहे शोषण का चित्रण किया है।

15.5 कठिन शब्दावली

1. पांव तले गर्दन दबना - स्वयं पर दूसरे का अधिकार होना
2. गांठ से - जेब से

15.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

प्र.1 उ. होरी

प्र.2 उ. बेलारी

15.7 संदर्भित पुस्तकें

प्रेमचंद, गोदान

रामविलास शर्मा – प्रेमचंद और उनका युग

15.8 सात्रिक प्रश्न

प्र. 1 गोदान उपन्यास के कथानक पर प्रकाश डालिए।

प्र. 2 गोदान कृषक जीवन का महाकाव्य है, स्पष्ट कीजिए।

*****

इकाई–16
गोदान उपन्यास के पात्रों का चरित्र चित्रण

संरचना

16.1 भूमिका
16.2 उद्देश्य
16.3 गोदान : उपन्यास के पात्रों की चारित्रिक विशेषताएं
- होरी का चरित्र चित्रण
- मालती का चरित्र चित्रण
- धनिया का चरित्र चित्रण

स्वयं आकलन प्रश्न
16.4 सारांश
16.5 कठिन शब्दावली
16.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर
16.7 संदर्भित पुस्तकें
16.8 सात्रिक प्रश्न

इकाई-16
गोदान उपन्यास के पात्रों का चरित्र चित्रण

16.1 भूमिका

इकाई पंद्रह में हमने गोदान उपन्यास का समीक्षात्मक अध्ययन किया। इकाई सोलह के अंतर्गत हम गोदान उपन्यास के पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं का अध्धयन करेंगे। चरित्र चित्रण के अंतर्गत हम होरी, मालती और धनिया के चरित्र चित्रण का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

16.2 उद्देश्य

इकाई सोलह का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि

1. गोदान उपन्यास के पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं का अध्ययन करेंगे।
2. होरी के चरित्र की विशेषताओं का अध्ययन करेंगे।
3. मालती के चरित्र-चित्रण का अध्ययन करेंगे।

16.3 गोदान उपन्यास के पात्रों की चारित्रिक विशेषताएं

- **होरी का चरित्र-चित्रण**

उत्तर - 'गोदान' उपन्यास मूल रूप से कृषक-संस्कृति का इतिहास है। इसका नायक होरी एक साधारण किसान है जिसके पास पाँच बीघे जमीन है। उसका बड़ा परिवार है। खेत में जितनी पैदावार होती है उससे अधिक खर्च है। इससे भी अधिक उसके जीवन में बड़ी विडम्बना यह है कि उसका चारों ओर से शोषण होता है। भोला-भाला होरी सभी कुछ सहन करता है। कहा जाता है कि भारतीय किसान का बेटा ऋण में जन्म लेता है, आजीवन ऋण-ग्रस्त रहता है और ऋण में ही चल बसता है। होरी का प्रारंभिक जीवन तो यद्यपि ऋण-ग्रस्त नहीं था, फिर भी मर्यादा की रक्षा करने में वह अपना सब कुछ खो बैठता है। यद्यपि पत्नी धनिया, पुत्र गोबर उसकी नादानी का विरोध करते हैं, परन्तु वह जी-तोड़ परिश्रम करके भी परिवार का पूरी तरह से पालन नहीं कर पाता। उसका सम्पूर्ण जीवन संघर्षो भरा हुआ है। उसके चरित्र की निम्नांकित विशेषताएँ हैं-

1. कृषक-वर्ग का प्रतिनिधि-प्रेमचन्द ने उपन्यास के नायक होरी का चरित्र-चित्रण आदि से अन्त तक जिस रूप में प्रस्तुत किया है उससे ज्ञात होता है कि वह सच्चा किसान है। उसे अपनी पूमि से असीम प्यार है वह गाय को किसान के घर का आभूषण मानता है। वह लगान देता है, ऋण लेता है, जी तोड़ परिश्रम करके भी अपनी गृहस्थी नहीं चला पाता, फिर भी खेती-प्रेमी है। वह कहता है-**''हमीं को खेती से क्या मिलता है? एक आने नफरी की मजूरी भी नहीं पड़ती। जो दस रुपये महीने का नौकर है वह भी हमसे अच्छा खाता-पीता पहनता है, लेकिन खेतों को छोड़ा नहीं जाता.......खेतों में जो मरजाद है, वह नौकरी में तो नहीं है।''** खेती के आधार पर ही वह गाय को रखने का अभिलाषी है। गाय भारतीय किसान की जन्म-संस्कार युक्त अभिलाषा है। गऊ को होरी माता मानता है और उसके बछड़े को अमूल्य धन मानता है। एक बार वह लहराते ईख के पौधों को देखकर कहता है **''भगवान, कहीं गौं से बरखा कर दें और डांडी भी सुभीते से रहे, तो एक गाय जरूर लेकर उसकी खूब सेवा करेगा।... सुबह सबेरे गऊ के दर्शन हो जाये, तो क्या कहना?''** होरी खेतों में जी-जान से परिश्रम करता है जिससे अधिक से अधिक पैदावार हो। लेकिन कभी 'सूखा' जैसी प्राकृतिक आपदाएँ उसकी मनोकामना पूर्ण नहीं होने देतीं, तो कभी जमींदार के कारिंदे, पटवारी, दरोगा, गाँव के साहूकार आदि उसका शोषण करते हैं। लेखक उसकी स्थिति का वर्णन करते हुए लिखता है-

''इस फसल से सब कुछ खलियान में तौल देने पर भी अभी उस पर कोई तीन सौ कर्ज था जिस पर कोई सौ रुपये सूद के बढ़ते जाते थे। मंगरू शाह से आज पाँच साल हुए हैं बैल के लिए साठ रुपये लिए थे उनमें साठ दे चुका था। पर वह साठ रुपये ज्यो के त्यों बने हुए थे। दातादीन पण्डित से तीस रुपये लेकर आलू बोए थे आलू तो चोर खोद ले गए और उस तीस के इन तीस बरसों में सौ हो गये... अगर संतोष था तो यही कि यह विपत्ति अकेले उसके सिर पर न थी प्रायः सभी किसानों का यही हाल था। अधिकांश की दशा तो इससे भी बदतर थी।'' ''होरी जैसा किसान खेतों में सपरिवार दिन-रात कार्य करता है। धनिया, गांबर, सोना, रूपा सभी तन-मन से खेतों में काम करते हैं। गर्मी हो या सर्दी बरसात हो या लू चल रही हो उनका लगाव खेतों से रहता है।

उसका समग्र जीवन कृषक-संस्कृति और मर्यादा से जुड़ा हुआ है। अन्न का उत्पादन करके ही वह अपने को धन्य मानता है।

2. शोषण का शिकार-होरी सरल हृदय वाला तथा छल-कपट रहित किसान है। वह इसी बात पर विश्वास करता है कि जीवन में कोई पापपूर्ण कार्य नहीं करना चाहिए। उसमें कुत्सित स्वार्थ नहीं है। वह सच्चा किसान था। उसने किसी के जलते हुए घर में हाथ सेंकना नहीं सीखा था। वह संकट में सभी को अपना समझता था और उसकी सेवा करता था परन्तु उसका सभी शोषण करते थे। उसका शोषण एक ओर तो उसके गाँव में रहने चाले, झिंगुरी सिंह, दुलारी सहुआइन, नौहरी, पटेश्वरी आदि करते है तो दूसरी ओर, वह शहरी शोषक राय साहब का असामी है जिसके विषय में उसके विचार है-

''इसी मिलते जुलते रहने का परसाद है कि अब तक जान बची हुई है। जब दूसरों के पांव तले अपनी गर्दन दबी हुई है तो उन पाँवों को सहलाने में ही कुशल है।'' वह अपने को साहूकारों व ऋणदाताओं का गुलाम समझता है। उस पर पंचायत दण्ड लगाती है क्योंकि उसने झुनिया को आश्रय दिया है वह पंचों के न्याय को सर्वोपरि मानकर अपनी पत्नी धनिया से कहता है-**''पंच में परमेश्वर रहते हैं। उनका जो न्याय है वह सिर-आँखों पर अगर भगवान की यही इच्छा है कि हम गाँव छोड़कर भाग जाएँ, तो हमारा क्या बस?''**

उस पर पंचायत अनावश्यक रूप से 100 रुपये नकद व बीस मन अनाज का दण्ड लगाती है। जो दंड के नाम पर बहुत बड़ा आर्थिक शोषण है। इस कर्ज को चुकाने के लिए उसने दुलारी से 30 रुपये लिए थे। जिसके 100 रुपये देने पड़े। भेगरुशाह से 50 रुपये लिए थे जिसके 300 रुपये देने पड़े। घर भी गिरवी पर रखना पड़ा।

भारतीय किसान सदा ही सामंतवाद और जागीरदार पद्वति का शिकार रहा है। **'' रामसेवक स्पष्ट कहता है थाना पुलिस कचहरी अदालत सब है हमारी रक्षा के लिए लेकिन रक्षा कोई नहीं करता है। जो गरीब है, बेबस है उनकी गर्दन काटने के लिए सभी तैयार रहते हैं। यहां तो जो किसान है वह सबका नरम चारा है।''**

होरी जैसे किसान का इतना शोषण होता है कि वह किसान से मजदूर बन जाता है, परंतु वह एक गाय खरीदने की इच्छा लिए हो दुनिया से कूच कर जाता है।

3. दयालु प्रवृत्ति- होरी प्रारम्भ से ही निर्धन किसान रहा है और उसकी निर्धनता दिनोंदिन बढ़ती जाती है। जमींदार रायसाहब का ही वह शिकार नहीं है बल्कि गाँव के साहूकार और दरोगा तक भी उसका शोषण करते हैं। निर्धनता की भीषण अग्नि में तपकर भी वह दयालु बना रहता है। जब भोला भूसे की कमी के कारण अपनी गाय को बेचने को विवशता प्रस्तुत करता है तो वह दयार्द्र होकर कहता है-**"भूसे के लिए तुम गाय बेचोगे, तो मैं न लूंगा। मेरे हाथ न कट जाएंगे?.... किसी भाई का नीलामी पर चढ़ा बैल लेने में जो पाप है, वह इस समय तुम्हारी गाय लेने में है।''** एक दिन उसका भाई हीरा उसकी गाय को जहर देकर मार कर भाग जाता है तो भी उसके परिवार की पूरी तरह देख-रेख करता है। गाय के मरने पर उसका दण्ड स्वयं भुगतता है। बहुत दिनों के बाद जब हीरा वापस आता है तो उसे अपना छोटा भाई समझ कर उसे छाती से लगा लेता है और कहता है- **''तुम तो बिल्कुल भूल गए हीरा। अब आए? आज तुम्हारी बार-बार याद आ रही थी। बीमार हो क्या?''**

कितना अपनापन उनके ह्रदय में विद्यमान है। वह भूल जाता है कि यह वही हीरा है जिसने उसकी सभी अभिलाषाओं पर अकारण ही पानी फेर दिया था और उसकी गाय को बिना कारण ही मार डाला था।

धनाभाव के कारण ही उसे अपने परिवार पर तरस आता है। वह अपने पुत्र गोबर के विषय में बार-बार सोचता है कि यदि यह गाय खरीद पाता तो गोबर के मुंह पर लालिमा आ जाती। यही गोबर जब भोला की विधवा पुत्री झुनिया से प्रेम करके उसे गर्भवती कर छोड़कर भाग जाता है तो उसका स्नेह भरा इदय झुनिया को आश्रय देता है। वह उसे अपना लेता है। भले ही, समाज ने उसका हुक्का-पानी बन्द कर दिया हो या उसको पंचों के कहने पर, भारी रण्ड भुगतान करना पड़ा हो। सिलिया से यद्यपि उसका विशेष सम्बन्ध नहीं, परंतु दुखियारी सिलिया उसकी कृपा और दया के सहारे उसके घर का आश्रय लेती है। बेचारा होरी स्वयं दुखी रहता है पर दूसरों को दुःखी देखना नहीं चाहता। वह सदा दयालु रहता है।

4. मर्यादा रक्षक-होरी सामाजिक मर्यादा का पूर्ण रूप से पालन करता है। यह उसके चरित्र की सबसे बड़ी खूबी है। । उसे भगवान भाग्यवाद, ब्राह्मण कथित बड़े लोगों पर पूरा विश्वास है। यह अनपढ़ किसान है परन्तु धर्म से डरता है, बिरादरी से भयभीत रहता है. ईश्वर से डरता है और सरकारी हाकिमों से सदा आतंकित रहता है। वह दातादीन जैसे धूर्त की भी पूजा इसलिए करता है क्योंकि वह ब्राह्मण है। उससे जो भी रुपया उधार लिया है उसको चुकाना उसका परम धर्म है। लेखक इस विषय में कहता है- **''होरी के पेट में धर्म की क्रान्ति मची हुई थी। यदि ठाकुर या बनिए के रुपये होते तो ज्यादा चिन्ता न होती, लेकिन ब्राह्मण के रुपये थे उसकी एक पाई भी दब गई तो हड्डी तोड़कर निकलेगी।''** इसलिए वह दातादीन की पाई-पाई चुकाने के लिए वचनबद्ध है। यह समाज के नियमों का पालन करके उस पर चलना ही अपना परम धर्म समझता है। वह कहता है **''इस जन्म में तो कोई आशा नहीं है भाई। हम राज नहीं चाहते, भोग-विलास नहीं चाहते। खाली मोटा-झोटा पहनना और मोटा-झोटा खाना और मरजाद के साथ रहना चाहते हैं पर वह भी नहीं सधता।''**

मर्यादा का पालन करना होरी ही अति विशिष्टता भले ही कही जा सकती है परन्तु मर्यादा रक्षा का भाव प्राचीन काल से ही भारत में संस्कार रूप में चला आ रहा है। वे ही संस्कार उसमें कूट-कूट कर भरे हुए हैं। उनका उल्लंघन करना उसके स्वप्न में भी सम्भव नहीं है। वह यही जानता है कि मर्यादा का पालन करने वाले समाज में इज्जत पाते हैं और भगवान उनकी रक्षा करता है। मर्यादा की रक्षा के लिए उसने अपने जीवन में कौन से कष्ट नहीं उठाये। शायद उसको इस मर्यादा की रक्षा के लिए भारतीय सामाजिक संस्कृति के अनुसार उसकी मृतदशा में गोदान किया जाता है।

5. निर्धनता का शिकार - होरी का समस्त जीवन गरीबी में बीता है। निर्धनता सदा अभावभरी रहती है। उसमें अनेक समस्याएँ मुँह बायें खड़ी रहती हैं। प्रेमचन्द ने स्वयं निर्धनता युक्त जीवन व्यतीत किया था। अत: वे निर्धनता से अभिशप्त जीवन को भली-भांति जानते थे। होरी भी गरीबी के कारण अनेक समस्याओं को झेलता है। छोटी-छोटी बातों के लिए उसे परेशानी उठानी पड़ती है। बार-बार ऋण लेना पड़ता है। धनिकों व साहूकारों से गालियाँ सुननी पड़ती हैं, मार खानी पड़ती है। ऋण चुकाने के लिए उसके खलियान में ही फसल उठ जाती है, जमीन बिक जाती है. बैल नहीं रहते। अपनी छोटी बेटी रूपा का विवाह एक अधेड़ व्यक्ति से करके यह उससे 200 रुपये लेता है। पर वह क्या करें? निर्धनता/ उसे बराबर पीस रही है। एक समस्या के समाधान के लिए वह ऋण लेता है तो उसका ब्याज इतना हो जाता है कि अन्य ऋण लेना पड़ता है। वह जानता है कि निर्धनता अभिशाप है परन्तु वह उसे कैसे दूर करे ? मरते दम तक निर्धनता उसका साथ नहीं छोड़ती। वह जानता है कि मरने पर ही उसकी दुर्दशा समाप्त हो सकती है। अत: अंत समय में वह अपनी पत्नी धनिया से कहता है-**''धनिया कब तक जिलायेगी? सब दुर्दशा तो हो गई। अब मरने दे।''** उसका जीवन परिश्रम करने और दु:ख भोगने के लिए है। वह गोबर से कहता है-**''यह बात नहीं बेटा। बड़े-छोटे भगवान् के घर से बनकर आते हैं। सम्पत्ति तपस्या से मिलती है। जिन्होंने पूर्व जन्म में जैसे कर्म किए थे उसका आनन्द भोग रहे है। हमने कुछ सींचा नहीं तो भोगे क्या?''** यह भारतीय दर्शन भारत में प्राचीन काल से चला आया है कि जो पूर्व जन्म में जैसा कर्म करता है उसको वैसा ही फल मिलता है। होरी भी यही समझता है कि उसकी

निर्धनता उसके पूर्व जन्मों का फल है। इसी कारण उसे निरंतर ऋण लेने पड़ते हैं। वह ब्याज माफ करवाने के लिए साहूकार के सामने गिड़गिड़ाता है. परन्तु क्या करे? उसका लक्ष्य तो एकमात्र खेती करना है। मालिकों की खुशामद करता है। बेटा गोबर व धनिया उसे विद्रोह करने को कहते हैं परन्तु वह विद्रोह में भलाई नहीं समझता। वह जानता है कि खुशामद करने और मिन्नतें करने से भी उसका निर्वाह हो सकता है। होरी जानता था कि घर में रुपये नहीं हैं, अभी तक लगान नहीं चुकाया जा सका है। विसेसर साहू का देना, भी बाकी है जिस पर आने रुपये का सूद चढ़ रहा है लेकिन दरिद्रता में जो एक प्रकार की अदूरदर्शिता होती है वह तकाजे, गाली और मार से भी भयभीत नहीं होती। वह तो आजीवन उसे गरीब ही बनाए रखती है। यह उस बेचारे की नियति है। होरी अकेला ही ऐसा किसान न था। प्रेमचन्द के शब्दों में– **''यह दशा कुछ होने की ही नहीं थी। सारे गाँव में यह विपत्ति थी। ऐसा एक भी आदमी नहीं था जिसकी रोनी सूरत न हो। मानो उनमें प्राणों की जगह बेदना बैठी थी, जो उन्हें कठपुतलियों की तरह नचा रही हो। चलते-फिरते थे, काम करते थे, पिसते थे, घुटते थे। इसलिए कि पिसना और घुटना उनकी तकदीर में लिखा था। जीवन में न कोई आशा, न कोई उमंग, जैसे उनके जीवन सोते सुख गए हों और सारी हरियाली मुरझा गई हो।''**

6. मानवता की मूर्ति–होरी का समस्त जीवन पेटभर रोटियाँ अर्जन करने में ही व्यतीत हो जाता है। वह जीवन भर अपने परिवार के लिए चिन्तित रहता है। वह लुटता है, पिटता है, महाजनों और दरोगा की गालियाँ खाता है. झिड़कियां सहन करता है अपने भाईयों की अच्छी-बुरी सुनता है। कभी धनिया उसे फटकारती है तो कभी गोबर उसे उल्टी सीधी सुनाता है। सभी कुछ सहन करने पर भी परिश्रम करना व खेती करना ही उसकी प्रवृत्ति है, वह सच्चा किसान है। उसका जीवन ही इतना सहनशील है कि उसने सुख का समय न तो स्वयं देखा और न उसकी पत्नी, पुत्र, पुत्रियों और पुत्र-वधु ने। वह सरल ह्दय वाला व्यक्ति है। उसके ह्दय में मानवता के प्रति प्रेम है। पंचायत उसे अनावश्यक दण्ड देती है, परन्तु वह झगड़ा नहीं करता। दूसरों की जली-कटी बातें सुनकर भी चुप रहता है। अपनी पत्नी धनिया के झगड़ने और डांटने पर भी उसके प्रति ममत्व रखता है। भयंकर संकटों का सामना करता हुआ भी वह मानव मात्र के प्रति अपनी सहृयता और सहानुभूति नहीं छोड़ता। उसके भाई उसका विरोध करते हैं, परन्तु वह सदैव दूसरों को सहायता करने को तैयार रहता है।

एक बार रायसाहब के यहाँ पठान का वेश बनाकर मेहता आता है और बन्दूक तान लेता है उस समय अपने मालिक रायसाहब की रक्षा के लिए अपने प्राणों की बाजी लगाकर होरी भिड़ जाता है और सबकी रक्षा करता है। वह जीवन भर शोषण की चक्की में पिसता रहता है, परन्तु मानवता को नहीं छोड़ता। दूसरे उसके प्रति अनैतिक है परन्तु भूख और निर्धनता से पिसकर भी वह अनैतिकता नहीं अपनाता। विषम परिस्थितियाँ उसे अपने जाल में फंसाती है. वह इनमें फंसकर तड़फना जानता है, मरना जानता है, परन्तु अपनी मानवीय संस्कृति को कदापि नहीं छोड़ता। प्रेमचन्द होरी जैसे निर्धन, असहाय व सरलहृदयी किसानों की दशा को देखकर कहते हैं– **''इनका देवत्व ही इनका दुर्दशा का कारण है। काश ये आदमी ज्यादा और देवता कम होते, यों न ठुकराए जाते.....कोई छल इनके सामने सबल रूप में आ जाए उनके सामने सिर झुकाने को तैयार। उनका निरीहता जड़ता की हद तक पहुंच गई उनमें जैसे अपने जीवन की चेतना ही लुप्त हो गई है।''**

7. प्राचीन संस्कृति का रक्षक– होरी भारतीय संस्कृति में पला हुआ किसान है। प्राचीन भारतीय मान्यताएँ उसे मानो प्राचीन संस्कृति से धरोहर के रूप में मिली हैं। उसने अपने जीवन में भारतीय पुरानी पीढ़ी की मान्यताओं को स्वीकार किया है। समाज उसका शोषण करता है, वह कुछ नहीं कहता। उसकी विचारधारा है–**''सलामी करने न जाए तो रहें कहाँ? भगवान् ने जब गुलाम बना ही दिया है तो अपना क्या बस है?''** रायसाहब को वह अपना मालिक समझता है और जाति बिरादरी को सर्वोपरि मानता है। गाँव की बिरादरी उसके साथ अन्याय करती है, तो वह कहता है–**''हम सब बिरादरी के चाकर हैं उसके बाहर नहीं जा सकते। वह जो डांड लगाती है, उसे सिर झुकाकर मंजूर कर। नक्कू बनकर जीने से तो गले में फांसी लगा लेना अच्छा है। आज मर जायें तो बिरादरी ही तो इस मिट्टी को पार लगायेगी।''**

इसी कारण वह बिरादरी के आर्थिक दंड को चुपचाप स्वीकार करता है। धर्म का अति अंधविश्वासी और समाज की मर्यादा का मानो रक्षक है। वह जीवनपर्यन्त यही समझता रहा है कि जो धर्म, नीति परम्परा कह रही है वह समाज कहता है। वह इस परम्परा का पालन करते हुए अपनी दुखी स्थिति को अपनाता ही नहीं बल्कि इसे अपनी नियति मानता है। भारतीय प्राचीन परम्परा में जिस ईश्वरवाद, भाग्यवाद, पुण्यवाद, सच्चाई, मर्यादा आदि को महत्त्व दिया जाता है होरी उसी संस्कृति का पुजारी है।

8. गाय के प्रति श्रद्धालु – होरी एक किसान है और गाय व बैल किसान का धन होते हैं। उसके पास गाय नहीं है इसका उसे खेद है। यह चाहकर भी गाय प्राप्त नहीं कर पाता। यदि एक बार उसके घर गाय आ भी जाती है तो उसका भाई उसे जहर खिला हता है और वह चल बसती है। उसकी हार्दिक अभिलाषा है कि उसके घर गाय हो उसका बेटा गोबर गाय का दूध पीकर मोटा–ताजा हो जाए परन्तु उसको गऊ प्राप्ति की अभिलाषा पूर्ण नहीं हो पाती। जौवन के अन्तिम समय में वह रात–दिन मेहनत करता है जिससे घर में कुछ सम्मति आ जाएं और वह अपने पौत्र के लिए एक गाय ले आये। परन्तु विधाता को यह स्वीकार्य नहीं है। मरते दम तक भी वह गाय को नहीं पा सका। मृत्यु की अवचेतन अवस्था में वह बुड़बुड़ाता हुआ कहता है **''तुम आ गए गोबर? मैंने मंगल के लिए गाय ले ली है। वह खड़ी है, देखो।''** वास्तव में यह उसकी मृत्यु थी जो बार–बार उसके सामने गाय का चित्र आता पा और उसे लगता था कि जैसे गोबर के पुत्र मंगल के लिए गाय आ गई। वास्तव में वह उसकी मृत्यु थी। मरने से पूर्व वह अपनी पत्नी धनिया से कहता है– **''मेरा कहा सुना माफ करना धनिया! अब जाता हूँ। गाय की लालसा मन में ही रह गई।''**

वस्तुत: वह गाय माता को अपने घर रखने की तीव्र अभिलाषा रखता था जो पूर्ण नहीं हो पाती।

इस प्रकार होरी 'गोदान' उपन्यास का नायक है जो जीवन भर परिस्थितियों का सामना करता है। समाज की मर्यादा का पालन करता है। उसके साथ अन्याय किया जाता है, परन्तु वह किसी के प्रति भी अनैतिक व्यवहार नहीं करता। निर्धन होकर भी वह दयालु है। शोषक वर्ग उसका शोषण करते हैं तो भी वह उनकी रक्षा करता है। परिवार के प्रति यह पूर्णत: उत्तरदायी है। इसी कारण प्रेमचन्द उसे जीवन में हारा हुआ नहीं मानते। जो प्राणान्त तक विषम परिस्थितियों से जूझता रहे उसे हारा हुआ नहीं कहा जा सकता। अत: प्रेमचन्द उसके सम्बन्ध में कहते हैं– **''जीवन के सारे संकट, सारी निराशाएँ मानो उसके चरणों पर लौट रही थीं। कौन कहता है. जीवन-संग्राम में वह हारा है? यह उल्लास, यह यह पुलक क्या हार के लक्षण है? इन्हीं 'हारों' में उसको विजय है।''**

- **मालती का चित्रण**

उत्तर – मालती गोदान की नागरिक–कथा–पात्रों में से एक है। यद्यपि उसकी आय सीमित है और परिवार का बहुत बड़ा बोझ उसके कधों पर है परन्तु वह तथाकथित शहर के बड़े लोगों से सम्बन्ध रखती है। वह धनिकों जैसी अदाएँ रखती है। उसके वृद्ध पिता अपाहिज हैं जिन्हें मांस और शराब प्रतिदिन चाहिए। उसकी दो बहनें हैं–सरोज और वंरदा। उनकी शिक्षा का भार भी मालती पर है। तीनों बहनें अविवाहित हैं। मालती एक डॉक्टर है जिस आधार पर वह अपने परिवार की तन–मन–धन से सेवा करती है। वह सोचती है कि यदि वह विवाह कर ले तो इस परिवार का भार कौन संभालेगा? परिवार के कार्यों से थककर वह मित्र–मण्डली में आ जाती है और मन बहलाती है। वह इंग्लैण्ड से डॉक्टरी पढ़कर आई है अत: वह पुरुषों में भी बिना झिझक बैठती है और उनके साथ शिकार खेलने, शराब पीने व अन्य आमोद–प्रमाद के प्रोग्राम का उत्सव मनाने को अजीब नहीं मानती। विदेशी शिक्षा के प्रभाव के कारण वह मित्रमण्डली में रसिक तथा चंचल बनी रहती है। उसकी मित्र–मण्डली में मिल मालिक खन्ना, प्रो. मेहता, जमींदार राय साहब, मिर्जा खुर्शेद तथा पत्रकार ओंकारनाथ आदि हैं। समय–समय पर ये परस्पर मिलते हैं। समस्त उपन्यास में मालती की भूमिका को लेकर उसके चरित्र को इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है–

1. तितली रूपा– मालती का बाहय रूप तिवलो के समान है अर्थात वह पुरुषों को अपनी ओर आकर्षित करती है। वह पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित नारी है। इसलिए पुरुषों से मित्रता करना, उनसे हँसी–मजाक करना, मन बहलाना

आदि उसके लिए नयी बात नहीं है। वह इस मित्र मण्डली के सदस्यों को धीरे-धीरे जान गई है कि कौन कितने पानी में है? विदेशी-शिक्षा ने उसे तितली बना दिया है। वह ऊँची एड़ी का जूता पहनती है और सदा मुस्कराकर बातें करती है। वह पुरुषों को आकर्षित करके अपना मन बहलाती है। मनोरंजन और हास-विलास उसके जीवन में छाया हुआ है। मिल मालिक खन्ना उसकी मुस्कराहट पर लट्टू है परन्तु वह प्रो. मेहता की ओर आकर्षित है। जब खन्ना उसके विषय में अपनी पत्नी गोविन्दी से बात करते हैं तो गोविन्दी यहाँ तक कह देती है-**''तुम सात जन्म नाक रगड़ों तो भी वह तुमसे विवाह न करे। तुम उसके लट्टू हो, तुम्हें घास खिलाएगी कभी-कभी तुम्हारा मुँह सहलाएगी, कभी तुम्हारे पुट्ठों पर हाथ फेरेगी, लेकिन इसलिए कि तुम्हारी सवारी गाँठें। तुम्हारे जैसे एक हजार बुद्धू उसकी जेब में है।''** यह सत्य है मालती सभी का मन बहलाने वाली नारी है, समर्पित होने वाली नारी नहीं है। उसकी बाह्य साज-सज्जा, रूप-रंग व चटक-मटक केवल दूसरों को आकर्षित करने के लिए है। वह चंचल स्वभाव वाली नारी है। वह लालसा भरे नेत्रों से देखती है तथा एक फैशन-परस्त नारी है। ओंकारनाथ, मिर्जा, खन्ना, राय साहब सभी उसे अच्छी दृष्टि से नहीं देखते हैं। उसके बाहरी व्यवहार को देखकर सभी लुभाते हैं परन्तु वह हँसती इसलिए है कि इसके भी उसे दाम मिलते हैं उसका चहकना और चमकना इसलिए नहीं कि वह चहकने और चमकने को जीवन समझती है या उसने निजत्व को अपनी आँखों में इतना बढ़ा लिया है कि जो कुछ करे, अपने लिए ही करे। नहीं, वह इसलिए चहकती है और विनोद करती है कि इससे उसके कर्तव्य का भार हलका हो जाता है मालती के इस प्रकार के व्यवहार व आचरण से यही ज्ञात होता है कि वह बाहर से तितली के समान रंगीली है।

2. मृदुभाषिणी-मालती के व्यवहार की यह विशेषता है कि वह बोलने में बड़ी चतुर है। कभी भी किसी से कटु शब्द नहीं कहती। उसके मन में न किसी से ईर्ष्या है न द्वेष। कर्त्तव्य-परायण नारी होने के नाते वह सभी से नेक व्यवहार करती है। वह हाजिर जवाब है। पुरुष-मनोविज्ञान को भली-भांति जानती है। उसका अपना स्वाभिमानी, मर्यादा है। वह डॉक्टर है अत: प्रतिभाशाली भी है। उसका हृदय स्नेह, ममता, करुणा व संवेदना से है। उसके पास बोलने की कला है। अपनी मित्र-मण्डली को सदा वह हँसाती रहती है। कभी कभी उन्हें उल्लू भी बना देती है। एक बार भरी मित्र-मण्डली में उसने ओंकारनाथ को मदिरा पान करा दिया था वह बड़े स्नेह से ओंकारनाथ से कहती है-**''एक रमणी के हाथों से शराब का प्याला पाकर कौन भद्र पुरुष होगा जो इन्कार कर दे? यह तो नारी जाति का अपमान होगा, उस नारी जाति का, जिसके नयन वालों से अपने हृदय को बिंधवाने की लालसा पुरुष-मात्र में होती है। जिसकी अदाओं पर मर मिटने के लिए बड़े-बड़े महर्षि लालायित रहते हैं। लाइए, बोतल और दौर चलने दीजिए। इस महान् अवसर पर किसी तरह की शंका, किसी तरह की आपत्ति राष्ट्र, द्रोह से कम नहीं।''** इस दशा में वह ओंकारनाथ को शराब पिला देती है। उसके वचनों में मानो जादू है जिससे वह मुस्कराकर बातें करती है। वह उसकी ओर आकर्षित हो जाता है। प्रेमचन्द ने उसके चरित्र का पाश्चात्य संस्कृति की दृष्टि से देखा है जहाँ नर और नारी एक साथ खुलकर मिलते हैं, कोई झिझक नहीं रहती। एक दूसरे के मित्र रहते हैं, चुम्बन या आलिंगन कोई सामाजिक दोष नहीं। जहाँ नारी का आभूषण लज्जा नहीं बल्कि स्वच्छन्दता है। मालती आमोद-प्रमोद भरा जीवन व्यतीत करती है, इसलिए वह मीठी-मीठी बातें बनाकर सभी को लुभा लेती है। इसलिए वह मृदुभाषिणी है।

3. विलासिनी-भारतीय सभ्यता में। जिसें विलास कहते हैं पाश्चात्य संस्कृति में वह आमोद-प्रमोद है। मिस मालती पाश्चात्य सभ्यता को ओढ़े हुए हैं। अत: वह ओंकारनाथ को शराब पिलाती है। मालती ने ओंकारनाथ को, अपने हाथों से लाल विष से भरा गिलास दिया है और उन्हें **''कुछ ऐसी जादू भरी चितवन से देखा कि उनकी सारी निष्ठा, सारी वर्ण-श्रेष्ठता काफूर हो गयी। ओंकारनाथ में रसिकता आ गयी। वह मुस्कराकर कहता है कि मैंने अपने धर्म की थाती मिस मालती के कोमल हाथों में सौंप दी है और मुझे विश्वास है कि वह उसकी यथोचित रक्षा करेगी। उनके चरण-कमलों के इस प्रसाद पर मैं ऐसे एक हजार धर्मों को न्यौछावर कर सकता हूँ।''** वास्तव में यह मालती का विलासी और कामुक व्यवहार था जो ओंकारनाथ जैसा व्यक्ति भी बहक गया। उसने मिल मालिक खन्ना को अपनी ओर आकर्षित किया है जिस कारण खन्ना और उसकी पत्नी गोविन्दी में मनमुटाव पैदा हो जाता है।

वह प्रो. मेहता को भी अपने प्रेम–जाल में फंसाने का प्रयत्न करती है। जब मालती व प्रो. मेहता शिकार खेलने जाते हैं तो उसे अवसर मिलता है कि वह अपने आन्तरिक प्रेम को प्रकट करके किसी प्रकार प्रो. मेहता को अपना बना ले। वह बार–बार अपने प्रेम का संकेत करती है परन्तु दर्शनशास्त्र के प्रो. मेहता दार्शनिक बातें ही करते रहते हैं। उसे कभी–कभी बड़ा आक्रोश भी होता है कि प्रो. मेहता कैसे प्राणी हैं जो एक नारी के प्रेम को नहीं समझ रहे हैं। वह मेहता का हाथ पकड़कर कहती है–**''फिलासफरों को शायद हृदय नहीं होता। तुमने अच्छा किया, विवाह नहीं किया। उस गरीब को मार ही डालते, मगर मैं यों न छोडूंगी।''** वह अनेक बार अपनी प्रेम भावना को कई रूपों में व्यक्त करती है। जब मेहता उस पर ध्यान नहीं देते तो वह मेहता में बड़ा अजनबीपन देखती है और कहती है–**''मैंने तुम्हारे जैसा आदमी कभी न देखा था, बिल्कुल पत्थर हो। खैर, आज सता लो, जितना सवाते बने, मैं भी कभी समझूंगी।''** मालती की यह विलासिता अपनी मित्र भण्डली पर छाई हुई है। वह कम या अधिक रूप में सभी को आकर्षित करती है।

4. नवयुग की नारी–मालती में, भारतीय नारी के समान लज्जा, शोल संयम व आदर्श नहीं है। जैसे भारतीय नारी पर–पुरुष की छाया से दूर रहना ही उचित समझती है वैसा उसमें कुछ नहीं। वह तो पाश्चात्य संस्कृति में पली नहीं है और वैसा ही आचरण करती है। ऊँची एड़ी के जूते पहनती है। डॉक्टरी पड़कर उसी पेशे को उसने अपना रखा है। बड़े लोगों से मित्रता करती है उनकी मण्डली में वह खूब जमती है और उसके यहां आना–जाना, उनको अपना बनाना आदि उसके चाव हैं। प्रेमचन्द के शब्दों में–**''नवयुग** की सात प्रतिमा है। गाल कोमल, पर चंचलता कूट–कूटकर भरी हुई। झिझक या संकोच का कहीं नाम वहीं, मेकअप में प्रवीण, हाजिरजवाब, पुरुष–मनोविज्ञान की अच्छी जानकार, आमोद–प्रमोद को तुत्व समझने वाली, लुभाने और रिझाने की कला में निपुण, जहाँ आत्मा का स्थान है वहां प्रदर्शन और जहाँ हृदय का स्थान है वहाँ हाव–भाव। मनोद्‌गारों पर कठोर निग्रह, जिसमें हँसी मजाक करना, प्रेम प्रदर्शन करना, वास्तव में विदेशी शिक्षा और घरेलू–परिस्थितियों ने उसे इस प्रकार का जीवनयापन करने को बाध्य कर दिया है। वह भले ही भारतीय नारी हो परंतु पाश्चात्य शिक्षा के कारण उसका बाहरी रूप रंग, व्यवहार, संस्कार आदि बदल गए हैं। प्रेमचन्द ने उसके इसी परिवर्तित रूप को यहाँ पर चित्रित किया है **''कमल की भांति खिली, दीपक की भाँति दमकती, स्फूर्ति और उल्लास की प्रतिमा–सी निश्शंक, निर्द्धन्द्ध मानो उसे विश्वास है कि संसार में उसके लिए आदर और सुख का द्वार खुला हुआ है।''** वह नवयुग की प्रतिमा है। जब प्रो. मेहता खान का वेश धारण करके आते है उसे देखकर मेहता को कोई नहीं पहचानता, सभी डर जाते है। वह मालती को उठा ले जाने की बात करता है। मालती के सौन्दर्य पर आसक्त है। ऐसे डरावने वातावरण में भी मालती के मनोभाव कुछ और ही थे। **''खान के लालसा प्रदीप्त नेत्रों ने उन्हें आश्वस्त कर दिया था और अब इस काण्ड में उन्हें मनचलेपन का आनन्द आ रहा था। उनका हृदय कुछ देर इन नस्पंगवों के बीच में रहकर उसके बर्बर प्रेम का आनन्द उठाने के लिए ललचा रहा था। शिष्ट प्रेम की दुर्बलता और निर्जीवता का उन्हें अनुभव हो चुका था। आज अक्खड़ पठान के प्रेम के लिए उनका मन दौड़ रहा था। जैसे संगीत का आनन्द उठाने के बाद कोई मस्त हाथियों की लड़ाई देखने के लिए दौड़े।''** इस प्रकार से प्रेमचन्द का चित्रण यह स्पष्ट करता है कि वह नवयुग की नारी है।

5. भीतर से मधुमक्खी–जैसे मधु कुखी का काम मधु संचय करना है, उसी प्रकार मालती का काम हँसी के द्वारा भी जीवन को साधक बनाता है। **''उसके जीवन में हंसी ही हंसी नहीं है, केवल गुड़ खाकर कौन जी सकता है और वह जिए भी तो वह कोई सुखी जीवन न होगा। वह हंसती है कि उसे इसके लिए भी दाम मिलते हैं इससे उसके कर्त्तव्य का भार हल्का हो सके।''** वह खन्ना जैसे धनिकों का मन बहलाकर उनसे धन प्राप्त करती है, उपहार लेती है। अखबार के सम्पादक ओंकारनाथ को शराब पिलाकर हंसी–हंसी में ही एक हजार की बाजी मार जाती है। इन धनिकों की मण्डली में खाना–पीना, मस्ती करना, उपहार प्राप्त करना, पार्टियाँ लेना आदि उसके कार्य पूरे हो जाते हैं। उनके यहाँ एक डॉक्टर के रूप भी कार्य करती है। वह पाश्चात्य सभ्यता में पली हुई, चाहे कैसी ही नवयुगीन प्रतिमा हो परन्तु वह अंतरंग से एक भारतीय नारी है। उसमें सेवा की भावना, कर्तव्य, गम्भीरता, दया, परिवार की सुरक्षा

आदि सभी गुणों का समावेश है। पुरुषों को हाव-भाव दिखाकर उनको लुभाना भले ही उसे करना पड़ता हो परन्तु हृदय से वह यह नहीं चाहती। वह तो प्रेम का ऐसा आश्रय चाहती है जिससे वह विवाह के बन्धन में बन्धकर स्थायी रूप से अपना जीवनयापन कर सके। वह भी प्रेम-बन्धान में बैन्धकर स्त्री का जीवन व्यतीत करना चाहती है। उसका मधुमक्खी का मन पूर्णरूप से मेहता के गुणों के प्रति समर्पित है। वह उसे जी-जान से चाहती है। उसके प्रत्येक गुण व विशेषता उसे लालायित करते हैं कि उसमें वह मधु है जो प्राप्य है। मूलत: वह उसी के लिए प्रयासरत है। वह मेहता से साष्ट कहती है- ''तुमने सदैव मुझे परीक्षक की दृष्टि से देखा है, कभी प्रेम की आँखों से नहीं मैं क्यों अस्थिर और चंचल हूँ इसीलिए कि मुझे वह प्रेम नहीं मिला जो मुझे स्थिर और अचंचलत्व बनाता। इसी आधार पर वह अपने जीवन को बदल देती है और अन्त में वह पुरुषों के मनोविनोद का संचय नहीं करती बल्कि सच्चे प्रेम और नारी के आदर्श गुणों का संचय कर मधुमक्खी बन जाती है।

● धनिया का चरित्र-चित्रण

उत्तर-धनिया उपन्यास के प्रमुख पात्र होरी को पत्नी है। वह होरी के जीवन-व्यापी संघषों को झेलती है परन्तु निर्धनता और अभाव में इसका वैवाहिक जीवन व्यतीत हुआ है। अत: छत्तीस वर्ष की अवस्था में भी बुढ़िया जैसी दिखाई पड़ती है। प्रेमचन्द का कथन है- **''सारे बाल पक गये थे, चेहरे पर झुर्रियां पड़ गई थीं सारी देह ढल गयी थी, सुन्दर गेहुँआ रंग सांवला हो गया था और आँखों में कम सूझने लगा था। पेट की चिन्ता के कारण ही तो कभी जीवन का सुख न मिला। जिस गृहस्थी में पेट भरने को रोटियाँ भी न मिलें, उसके लिए इतनी खुशामद क्यों? इस परिस्थिति में उसका मन बराबर विद्रोह किया करता था।''**

वह अपनी गृहस्थी का पूरा ध्यान रखती है। अपने पति होरी, बेटे गोबर पुत्री सोना व रूपा सभी की देख रेख करती है। वह खेतों में कार्य करती है और होरी के के मजदूर बनने पर मजदूरी भी करती है। भारतीय किसान की पत्नी सदा अपने पति के कार्यों में कंधे से कंधा मिलाकर कार्य करती है। वही दशा धनिया की है। सच्चे अर्थों में वह भारतीय कृषक समाज में नारी वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है। उसके चरित्र में सामान्यत: निम्नलिखित विशेषताएँ है-

1. पतिपरायणा नारी-धनिया एक पतिव्रता नारी है। वह होरी की जीवनसंगिनी है। होरी पर चाहे कितनी ही विपत्तियाँ आई हो वह उसकी ही बनकर रहती है। **''कभी किसी ने उसे किसी दूसरे की ओर ताकते नहीं देखा। पटेश्वरी ने एक बार कुछ छेड़-छाड़ की थी। उसको ऐसा मुंह तोड़ जवाब दिया कि आज तक नहीं भूले।''** वह अपने पति की दयनीय अवस्था व स्थिति में कभी-कभी दुखी होकर उसकी बातों का विरोध तो करती है परन्तु शीघ्र ही अपने पति होरी के प्रति उसका प्रेम जाग्रत हो जाता है और वह पश्चाताप करती है। वह पति के विरुद्ध एक भी अशुभ व कटु बात सहन नहीं करती। उपन्यास के प्रारम्भ में होरी मजाक-मजाक में कहता है- **''साठ साल तक पहुँचने की नौबत न आने पाएगी धनिया! इसके पहले ही चल देंगे।'' तो उसके हृदय को बड़ा आघात पहुँचता है वह जानती है कि ''विपन्नता के इस अथाह सागर में सुहाग ही वह तृण है जिसे पकड़कर वह साागर को पार कर रही है इसलिए मानो वह अपने नारीत्व के सम्पूर्ण तप और व्रत से अपने पति को अभयदान देती है।''**

यह इतनी अभावग्रस्त है कि उसकी तीन सन्तानें बचपन में ही चल बसी है। फिर भी वह हार ही मानती। एक बार होरी बीमार पड़ जाता है तो वह उसकी जी-जान से सेवा करती है। उसके हृदय में प्रेम का उदराल रूप है यह कहती है- **''पति जब मर रहा हो तो उससे कैसा बैर। ऐसी दशा में तो बैरियों से भी बैर नहीं रहता, वह तो पति है। लाख बुरा हो, पर उसी के साथ उसने जीवन के पच्चीस साल काटें हैं। सुख लिया है तो उसी के साथ, दु:ख भोगा है तो उसी के साथ अब तो चाहे अच्छा हो या बुरा अपना है।''** धनिया में पति के प्रति अपनात्व व ममत्व की भावना है। वह जी-जान से उसकी सेवा करती है। होरी भी धनिया जैसी पतिपरापणा नारी को पाकर अपने को धन्य मानता है और कहता है- **''सेवा और त्याग की देवी। जबान की तेज, पर मर्यादा रक्षा के लिए अपना सर्वस्व होम कर देने को तैयार।''** वह आजीवन अपने पति की तन-मन से सेवा करती रही। उपन्यास के अन्त में जब होरी मृत्यु के निकट पहुँचता है तो वह पछाड़ खाकर गिर पड़ती है। लेखक का कथन है-चेतना आने पर सब कुछ समझकर भी धनिया आशा की मिटती हुई छाया को पकड़े हुए थी। आँखों में से आँसू गिर रहे थे।

2. संघर्षशीला–धनिया ने आजीवन संघर्ष करना सीखा था। लेखक कहता है– **'क्या करें? भाग्य में कुछ यहीं बदा थी। विवाह के बाद उसने अपने देवरों का पालन-पोषण करने में जीवन बिताया फिर होरी जैसे अल्हड़ और नासमझ पति को पाकर उसका जीवन चिंतित रहने लगा। एक के बाद एक सन्तान पैदा की परन्तु निर्धनता ने तीन लड़कों को उससे छीन ही लिया।'** अन्याय व अत्याचार के समक्ष वह झुकना नहीं जानती। वह मर्यादा पालन करना चाहती है परन्तु अन्याय का विद्रोह करती है। जब होरी के घर गाय आती है तो उसके भाई ताना मारते हैं कि हमारे पैसे दाब-दाब कर ही अब गाय खरीदी जा रही है। इस पर धनिया क्रोधित हो उठती है और होरी से कहती है– **''मैं अभी जाकर पूछती हूँ कि तुम्हारे बाप कितने रुपये छोड़कर मरे थे। दाड़ीजारों के पीछे हम बरबाद हो गये, सारी जिन्दगी मिट्टी में मिला दी। पाल-पोसकर बड़ा किया और अब हम बेईमान है। मैं कहे देती हूँ अगर गाय घर से निकली तो अनर्थ हो जाएगा। रख लिए हमने रुपये, दबा लिए, बीच खेत में दबा लिए।''** उसका यह आक्रोश सर्वथा उपयुक्त है उसके अपने ही, उस पर झूठा आरोप लगा रहे है। उसे देखकर जल रहे हैं।

धनिया का जीवन दारुण दु:खों से भरा है उसकी आर्थिक परवशता, विषमता और अभाव-ग्रस्तता ने उसे तोड़ डाला है। इस पर उसका पति बुद्धू बनकर समाज में लुट रहा है। कभी साहूकारों से रुपया उधार लेकर उन्हें एक के दस देता है तो कभी अपनी मान मर्यादा के लिए घर गिरवी रख देता है। उसकी इस नादानी और दुर्बुद्धि ने धनिया को संघर्ष करना सिखा दिया है। वह यदि लड़ती है तो परिवार के लिए, वह यदि क्रोध करती है तो बच्चों के लिए। उसने कभी जीवन में सुख नहीं देखा। एक विपत्ति पर दूसरी विपत्ति एक के बाद दूसरा दु:खड़ा, यही उसके संघर्षमय जीवन की कहानी है।

3. स्वाभिमानिनी–धनिया भले ही निर्धन हो, परन्तु स्वाभिमान की भावना उसमें कूट-कूट कर भरी है। बड़ी बेटी सोना के विवाह में खूब खर्च करती है क्योंकि वह अपनी मरजाद का निर्वाह करना चाहती है 'रुपया पैसा हाथ का मैल है। उसके लिए कुल मरजाद नहीं छोड़ी जाती जो कुछ हमसे हो सकेगा, देंगे और महतो को लेना पड़ेगा। जब वह गर्भवती झुनिया को अपने घर में पनाह देती है तो बिरादरी उन पर ढांड लगा देती हैं वह पचों को फटकारते हुए कहती है कि मैं डांड में न तो एक दाना दूंगी, न एक भी पैसा। जिसमें शक्ति को वह आकर मुझसे ले ले। वह सभी को ललकारती है और होरी को भी मना कर देती है। जब होरी पंचों की बात को सर्वोपरि बताता है तो वह कहती है– **''हमें नहीं रहना बिरादरी में। बिरादरी में रहकर हमारी मुकुती न हो जाएगी। अब भी अपने पसीने की कमाई खाते हैं और तब भी अपनी खाएँगे।''** यह कटु सत्य है, यथार्थ है। वह धर्म और बिरादरी से डरने वाले अपने पति होरी को धिक्कारती है, जबकि यह पंचों को परमेश्वर मानकर उनका डांड स्वीकार करता है। वह हार कर कहती है कि मेरे भाग्य फूट गये कि तुम जैसे मर्द से पाला पड़ा।

जब होरी का भाई हीरा गाय को जहर देकर घर से भाग जाता है तो दरोगा हीरा के घर की तलाशी लेने के लिए आता है। होरी इसको अपना अपमान समझता है। यह रुपये उधार लाकर दरोगा को देना चाहता है परन्तु धनिया इसे अपना अपमान समझती है। वह क्रोध में भरकर नागिन के समान फुंकारती हुई कहती है– **''घर के सभी प्राणी रात-दिन भरें और दाने-दाने को तरसे। लत्ता भी पहनने को मयसर न होवे। अंजुली भर रुपये लेकर चला है इज्जत बचाने। ऐसी बड़ी है तेरी इज्जत। जिसके घर चूहें लोटें, वह इज्जत वाला है। दरोगा तलाशी ही तो लेगा, ले ले, जहाँ चाहे तलाशी ले। एक तो सौ रुपये की गाय गयी, उस पर ऊपर से यह पलोथन। वाह रे। तेरी इज्जत।''** वास्तव में यह आक्रोश धनिया का नहीं बल्कि स्वयं प्रेमचन्द के मन के क्रोध की अभिव्यक्ति है। वह समाज की इस गली-सड़ी व्यवस्था को स्वीकार नहीं करना चाहते। उनके मन में स्वाभिमान की जो भावना है वह उन्होंने ध निया के माध्यम से प्रस्तुत की है।

4. ममता की मूर्ति–धनिया यद्यपि बात-बात में क्रोध करती है और क्रोध करते समय वह किसी को भी नहीं देखती और सभी के समक्ष जोर-जोर से बोलती है. इसका कारण उसकी बेबसी और निर्धनतापूर्ण जीवन है। परंतु मूलत:

वह नारी है। उसमें नारी सुलभ दया, क्षमा, ममता, मोह, त्याग व समर्पण की भावना परिव्याप्त है। वह अपने परिवार के प्रति समर्पित है। होरी का भाई धनिया की गाय को जहर देकर मार देता है और भाग जाता है तो धनिया हीरा के परिवार को अपने साथ रखती है। गोबर झुनिया को गर्भवती कर छोड़कर शहर भाग जाता है तो भी वह झुनिया की रक्षा करती है। उसे पनाह देती है। सभी इस बात का विरोध करते हैं कि उसने झुनिया को अपने घर क्यों रखा? होरी भी झुनिया को झोटा पकड़कर घर से बाहर निकाल देना चाहता है परन्तु उसका ममत्व जाग्रत हो जाता है। वह होरी के गले में हाथ डालकर प्रार्थना करती है- **''देखा, तुम्हें मेरी सौं, उस पर हाथ न उठाना। वह तो आप ही रो रही है। भाग की खोट न होती तो यह दिन क्यों आता।''** धनिया का मातृत्व स्नेह मानो जाग्रत हो गया। वह दातादीन को स्पष्ट कहती है हमको कुल प्रतिष्ठा इतनी प्यारी नहीं कि उसके पीछे एक हत्या कर डाले। भले ही इसने गोबर से विवाह न किया हो परन्तु उसकी बाँह तो मेरे बेटे ने पकड़ी हैं। वह जानती है कि उसके बेटे का अंश ही उसके पेट में है। इस अवस्था में वह बेचारी कहाँ जाएगी, उसका उदार हृदय, मातृत्व-भावना व नारीत्व उसे स्वीकार करने को बाध्य है। वह झुनिया को बड़े प्यार से रखती है। पोते के जन्म पर मंगल-गीत गाती है, जब गोबर शहर से आता है तो उसका हृदय फूला नहीं समाता। दूसरी बार जब गोबर शहर से, झुनिया के साथ आता है तो उसका पहला बेटा न था। वह अपने दूसरे बेटे को साथ लेकर आया था। धनिया बेटे और झुनिया के प्रति अत्यन्त ममतापूर्ण व्यवहार करती है और अबकी बार झुनिया तथा उसके बेटे मंगल को शहर नहीं जाने देती। उसका जीवन दया, ममता, मोह, त्याग, सेवा, अपनत्व आदि से भरा हुआ है।

5. निर्भीक और परिश्रमी-धनिया ग्रामीण समाज में रही है और ग्रामीण समाज तथा बिरादरी की मान मर्यादा को जानती है। वह अन्याय व अत्याचार के विरुद्ध आवाज उठाना जानती है। वह होरी के समान न तो दब्बू है और न बुद्धू। वह तो समझदार तथा परिस्थितियों से सामना करने वाली नारी है। वह भले ही अनपढ़ हो, परंतु नासमझ नहीं है। वह नहीं चाहती कि उसका शोषण किया जाए। वह दिन-रात जी-तोड़ परिश्रम करती है। खेत-खलिहान में पति का पूरा साथ देती है। सर्दी हो या गर्मी, सूखा हो या वर्षा, वह परिश्रम में पीछे नहीं रहती। परन्तु वह नहीं समझ पाती कि उसकी मेहनत पर दूसरे मौज उड़ाएँ। उसका मन सदा अन्याय के प्रति विद्रोही रहा है। जब झुनिया को लेकर पंचायत होरी पर डांड लगाती है तो होरी अनाज पंचों के घर पहुंचाता है तब धनिया जोर लगाकर होरी के हाथों से टोकरी छीनती हुई कहती है- **''इसे तो मैं न जाने दूंगी, चाहे तुम मेरी जान ही ले लो। मर-मर हमने कमाया, पहर रात खेत को सींचा और पंच लोग मूंछों पर ताब देकर भोग लगाएँ और हमारे बच्चे दाने-दाने को तरसे। तुमने अकेले ही सब कुछ नहीं कर लिया है।''** वह पंचों को भी खरी-खोटी सुनाती है। अपने परिश्रम की कमाई को व्यर्थ नहीं जाने देती। चाहे पंच हो, बिरादरी हो, ब्राह्मण हो या दरोगा वह सभी के सामने साफ बात कहती है, न जेल जाने से डरती है और न मरने से। परन्तु अन्याय को अन्याय कहती है। वह दूध का दूध और पानी का पानी करना जानती है।

हीरा द्वारा गाय को जहर देने पर दरोगा गांव में आता है। होरी उन्हें रूपया देना चाहता है, वह डांट कर विद्रोह व विरोध करना चाहती है तो दरोगा धनिया को फंसाना चाहता है और कहता है कि हीरा को फंसाने के लिए धनिया ने ही गाय को जहर दे दिया है तो वह निर्भीकता के साथ दरोगा से कहती है- **''हाँ, दे दिया। अपनी गाय थी, मार डाली। फिर किसी दूसरे का जानवर तो नहीं मारा? तुम्हारी तहकीकात में यही निकलता है तो यही लिख दो, पहना दो मेरे हाथ में हथकड़ियां। देख लिया तुन्हारा न्याय और तुम्हारी अक्ल की दौड़। गरीबों का गला काटना दूसरी बात है, दूध का दूध और पानी का पानी करना दूसरी बात।''**

वह जिस बात को न्याय संगत मानती है उसके लिए न कानून से डरती है. न बिरादरी की चिन्ता करती है। वह अत्यन्त साहसी और निडर है। वह आर्थिक विषमता से भले ही दबी हुई हो परन्तु मानव मूल्यों के लिए वह जीना जानती है। उसमें प्रेमचंद का मानवतावाद बोलता है।

इस प्रकार धनिया का चरित्र एक भारतीय कृषक नारी का ज्वलंत उदाहरण है। वह पतिव्रता नारी है। नारी सुलभ ममत्व, समर्पण तथा सेवा भावना उसमें विद्यमान है। पति होरी की नासमझी और डरपोक स्वभाव ने उसको विद्रोही और साहसी बना डाला है। वह जी-तोड़ परिश्रम करना जानती है, परन्तु पैसें को व्यर्थ खोना नहीं चाहती। वह दबना, झुकना, अन्याय सहन करना नहीं चाहती। इसीलिए उसे क्रोध आता है और खुले रूप में अन्यायियों का विरोध करती है, चाहे वह कितना ही बड़ा अधिकारी क्यों न हो? वह साहस, धैर्य व परिश्रम के बल पर होरी के साथ जीवन भर संघर्ष करती रही और गृहस्थ जीवनयापन करती रही परन्तु अन्त में होरी की मृत्यु हो जाने के पश्चात् वह एकाकी रह जाती है। प्रेमचन्द ने धनिया के जीवन को एक आदर्श परिश्रमी तथा संघर्ष करने वाली नारी के रूप में सिरजा है। उसका व्यक्तित्व भारतीय किसान की पतिव्रता व दु:ख सहिष्णु नारी के रूप में दिखाई पड़ता है। ग्रामीण कृषक परिवार का पालन करने वाली वह अकेली नहीं बल्कि अनेकों धनिया हैं। नारी-पात्रों में 'गोदान' में उसका चरित्र सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण और प्रभावशाली है। सम्पूर्ण जीवन में विपत्ति का निरन्तर सामना करने वाली वह साहसी, निर्भीक, स्वाभिमानिनी, संघर्षशीलता व ममता की मूर्ति दिखाई पड़ती है।

स्वयं आकलन हेतु प्रश्न

प्र. 1 गोदान उपन्यास का प्रकाशन वर्ष क्या है ?

प्र. 2 प्रेमचंद के अधूरे उपन्यास का नाम बताइए ?

16.4 सारांश

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि गोदान उपन्यास का नायक होरी है। होरी के चरित्र में अनेक विशेषताएं हैं। होरी भारतीय कृषक वर्ग का प्रतिनिधि है जो सदैव शोषक वर्ग के हाथों यातना सहने को मजबूर है। होरी का गांव बेलारी है। होरी अपने गांव का मुखिया है। अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए उसे समय-समय पर महाजनों से कर्ज लेना पड़ता है।

16.5 कठिन शब्दावली

महाजन - साहूकार

विपन्नता - गरीबी

16.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

प्र. 1 उ. 1936

प्र. 2 उ. मंगल सूत्र

16.7 संदर्भित पुस्तकें

प्रेमचंद, गोदान

अमृतराय, कलम का सिपाही

16.8 सात्रिक प्रश्न

प्र. 1 होरी के चरित्र की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

प्र. 2 गोदान उपन्यास की नायिका धनिया की चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

*****

इकाई–17

गोदान उपन्यास का व्याख्या भाग

संरचना

17.1 भूमिका
17.2 उद्‌देश्य
17.3 गोदान उपन्यास का व्याख्या भाग
स्वयं आकलन प्रश्न
17.4 सारांश
17.5 कठिन शब्दावली
17.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर
17.7 संदर्भित पुस्तकें
17.8 सात्रिक प्रश्न

इकाई-17

गोदान उपन्यास का व्याख्या भाग

17.1 भूमिका

इकाई सोलह में हमने प्रेमचंद कृत गोदान उपन्यास के पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं का अध्ययन किया। इकाई सत्रह के अंतर्गत हम प्रेमचंद कृत गोदान उपन्यास की व्याख्या भाग का अध्ययन करेंगे।

17.2 उद्देश्य

इकाई सत्रह का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि

1. गोदान उपन्यास के गद्य भाग की व्याख्या करेंगे।
2. गोदान उपन्यास के प्रसंग का अध्ययन करेंगे।

17.3 गोदान उपन्यास का व्याख्या भाग

किसान पक्का स्वार्थी होता है, इसमें संदेह नहीं। उसकी गांठ से रिश्वत के पैसे बड़ी मुश्किल से निकलते है, भाव-ताव में भी वह चौकस होता है, ब्याज को एक-एक पाई जिस छुड़ाने के लिए वह महाजन को घण्टों चिरौरी करता है। जब तक पक्का विश्वास न हो जाए, वह किसी के फुसलाने में नहीं आता। लेकिन उसका सम्पूर्ण जीवन प्रकृति से स्थायी सहयोग है। वृक्षों में फल लगते है, उन्हें जनता खाती है, खेती में अनाज होता है वह संसार के काम आता है, गाय के थन में दूध होता है, वह खुद पीने नहीं जाती, दूसरे ही पीते हैं, मेघों से वर्षा होती है उससे पृथ्वी तृप्त होती है। ऐसी संगति में कुत्सित स्वार्थ के लिए कहां स्थान?

प्रसंग - प्रस्तुत गद्यांश हिन्दी के उपन्यास सम्राट प्रेमचंद द्वारा लिखित बहुत चर्चित उपन्यास 'गोदान' से लिया गया हैं। प्रेमचंद ने हिन्दी उपन्यास साहित्य को एक नवीन मोड़ दिया। 'गोदान' प्रेमचन्द की अन्तिम पूर्ण प्रौढ़ रचना है जिसमें उन्होंने किसान जीवन की करुण गाथा को मार्मिकता के साथ प्रस्तुत किया है। होरी के द्वारा उन्होंने भारतीय किसान का कारुणिक चित्र प्रस्तुत किया है। यह अपने जीवन में गाय पालने की एक छोटी सी इच्छा पूरी नहीं कर पाता है। प्रस्तुत पंक्तियों में प्रेमचन्द ने किसान के स्वभाव के बारे में बताया है। भोला ने होरी को अपनी गाय दे दी है और उसके बदले वह उसका विवाह कराने की बात कहता है। भोला उससे अपनी गायों के लिए भूसा मांगता है। इस सन्दर्भ में प्रेमचन्द ने किसान को स्वार्थपरकता के बारे में बताते हुए कहा है कि-

व्याख्या - यह बात निःसंदेह उचित है कि किसान की प्रवृति स्वार्थपूर्ण होती है वह स्वार्थ के वशीभूत होकर अनेक कृत्य करता है। होरी ने भोला से गाय अस्सी रूपये में खरीदी है परन्तु या नगर पैसे नहीं दे सकता है। इस पर भोला उसके समक्ष प्रस्ताव रखता है कि वह गायों के भूसे के लिए दस छोड़ बीस रूपये दे दें ताकि गायों के भोजन की व्यवस्था हो सके। प्रेमचन्द कहते हैं कि किसान के पास से रिश्वत के लिए पैसे बहुत ही मुश्किल से निकलते हैं। एक तो वह मुश्किल से कुछ रूपये भर ही जोड़ पाता है और यदि उसे रिश्वत ही देने पड़ जाए तो यह स्थिति उसके लिए सहज नहीं होती हैं। यदि में किसान को कभी भाव तोल करना पड़ता है तो वह भी बहुत सजगता के साथ करता है कि कहीं नुकसान न उठाना पड़ जाए। गांव में जीवन व्यतीत करते हुए किसान महाजन के चुंगल में जरूर ही फंस जाता है। जब फंस जाता है तो ब्याज की एक पाई छुड़ाने के लिए वह महाजन की घंटों बैठकर मक्खनबाजी करता है। वह किसी तरह से महाजन को अपने हक में मनाना चाहता है ताकि उसे ब्याज की पाठ भर छूट मिल सके। इससे भी उसे बहुत राहत मिलती है। वह किसी दूसरे की बातों में नहीं आता है। वह अपनी बुद्धि से वही काम करता है जिस पर उसे पूर्ण विश्वास होता है। इतना सोच समझकर जीवन व्यतीत करने पर भी उसको जीवन की राह सहज नहीं होती है। वह तो बस अपनी सोच के आधार पर ही लेन-देन का निर्णय करता है। किसान का जीवन हमेशा प्रकृति

की तरह व्यतीत हो जाता है। जिस प्रकार वृक्षों के फलों का सेवन जनता करती है, खेतों में उपजता अन्न सांसारिक लोगों के लिए होता है। गाय का दूध भी दूसरे ही प्राप्त करते हैं और गाय स्वयं दूध नहीं पीती है मेघ भी वर्षा करके धरती को तृप्ति प्रदान करते है। उसी तरह किसान भी अपने लिए जी नहीं सकता हैं। उसका सारा दूसरों के लिए ही होता है। ऐसे समय में किसान के स्वभाव में छोटे वर्गीय स्वार्थ के लिए कोई स्थान नहीं रहता है। कहने का आशय है कि किसान का स्वार्थ वास्तव में स्वार्थ नहीं होता है। वह कभी बड़े लाभ की चाह नहीं करता है। वह थोड़ा पाकर भी खुश हो जाता है। होरी बातों के द्वारा भोला से गाय ले लेता है परन्तु निस्वार्थ भाव से उसे बिना किसी मोल के गायों के लिए भूसा भी दे देता है।

विशेष

किसान को स्वार्थी कहा गया है परन्तु वह किसी का अहित करके अपने स्वार्थ को पूरा नहीं करता है।

- इन पंक्तियों में महाजनी सभ्यता दर्शायी गई है।
- किसान ब्याज की एक पाई छुड़ाने के लिए महाजन की चापलूसी करता है, यही उसका स्वार्थ है।
- किसान को वृक्षों, खेतों, गाय, मेघों के समकक्ष रखा गया है। ये सभी अपने द्वारा उत्पन्न वस्तुओं का स्वयं सेवन नहीं करते हैं।
- किसान कभी छोटे स्वार्थों के लिए अपना ईमान नहीं छोड़ता है।
- भाषा प्रभावोत्पादक है।

जिसे हम डेमोक्रेसी कहते हैं, वह व्यवहार में बड़े-बड़े व्यापारियों और जमींदारों का राज्य है, और कुछ नहीं। चुनाव में वही बाजी ले जाता है, जिसके पास रूपये हैं। रूपये के जोड़ से उसके लिए सभी सुविधाएं तैयार हो जाती है। बड़े-बड़े लिखने और बोलने वाले, जो अपनी जवान और कलम से पब्लिक को जिस तरह चाहे फेर दें, सभी सोने के देवता के पैरों पर माथा रगड़ते हैं। मैंने तो इरादा कर लिया है। अब इलेक्शन के पास न जाऊंगा। मेरा प्रोपेगण्डा अब डेमोक्रेसी के खिलाफ होगा।

प्रसंग- प्रस्तुत अवतरण प्रेमचन्द द्वारा रचित 'गोदान' से उद्धृत है। प्रेमचन्द ने उपन्यास को परम्परा से चले आ रहे स्वरूप से अलग किया और उपन्यास में व्यक्ति और समाज के आदर्श को स्थान दिया। 'गोदान' उनका बहुचर्चित उपन्यास है। किसान जीवन को आधार बनाकर लिखे इस उपन्यास में गांव के साथ शहरी जीवन को भी चित्रित किया गया है। इन पंक्तियों में मिर्जा खुर्शद ने अपने डेमोक्रेसी के विषय में विचार व्यक्त किए हैं। जब मिर्जा खुर्जेद और मिस्टर तंखा जंगलों में शिकार खेलने जाते हैं तब बातों-बातों में तंखा आगामी चुनावों के विषय में बात छोड़ते हैं। इस पर मिर्जा साहब चुनाव के प्रति अपनी राय स्पष्ट करते हैं। वह कहते हैं कि

व्याख्या - आज जो चारों डेमोक्रेसी की बात हो रही है। वास्तविक दृष्टि से देखा जाए तो वह केवल बड़े लोगों की धरोहर है। डेमोक्रेसी में गरीबों के लिए कोई स्थान नहीं है। बल्कि बड़े व्यापारी वर्ग और जमींदारों का ही आधिपत्य है।

इसके अलावा डेमाक्रेसी का अन्य कोई अर्थ नहीं है। चुनाव केवल पैसे के बलबूते पर ही जीता जा सकता है। जिसके पास रूपये की ताकत है वह चुनाव जीत जाती है। रुपये में वह शक्ति होती है। जिसके द्वार वह बहुत लोगों को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। रुपये के बल पर ही व्यक्ति अनेक सुविधाओं को एकत्रित करने में सफल हो जाता है। चुनावों में रुपये की बहुत महत्ता रहती है। यदि देखा जाए तो समाज में सम्बन्धों का निर्धारण ही रूपये के आधार पर होने लगा है। जितने भी बड़े मौलवी पण्डित हैं व लिखने बोलने वाले हैं वह अपने मुंह से जो भी कह देते हैं लोग सहर्ष उसे स्वीकार कर लेते हैं। पण्डितों द्वारा दिखाए जाने वाले सोने के देवताओं को नमन करते हैं। उनके सम्मुख नत-मस्तक होते हैं। जब कोई बड़ा बोलने वाला या लिखने वाला व्यक्ति किसी व्यक्ति के बारे में या कोई भी

बात को आम जनता के सम्मुख रखता है। तो भोली-भाली जनता अज्ञानतावश उनके कहे व लिखे उचित मान लेती है और उसी का अनुसरण करती है। अभिप्राय यह है कि जो चमक आम जनता को दिखाई देती है। जनता उसी को सच मानती है। चुनावों में तो बोलने और दिखाने को ही प्रमुख आधार बनाया जाता है। इसके लिए सबसे आवश्यक रूपया हो जाता है। इस वास्तविकता से परिचित होने के कारण ही मिर्जा खुर्देश ने यह निर्णय ले लिया है कि वह अब चुनाव नहीं लड़ेंगे। लड़ना तो दूर रहा वह चुनावी हलचल के करीब भी नहीं जाएंगे। वह कहते हैं कि अब उनका लक्ष्य डेमोक्रेसी के विरुद्ध आवाज उठाना है। वह डेमाक्रेसी के उस रूप के खिलाफ आवाज उठाना चाहते है। जहां पर जनता को कुछ नहीं समझा जाता और सम्पन्न व्यक्ति ही अपनी स्वार्थ-पूर्ति में लगा रहता है।

विशेष- भ्रष्ट डेमोक्रेसी के विषय में कहा गया है।

- डेमाक्रेसी को नए अर्थ में देखा गया है।
- डेमोक्रेसी को बड़े व्यापारियों और जमींदारों का राज्य माना गया है।
- आम जनता को बड़े लोग जो दिखाते हैं वह उसी को सच मान लेते हैं।
- यहां 'डमोक्रेसी', 'प्रोपेगण्डा' - अंग्रेजी शब्द है।
- भाषा की विशेषता रही है कि थोड़े के द्वारा बहुत कुछ कहने का प्रयास किया गया है।

जिसे तुम प्रेम कहती हो, वह धोखा है, उद्दीप्त लालसा का विकृत रूप, उसी तरह जैसे सन्यास केवल भीख मांगने का संस्कृत रूप है। वह प्रेम अगर वैवाहिक जीवन में कम है, तो मुक्त विलास में बिल्कुल नहीं है। सच्चा आनन्द, सच्ची शान्ति केवल सेवा व्रत में है। वही अधिकार का स्रोत है, वही शक्ति का उद्‌गम है। सेवा ही वह सीमेण्ट है, जो दम्पति को जीवनपर्यन्त स्नेह और साहचर्य में जोड़े रख सकता है, जिस पर बड़े-बड़े आपातों का कोई असर नहीं होता। जहां सेवा का अभाव है, वहीं विवाह विच्छेद है, परित्याग है, अविश्वास है। और आपके ऊपर, पुरुष जीवन की नौका की कर्णधार होने के कारण जिम्मेदारी ज्यादा है। आप चाहें तो नोंका को आंधी और तूफानों में पार लगा सकती हैं। और आपने असावधानी की तो नौका डूब जायगी और उसके साथ आप भी डूब जायंगी।

प्रसंग - प्रस्तुत अवतरण हिन्दी उपन्यास के प्रमुख उपन्यासकार प्रेमचन्द द्वारा लिखित 'गोदान' से ली गई है। प्रेमचन्द का उपन्यास के क्षेत्र में बहुत योगदान रहा है। उन्होंने परम्परा से चले आ रहे उपन्यास के ढांचे को एक नया मोड़ दिया। 'गोदान' उनकी सबसे चर्चित और प्रौढ़ रचना है। गोदान में ग्रामीण जीवन और शहरी जीवन दोनों को साथ रखा है परन्तु ग्रामीण परिवेश की कथा मुख्य है। उपर्युक्त पंक्तियों में सरोज के कॉलेज में मेहता के भाषण के अंश हैं। मेहता ने नारी के सम्माननीय स्वरूप को सबके सामने उजागर करता है। उसका मानना है कि नारी में अदम्य शक्ति होती है। उसके पास अनेक गुर हैं। इन पंक्तियों में मेहता प्रेम और विवाह में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहता है कि

व्याख्या - आज स्त्रियां जिसे प्रेम समझती हैं वह भोग छलावा है। प्रेम के नाम पर लोग ढोंग कर रहे हैं। जिस प्रकार व्यक्ति सन्यास केवल भीख मांगने के उद्देश्य से लेता है तो उस व्यक्ति को सन्यासी नहीं कहा जा सकता है। वह तो भीख मांगने का एक सभ्य तरीका है। उसी प्रकार आज प्रेम भी छल बन गया है जिसे मन में उठी एक लालसा का विकृत रूप कहा जा सकता है। यदि यह स्वीकार किया जाए कि वैवाहिक सम्बन्धों में प्रेम का कोई स्थान ही नहीं होता तो यह भी स्वीकार करना होगा कि उन्मुक्त भोग-विलास में तो प्रेम बिल्कुल नहीं है। यहां तो प्रेम के नाम पर दूसरों को ठगा जा रहा है। यदि इनसे ऊपर उठकर सोचा जाए तो जीवन में वास्तविक शान्ति व आनन्द के बल सेवा धर्म का निर्वाह करके ही प्राप्त की जा सकती है। जब निस्वार्थ भाव से दूसरों की सेवा की जाती है तभी मन को सन्तोष प्राप्त होता है। मेहता सेवा भावना को सीमेण्ट कहता है। सेवा की भावना से किया गया कर्म में अधिकार की भावना आती है और मनुष्य में शक्ति सम्पन्नता भी आती है। सीमेण्ट का इस्तेमाल इमारत आदि बनाने के लिए किया जाता है। सीमेन्ट के द्वारा इमारत में मजबूती और टिकाऊपन आता है और इमारत दृढ़ बनती है। दाम्पत्य सम्बन्धों में सेवा भाव

के आ जाने से पति पत्नी हमेशा ही स्नेह और एक दूसरे का साथ चलता है और यही उन्हें उस भर जोड़े रखता है। ऐसी स्थिति में पति–पली के सम्बन्धों को कोई बाहय आघात प्रभावित नहीं कर सकता है। इसके विपरीत जहाँ दाम्पत्य सम्बन्धों में सेवा–भावना नहीं होती है, वहीं विवाह सम्बन्ध में तनाव उत्पन्न होता है और विच्छेद की सीमा तक पहुंच जाते हैं। तब पति पत्नी एक दूसरे के प्रति अविश्वास रखते हैं और अलग होने के इच्छुक होते हैं। मेहता अपनी बात को आगे और स्पष्ट करते हुए कहता है कि नारी ही पुरुष के जीवन का आधार होती है। इसलिए वैवाहिक सम्बन्धों में उसकी भूमिका अधिक महत्त्वपूर्ण होती है। यह स्त्री के हाथ में होता है कि वह पुरुष को किस प्रकार सुनियोजित जीवन देती है। जब पुरुष की जीवन रूपी नैया की पतवार नारी के हाथ में है तो नारी का दायित्व बन जाता है कि वह पुरुष के जीवन को आने वाले तूफान रूपी व्यवधानों व समस्याओं से विलग करके उसे सुव्यवस्थित ढंग से पार उतार दें। यदि नारी ने इस कार्य में जरा भी असावधानी बरती तो पुरुष की जोवन नैया डूब ही जाएगी। परन्तु ऐसे में जबकि पुरुष और स्त्री साथ है तो जब पुरुष आहत होगा तो स्त्री की नैया भी पार नहीं लगेगी, वह भी मझधार में डूब जाएगी। –

विशेष – मेहता का नारी के प्रति दृष्टिकोण व्यक्त किया गया है।

- वर्तमान समाज में प्रेम के नाम पर छलावा अधिक है।
- सन्यास को भीख मांगने का संस्कृत रूप कहा गया है।
- विवाह के बाद प्रेम होता है। यदि बात गलत है तो मुक्त विलास में प्रेम के लिए कोई स्थान नहीं होता।
- दाम्पत्य–सम्बन्ध में प्रेम का होना आवश्यक है।
- पुरुष के जीवन को नारी काफी हद तक प्रभावित करती है।
- भाषा के द्वारा विषय को गंभीरता प्रदान की गई है।

पहले झगड़ा का सिरगनेस से दो ही औरतों से होता है। झगड़े के सिलसिले में एक एक कर पास पड़ोस की औरतों के प्रसंग आते जाते हैं और झगड़े वालियों की संख्या बढ़ती जाती है। झगड़े से उनके कामकाज में कोई बाधा नहीं पहुंचती है। काम के साथ–साथ झगड़ा भी चल रहा है। जब सारे गांव की औरतें झगड़ने लगती हैं तब कोई किसी की बात नहीं सुनती, सब अपना–अपना चरखा ओंट लगती है

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश आंचलिक उपन्यास फणीश्वरनाथ रेणु के बहुचर्चित उपन्यास 'मैला आंचल' में उद्‌धृत है। आंचलिक उपन्यासों की यह विशेषता रहती है कि इसमें अंचल को केन्द्र में रखा जाता है। उपन्यास में पूर्णिया जिले को कथानक के रूप में लिया गया है। पूर्णिया के गांव मेरीगंज से जुड़ी अनेक समस्याएं, खान–पान, रहन–सहन, जीवन–शैली आदि का चित्रण उपन्यास में किया गया है। प्रस्तुत पंक्तियों में ग्रामीण औरतों के स्वभाव को चित्रित किया गया है। गांव का अपना अलग वातावरण होता है। वहां के लोगों के अपने निजी स्वार्थ होते हैं और उनका आपस में व्यवहार उन लोगों की अपनी सोच पर आधारित होता है। यहां रेणु जी स्पष्ट करते हुए ग्रामीण स्त्रियों के विषय में बताते हैं कि–

व्याख्या – जब गांव की औरतें आपस में लड़ती है तो सबसे पहले लड़ाई की शुरुआत दो औरतों से होती है। वे आपस में ही झगड़ा शुरु करती हैं। कारण कुछ भी हो सकता है। बातचीत में से ही लड़ाई का बिन्दु निकल आता है। जब दो औरतें झगड़ा आरम्भ करती हैं तो झगड़े धीरे–धीरे आस–पास की अन्य औरतों की चर्चा शुरू हो जाती हैं उन्हें भी लड़ाई का विषय बनाया जाने लग जाता है। इस तरह आस–पड़ोस की औरतें झगड़ने आती हैं तो लड़ने वाली औरतों की संख्या दो से अधिक हो जाती है और धीरे–धीरे बढ़ते विवाद में उनकी संख्या में भी वृद्धि होती जाती है। व्यापक स्तर पर झगड़ा होने पर भी उन ग्रामीण औरतों के काम करने में किसी प्रकार का व्यवधान नहीं आता है। उनका लड़ाई के साथ–साथ काम भी चलता रहता है। काम और झगड़ा साथ–साथ चलते हैं। काम और या झगड़ा दोनों

आपस में एक दूसरे के क्षेत्र में बाधक नहीं होते हैं। ऐसे धीरे-धीरे उपस्थित गांव की सभी स्त्रियां लड़ाई में भागीदार बन जाती हैं जब विवाद ज्यादा ही बढ़ जाता है। ऐसे में कोई स्त्री किसी अन्य स्त्री की बात सुनी ही नहीं अपने काम में लगी रहती है।

विशेष - ग्रामीण स्त्रियों के स्वभाव को चित्रित किया गया है।

- गांव स्त्रियों के बीच झगड़ा दो औरतों के कारण होता है परन्तु धीरे-धीरे औरतों की संख्या बढ़ती जाती है।
- औरतें काम और झगड़ा साथ-साथ करती हैं।
- 'सिरगनेस' शब्द वास्तव में श्री गणेश है जिसे ग्रामीण परिवेश के कारण 'सिरगनेस' कहा गया है।

अत: कहा जा सकता है कि 'गोदान' उपन्यास में यथार्थवाद भी है और आदर्शवाद भी तथा आदर्शोन्मुख यथार्थवाद भी। प्रेमचंद ने 'गोदान' को अन्य उपन्यासों की अपेक्षा एक नूतन रूप प्रदान किया है मानो अपने समस्त अनुभव और आदर्श उन्होंने इसमें एक साथ भर दिए। इसे एक महाकाव्य उपन्यास भी कहा जाता है। इसे कृषक की करूणा माना जाता है। इसका उद्देश्य मुख्यत: किसानों की दयनीय दशा का जीवन चित्रण करना है और गौण रूप से शहरी जीवन की चालाकी, खोखलेपन को उजागर करना है। यह उपन्यास शोषण, अत्याचार, गरीबी के शिकार, ग्रामीण लोगों को अपने अधिकारों, धर्म एवं भाग्य की दुहाई देकर उन्हें मूर्ख बनाकर ठगने वाले पूंजीपतियों, जमीदारों के विरूद्ध संगठित होने, गरीबों को झूठी मर्यादा का निर्वाह करने की प्रवृत्ति त्यागने का संदेश देता है। गोदान का उददेश्य और संदेश सार्वजनिक और सर्वकालीन है। वह विश्व मानवता और शांति का पोषक है। गोदान के संदेश में जनजीवन के मंगल की पुकार है और उनमें नए युग-जन्म की आशा और सुख की भावना है। इस प्रकार प्रेमचंद का उपन्यास गोदान भारतीय कृषक जीवन की करूणापूर्ण सत्या कहानी कही जा सकती है।

शब्दार्थ

पांव तले गर्दन दबना = स्वयं पर दूसरे का अधिकार होना, जोते हैं = बोए हैं। कवर-ब्योंत = कंजूसी से खर्च करना। बेबाक =पूरा चुकना। विपन्नता = गरीबी। अथाह = गहरा। भीरू - डरपोक। गांठ से = जेब से। महाजन = साहूकार। तृप्त

व्याख्या भाग

विपन्नता के इस अथाह सागर में सोहाग ही वह तुण था जिसे पकड़े हुए वह सागर को पार कर रही थी। इन असंगत शब्दों ने यथार्थ के निकट होने पर भी, मानो झटका उसके हाथ से यह तिनके का सहारा छीन लेना चाहा, बल्कि स्वार्थ के निकट होने के कारण ही उनमें इतनी वेदना शक्ति आ गई थी, काना कहने से काने को जो दुखः होता है, वह क्या वो आँखों वाले आदमी को हो सकता है ?

प्रसंग - प्रस्तुत पंक्तियां हिन्दी-साहित्य के उपन्यास-सम्राट् मुन्शी प्रेमचंद की प्रौढ़ कृति 'गोदान' हमें उद्धृत है। उपन्यास के प्रथम परिच्छेद में जब कथानायक होरी तथा उसको पत्नी धनिया परस्पर वार्तालाप करते हैं तो होरी मजाक में ही यह कह देता है कि वह साठ वर्ष की अवस्था से पूर्व ही चल बसेगा। यह कटु और दुर्भाग्य पूर्ण वचन सुनकर धनिया को बड़ा आघात पहुँचता है तब वह पश्चात्ताप-ग्रस्त होकर विचार करती है-

व्याख्या- धनिया होरी के साथ अपना जीवन सहजता से व्यतीत कर रही थी यद्यपि दम अनक कष्टा का सामना करना पड़ता था परन्तु अपने पति (सोहाग) के आश्रय में वह इन दुखों को सरलता से सहन कर लेती थी। जिस प्रकार किसी गहन समुद्र को पार करने के लिए सबल आधार चाहिए बाहिर परन्तु यदि थोड़ा-सा सहारा भी मिल जाता है तो समुद्र पार करना संभव हो जाता है। उसी प्रकार यद्यपि धनिया का जीवन अनेक कठिनाइयों और विपत्तियों से भरा था परन्तु अपन पति होरी के साथ यथासंभव जीवन बिता रही थी। आज जब उसने होरी के यह शब्द सुने 'साठ तक पहुंचने की नौबत न आने पाएगी धनिया!' इससे पहले ही चल देंगे।' तो वह अंदर से कांप गयी क्योंकि अचानक उसके प्रियतम

के शब्द उस परिस्थिति के अनुरूप नहीं थे जिस मनोविनोद में ये कहे गये थे। यह कटु सत्य था क्योंकि होरी जिस प्रकार विपत्तियों से घिरा हुआ था और इस चालीस वर्ष की उम्र में वह वृद्ध जैसा प्रतीत होता था उससे यह आभास होने लगा था कि वह साठ वर्ष की अवस्था पार नहीं कर सकेगा। फिर भी धनिया को होरी का कथन सहनीय नहीं हो सका। उसे यह भयावह प्रतीति हुई कि वह इस सौभाग्य (पति) के अभाव में किस प्रकार जीवन व्यतीत करेगी? वह तो होरी जैसे जीवन साथ के साथ निश्चित होकर रह रही थी। उसे भविष्य के विषय में कोई भी चिंता नहीं थी। परंतु होरी का अभाव उसके लिए दुर्भाग्यपूर्ण था। फिर भी उसे इस कटु सत्य ने बहकने न दिया और उसे इस अनिष्ट कथन को सहन किया जिस प्रकार किसी काने व्यक्ति को काना कह दिया जाता है यह यथार्थ (सत्य) होने पर भी काना उसे बड़ा अशुभ व अपमान जनक लगता है। उसी प्रकार धनिया को होरी के उपर्युक्त शब्द यथार्थ होने पर भी अनिष्टदायक और कष्टकर प्रतीत हुए और उसके लिए असहय हो गए थे। होरी के अनिष्ट की आशंका से उसे अपना भविष्य भी अंधकारमय दिखाई देने लगा थी। इसी कारण होरी के सत्य कथन में वह कांप उठी थी। यदि यह कथन असत्य होता तो उसे उसी प्रकार कष्ट न होता जैसे दो आँख वाले व्यक्ति को 'काना' कह देने पर वह दु:ख नहीं होता परन्तु कटु-सत्य का सामना करके धनिया को सहसा धक्का सा लगा था।

विशेष-

1. प्रस्तुत पक्तियों में धनिया को पतिव्रता भावना को चित्रित किया गया है कि वह अपने सोहाण (पति) को ही अपने जीवन का आधार समझती है।
2. 'विपन्नता सागर' व 'सोहाग-तृण' में रुपक अलंकार है।
3 'मानो झटका....चाहा' में उत्प्रेक्षा अलंकार है। उत्प्रेक्षा वाचक 'मानो' शब्द का प्रयोग है।
4 'क्या दो आंखों.....सकता है ? में वक्रोक्ति अलंकार है।'
5. 'काने को काना....... सकता है।' में दृष्टान्त अलकार है।
6. अलंकृत शैली का प्रयोग है।
7. विपन्नता, तृण, असंगत, यथार्थ आदि तत्सम शब्दावली प्राय: प्रयुक्त है।
8. यथार्थवादी भावना का चित्र है।
9. साहित्यिक भाषा का प्रयोग है।
10. मनोविश्लषणात्मक शैली है।

अब भी लेन-देन में उसके लिए लिखा-पढ़ी होने और न होने में कोई अन्तर न था। सूखे बूड़े की विपदाएँ उसके मन को भीरु बनाए रहती थीं। ईश्वर का रौद्र रूप सदैव उसके सामने रहता था। पर यह छल उसकी नीति में छल न था। यह केवल स्वार्थ सिद्धि थी और यह कोई बुरी बात न थी। इस तरह का छल तो वह रात-दिन करता रहता था।

प्रसंग- प्रस्तुत गद्य-खण्ड हिन्दी उपन्यास साहित्य के लोकप्रिय उपन्यास 'गोदान' से उद्धृत है जिसके प्रणेता प्रसिद्ध उपन्यासकार प्रेमचंद हैं। जिस समय गोदान उपन्यास का नायक होरी भोला से एक गाय का सौदा करता है और उसे विश्वास दिलाता है कि वह उसकी सगाई करा देगा। यद्यपि वह जानता है कि भोला को सगाई निश्चित नहीं है यह इस कार्य में छ्ल कर रहा है उसे गाय लेने की तृष्णा बनी रहती है। तब लेखक कहता है-

व्याख्या- होरी यदि कोई वस्तु खरीदता था या किसी को रुपये अदा करता था तो वह उस पर विश्वास करता था। उसे लेन देन में किसी प्रकार की लिखा-पढ़ी करना उसके लिए आवश्यक नहीं था। यदि कोई लिखा-पढ़ी कर लें तो ठीक है न करे तो भो कोई बात नहीं है। इतना अवश्य था कि सूखा पड़ने पर या अधिक वर्षा होने की चिन्ता उसे अवश्य रहती थी क्योंकि इससे उसे फसल से लाभ न हो सकेगा। इसके अतिरिक्त वह ऐसा कोई कार्य नहीं करना चाहता था जो अधर्म युक्त हो। वह परम पिता परमेश्वर से बहुत डरता था। उसने न तो किसी के साथ छल किया था,

न अनैतिक व्यवहार किया था, परन्तु पोला को वह बार-बार विवाह का विश्वास दिला रहा था जो उसके लिए छल-कपट की नीति नहीं थी। इसमें तो वह अपना मतलब पूरा करना चाहता था कि किसी प्रकार उसे गाथ मिल जाय। गाय भी वह बिना मूल्य में नहीं ले रहा था। अपने मतलब के लिए यदि वह भोला से झूठ चाल रहा है तो होरी की दृष्टि में यह छल या धोखा नहीं, बल्कि यह विश्वास दिलाता है कि इस कार्य को पूरा करने का प्रयत्न करेगा। इस प्रकार का छोटा-मोटा या सामान्य कथन असत्य भले ही माना जाए परंतु यह अधर्म नहीं अन्याय नहीं है। होरी की दृष्टि में वह भोला को किसी प्रकार धोखा नहीं दे रहा है।

विशेष-

1. इन पंक्तियों में होरी के चरित्र पर प्रकाश डाला गया है कि वह निश्छल व सरल स्वभावी है।
2. 'ईश्वर का....... रहता था' में उत्प्रेक्षा अलंकार है।
3. 'यह छल.......छल न था' में विरोधाभास अलंकार है।
4. बोलचाल को शब्दावली का प्रयोग किया गया है।
5. भाषा सरल व सुबोधयम्य होन के कारण प्रसाद गुण है।

वृक्षों में फल लगते हैं, उन्हें जनता खाती है, खेती में अनाज होता है, वह संसार के काम आता है; गाय के थन में दूध होता है, वह खुद पीने नहीं जाती दूसरे ही पीते हैं. मेघों से वर्षा होती है, उससे पृथ्वी तृप्त होती है। ऐसी संगति में कुत्सित स्वार्थ के लिए कहां स्थान?

प्रसंग - व्याख्येय पक्तियां प्रेमचंद के सुप्रसिद्ध उपन्यास 'गोदान' के प्रथम परिच्छेद से उद्धृत है। कथा-नायक होरी अपने गांव से जमींदार राय साहब से मिलने जाता है तो मार्ग में भोला की गायों को देखकर उसका मन भी ललचा जाता है। वह एक गाय का सौदा कर लेता है। होरी जैसे किसान की सरल प्रकृति और उसका प्रकृति के उपकरणों के प्रति महत्व देखकर उपन्यासकार कहता है -

व्याख्या- किसान का जीवन स्वार्थ भावना से कम परोपकार की भावना से अधिक भरा रहता है। वह प्रकृति का पुजारी है अन्नदाता है। दिन-रात खेतों में रहकर खेती करता है और बड़े परिश्रम में अनाज पैदा करता है। समस्त अन्न उसके लिए नहीं बल्कि मानव जाति के हितार्थ होता है। जिस प्रकार वृक्ष फलों को प्रदान करते हैं जिसका रसास्वाद करके सभी आनंदित होते हैं। वृक्ष स्वयं फल का भक्षण नहीं करते बल्कि फल प्रदान करके परोपकार करते हैं। गाय दूध देती है जो दूध दूसरों के काम आता है। वह दूध को अपने आप पान नहीं करती। आकाश से बादल सरस जल की वर्षा करते हैं, अपनों गर्मी दूर करने के लिए नहीं बल्कि भूमि के संताप को दूर कर उसे शम्यश्यामला बनाते है। जिस प्रकार वृक्ष, गाय, भैंस आदि परोपकारर्थी अपना सर्वस्व समर्पण करते हैं, उसी प्रकार किसान भी दूसरों के सेवा के लिए खेती करता है। इस प्रकार के उपकारी कृषक-जीवन में दूषित स्वार्थ को संभावनाएं नहीं रहती। कथानायक होरी ने यदि भोला से गाय प्राप्त करने की इच्छा व्यक्त की थी तो उसमें ऐसी दुर्भावना नहीं थी कि वह गाय लेकर भोला से छल करेगा। भोला के विवाह का वायदा किया था तो वह अवश्य प्रयत्न करेगा। गाय के मूल्य का अवश्य अदा करेगा। उसने पहले भूसा देने का निश्चय कर लिया है जिससे गाय का कुछ मूल्य अदा किया जा सके।

विशेष-

1. इस गद्य-भाग में कृषक जीवन की परोपकार-वृत्ति को व्यक्त किया गया है।
2. होरी के चरित्र की ओर संकेत किया गया है कि वह मतलबी तो है परन्तु दुर्भावनाग्रस्त नहीं है।
3. इन पंक्तियों में वही भाव है जो निम्नलिखितं श्लोक में है-

परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः परोपकाराय वहन्ति नद्यः।
परोपकाराय दुहन्ति गावः, परोपकाराय सतां विभूतयः॥

4. सम्पूर्ण पदावली में दृष्टान्त अलंकार की छटा है।

5. 'ऐसी संगति को..... कहां स्थाना' में वक्रोक्ति अलंकार है।

6. भाषा-सरल, सरस है व सुबोध गम्य है।

7. भाषा की सरलता के कारण प्रसाद गुण है।

स्वयं आकलन हेतु प्रश्न

प्र. 1 प्रेमचंद के अधूरे उपन्यास मंगलसूत्र को किसने पूरा किया।

प्र. 2 प्रेमचंद की पत्नी का नाम बताइए।

17.4 सारांश

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि गोदान एक गरीब किसान होरी की कहानी कहता है जो गुजारा करने के लिए संघर्ष कर रहा है। अपनी कड़ी मेहनत के बावजूद वह अपने जमींदार का कर्ज चुकाने में असमर्थ है। इसी प्रकार हमेशा उसकी दासता बनी रहती है। गोदान उपन्यास गरीबी, गति व्यवस्था और उत्पीड़न के विषयों की पड़ताल करता है।

17.5 कठिन शब्दावली

बेबाक - पूरा चुकना

अथाह - गहरा

17.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

प्र. 1 उत्तर मंगलसूत्र

प्र. 2 उत्तर शिवरानी देवी

17.7 संदर्भित पुस्तकें

प्रेमचंद, गोदान

शिवरानी देवी, प्रेमचंद घर में

17.8 सात्रिक प्रश्न

प्र. 1 गोदान उपन्यास की सार्थकता पर प्रकाश डालिए।

प्र. 2 गोदान उपन्यास में ग्रामीण जीवन का यथार्थ चित्रण हुआ है, स्पष्ट कीजिए।

*****

इकाई–18

फगीश्वरनाथ रेणु : जीवन एवं सृजित साहित्य

संरचना

18.1 भूमिका

18.2 उद्देश्य

18.3 फगीश्वरनाथ रेणु का जीवन और सृजित साहित्य

- जीवन साहित्य
- रचना संसार

स्वयं आकलन प्रश्न

18.4 सारांश

18.5 कठिन शब्दावली

18.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

18.7 संदर्भित पुस्तकें

18.8 सात्रिक प्रश्न

इकाई-18

फगीश्वरनाथ रेणु : जीवन एवं सृजित साहित्य

18.1 भूमिका

इकाई सत्रह में प्रेमचंद कृत गोदान उपन्यास के व्याख्या भाग का अध्ययन किया। इकाई अठारह में हम फणीश्वरनाथ रेणु के जीवन एवं सृजित साहित्य का अध्ययन करेंगे। जीवन एवं सृजित साहित्य के अंतर्गत उनके जीवन साहित्य एवं रचना संसार का अध्ययन किया जाएगा।

18.2 उद्देश्य

इकाई अठारह का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि -

1. फणीश्वरनाथ 'रेणु' का जन्म कब और कहां हुआ ?
2. रेणु जी की प्रमुख रचनाएँ कौन-कौन सी है?
3. रेणु जी ने कहां तक शिक्षा प्राप्त की थी?

18.3 फणीश्वरनाथ रेणु : जीवन और सृजित साहित्य

● जीवन साहित्य

फणीश्वरनाथ रेणु हिंदी कथा साहित्य के विलक्षण रचनाकार हैं। आपका जन्म 1921 में बिहार के एक गाँव जिला पूर्णिया में हुआ। आपका बचपन ग्रामीण परिवेश में व्यतीत हुआ। उच्च शिक्षा पटना से ग्रहण कर स्वाधीनता आंदोलन से जुड़े। हिंदी की आंचलिक कथा साहित्य की ताजी धारा ने आपके साथ पूरे वेग से प्रवेश किया। रेणु इस नई धारा के पुरोधा बने।

स्थानीय रंगों, छवियों और आकाक्षाओं के साथ-साथ रेणु की कहानियों में व्यापक मानवीय घात प्रतिघात मिलते हैं। इन्होंने जमींदारी प्रथा, साहूकारों का शोषण, अंग्रेजों के जुल्म व अत्याचारों को देखा ही नहीं, सहा भी था किसानों व मजदूरों की दयनीय दशा देखकर आपका हृदय द्रवीभूत हो उठा था, उनमें सहानुभूति रखते हुए रेणुजी ने न केवल उनके अधिकारों की रक्षा हेतु अपने रचना संसार में आवाज उठाई, अपितु अन्याय के खिलाफ संघर्ष भी किया।

उन दिनों नील की खेती होती थी। नील साहब किसानों को पांवों तल रौंद रहे थे। रेणु ने अपनी आबाज बुलंद कर किसानों को संगठित किया और कुछ हद तक उनकी रक्षा की। रेणु मिलनसार, मृदुभाषी और स्पष्टवक्ता थे। स्वतंत्रता के बाद भारत में नेताओं की स्वार्थपरता व सत्ता लोलुपता देखकर उन्हें कोसा और जनहितों की रक्षा के लिए सड़क पर उतरे थे।

1977 की इमरजेंसी में जेपी के आंदोलन से जुड़े जब लेखकों और पत्रकारों की आवाज को दबाया जाने लगा तो अभिव्यक्ति की आजादी के लिए ऐसे लेखकों पत्रकारों का नेतृत्व करते हुए मुंह पर पट्टी बांधकर अपना क्षोभ प्रकट किया तथा इंदिरा सरकार की आलोचना की। ओजस्वी व्यक्तित्व के धनी रेणु जी विशुद्ध ग्रामीण मिट्टी की खाद थे। संघर्षशील रहते हुए इनका 1977 में देहांत हो गया।

फणीश्वर नाथ रेणु की शिक्षा

फणीश्वर नाथ रेणु ने अपनी कुछ शिक्षा भारत में ग्रहण की थी और कुछ शिक्षा नेपाल में स्थित शिक्षण संस्थान से ग्रहण की थी। जब यह थोड़े समझदार हुए तब इनके माता-पिता के द्वारा इनका एडमिशन प्रारंभिक एजुकेशन दिलाने के उद्देश्य से फारबिसगंज में करवाया गया। यहां पर थोड़ी पढ़ाई करने के पश्चात इनका एडमिशन अररिया में करवाया गया। वहां से उन्होंने अपनी प्रारंभिक शिक्षा को ग्रहण किया।

इसके पश्चात फणीश्वरनाथ ने अपनी दसवीं क्लास की पढ़ाई नेपाल देश के विराट नगर में मौजूद विराट नगर आदर्श विश्वविद्यालय में पूरी की। इसक पश्चात 12वीं की पढ़ाई करने के लिए यह बनारस चले आए और इन्होंने काशी हिंदू विश्वविद्यालय में एडमिशन लिया और साल 1942 में 12वीं की पढ़ाई पूरी करने के पश्चात यह भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में शामिल हो गए।

फणीश्वर नाथ रेणु का लेखन कार्य

इन्होंने लिखने का काम साल 1936 के आसपास में प्रारंभ कर दिया गया था और इनके द्वारा लिखी गई कुछ कहानियां प्रकाशित भी हुई थी परंतु वह सभी अपरिपक्व कहानियां थी। साल 1942 में आंदोलन के दरमियान इन्हें अंग्रेजी सेना के द्वारा गिरफ्तार कर लिया गया था और इन्हें तकरीबन 2 सालों के लिए जेल में रखा गया।

साल 1944 में इन्हें जेल से छोड़ा गया। इसके पश्चात यह घर लौट आए और फिर इन्होंने ''बट बाबा'' नाम की पहली परिपक्व कहानी लिखकर तैयार की। यह कहानी मामाहिक विश्वमित्र के 27 अगस्त 1944 के अंक में छपी हुई थी।

इसके पश्चात फणीश्वर नाथ की दूसरी कहानी ''पहलवान की ढोलक'' साल 1944 के 11 दिसंबर को साप्ताहिक विश्वमित्र में छपी हुई थी। इसके बाद आगे बढ़ते हुए फणीश्वर नाथ ने माल 1972 में अपनी आखिरी कहानी ''भित्ति चित्र की मयूरी'' लिखा था और इस प्रकार से उनक द्वारा लिखी गई कहानियों की संख्या 63 हो चुकी थी।

इन्होंने जितने भी उपन्यास लिखे थे उनके द्वारा इन्हें प्रसिद्धि तो हासिल हुई ही साथ ही इनके द्वारा लिखी गई कहानियों को भी लोगों ने खूब पसंद किया और इनकी कहानियों ने भी इन्हें काफी अधिक प्रसिद्ध बनाया। फणीश्वर नाथ के आदिम रात्रि की महक, एक श्रावणी दोपहरी की धूप, अच्छे आदमी, संपूर्ण कहानियां, अग्नि खोर, ठुमरी बहुत ही प्रसिद्ध कहानी के संग्रह है।

फणीश्वर नाथ द्वारा रचित कहानी पर बनी फिल्म

फणीश्वर नाथ के द्वारा ''मारे गए गुलाम'' नाम की एक कहानी लिखी गई थी और इसी कहानी से प्ररित होकर एक हिंदी फिल्म बनी थी जिसका नाम ''तीसरी कसम'' रखा गया था। इस फिल्म के अंदर राजकुमार के साथ वहीदा रहमान जी ने मुख्य भूमिका निभाई थी और इस फिल्म को डायरेक्ट करने का काम निर्देशक वासु भट्टाचार्य के द्वारा किया गया था।

वहीं फिल्म को प्रोड्यूस करने का काम प्रसिद्ध गीतकार शैलेंद्र के द्वारा किया गया था। जब यह फिल्म सिनेमा हॉल में रिलीज हुई तो इस फिल्म को लोगों ने काफी अधिक पसंद किया और यह फिल्म हिंदी सिनेमा में मील का पत्थर साबित हुई।

फणीश्वर नाथ रेणू का विवाह

फणीश्वर नाथ रेणु की पहली शादी रेखा नाम की महिला से हुई थी। इस प्रकार इनसे शादी हा जाने के बाद रेखा ने रेनू सरनेम लगाना चालू कर दिया। इनकी पहली पत्नी बिहार राज्य के कटिहार जिले के बलूवा गांव की रहने वाली थी और फणीश्वर नाथ को रखा के द्वारा एक बेटी पैदा हुई थी जिसका नाम कविता राय रखा गया था।

पहली पत्नी की मौत होने के बाद फणीश्वरनाथ ने दूसरी शादी पद्मा रेणु नाम की महिला से की जो बिहार के कटिहार जिल के ही महमदिया गांव की रहने वाली थी। पद्मा रेणु न टोटल तीन बेटे और तीन बेटी को जन्म दिया। इसके पश्चात फणीश्वर का तीसरा विवाह लतिका के साथ हुआ। इनके साथ फणीश्वर की मुलाकात साल 1942 में क्रांति करने के दरमियान हुई थी।

फणीश्वर नाथ की भाषा शैली

फणीश्वर नाथ की भाषा शैली ग्रामीण इलाके की खड़ी बोली थी और यह इनके द्वारा रचित कहानियां और काव्यो में साफ तौर पर दिखाई देता है। यह अपने द्वारा रचना की जाने वाली कहानियां और काव्य में उसी भाषा का इस्तेमाल करते थे, जो भाषा यह सामान्य बोलचाल में इस्तेमाल करते थे। इन्होंने अपने उपन्यासों में कहानियों में आंचलिक भाषा को मुख्य तौर पर प्रमुखता दी है।

फनीश्वरनाथ रेणु की रचनाएं

- **रचना संसार**

फनीश्वरनाथ रेणु हिंदी कहानी व उपन्यास साहित्य के क्षेत्र में एक नई धारा के जनक है जिसे आंचलिक कथा साहित्य कहते हैं। इनके पूर्व भी ग्राम्यांचल में सम्बद्ध कहानी उपन्यास लिखे गये थे जैसे शिवपूजन सहाय, प्रेमचंद व रामवृक्ष बेनीपुरी का कथा नाहित्य किन्तु उसमें आंचलिकता पूर्णतः नहीं आई।

रेणु जी ने सशक्त रचनाएँ प्रस्तुत कर एक अंचल विशेष को ही नायकत्व प्रदान कर दिया और सारी घटनाएँ परिस्थितियां उसी के इर्द गिर्द चक्कर लगाती हुई प्रतीत होती हैं अस्तु, रेणु की प्रमुख कृतियों का उल्लेख इस प्रकार हैं।

- **उपन्यास**- मैला आँचल, परती परिकथा जुलूस
- **कहानी संग्रह** - ठुमरी, रस प्रिया, पंचलेट, तीसरी कसम
- **निबंध पत्र** आदि

मैला आंचल रेणु जी का प्रथम उपन्यास था, जिसने उन्हें रातोंरात बड़े ग्राम्य कथाकार के रूप में स्थापित कर दिया। इसे प्रेमचंद के गोदान के बाद हिंदी के सबने दूसरे सर्वश्रेष्ठ उपन्याम के रूप में माना जाता हैं। हालांकि आलोचकों ने इसकी कथावस्तु को सतीनाथ भादुरी के बंगला उपन्यास धोधाई चरित मानस की कॉपी बताया, मगर बाद में ये निराधार साबित हुए। फनीश्वरनाथ रेणु जी को आजादी के बाद का प्रेमचंद भी कहा जाता हैं

रेणु का समग्र लेखन ग्राम्य परिवेश पर आश्रित हैं उनके पात्र संवेदनशील व भावुक हैं उनकी कहानियों में एक चित्रकार की भांति चित्रफलक को सजाया गया हैं, जिससे घटना का पूर्ण बिम्ब पाठक के समक्ष उपस्थित हो जाता हैं उनकी कहानियों में मनुष्य, प्रकृति, जीवन के घात प्रतिघात मानवीय भावनाओं व मनुष्य जीवन के विविध पक्षों को आंचलिक भाषा में प्रयोग हुआ हैं।

जैसे तबे एकता चला रे कहानी में किसन महाराज (भैंस का पाडा) की कथा कहकर यह सिद्ध कर दिया है कि इंसान आज जानवर से भी बदतर हो गया हैं जमींदारों, पुलिस व अफसरों के कुकृत्यों का पर्दाफाश कर किसन महाराज के प्रति ममता जागृत की हैं, रसप्रिया में एक गायक कलाकार के संघर्ष का मार्मिक चित्रण हैं।

स्वयं आकलन हेतु प्रश्न

प्र. 1 रेणु जी का जन्म वर्ष क्या है ?

प्र. 2 रेणु जी किस प्रकार के उपन्यासकार हैं ?

18.4 सारांश

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि रेणु जी का जन्म 4 मार्च 1921 को हुआ। इनमें प्रारंभिक शिक्षा गाँव के विद्यालय में ही हुई। काशी विश्वविद्यालय से इन्होंने उच्च शिक्षा प्राप्त की। रेणु जी एक अद्भुत किस्सागो थे और उनकी रचनाएं पढ़ते हुए लगता है मानो कोई कहानी सुन रहे हो। इनका लेखन प्रेमचंद की सामाजिक यथार्थवादी परंपरा को आगे बढ़ाता है।

18.5 कठिन शब्दावली

टीशन – स्टेशन

खानसामा – रसोईया

18.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

प्र. 1 उ. 1921

प्र. 2 उ. आंचलिक उपन्यासकार

18.7 संदर्भित पुस्तकें

फणीनश्वरनाथ रेणु, मैला आंचल

18.8 सात्रिक प्रश्न

प्र. 1 फणीश्वरनाथ रेणु के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालिए।

प्र. 2 रेणु जी की आंचलिकता पर प्रकाश डालिए।

*****

इकाई–19

मैला आंचल उपन्यास का सार एवं उद्देश्य

संरचना

19.1 भूमिका

19.2 उद्देश्य

19.3 मैला आंचल उपन्यास का सार

19.3.1 मैला आंचल उपन्यास का उद्देश्य

स्वयं आकलन प्रश्न

19.4 सारांश

19.5 कठिन शब्दावली

19.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

19.7 संदर्भित पुस्तकें

19.8 सात्रिक प्रश्न

इकाई-19

मैला आंचल उपन्यास का सार एवं उद्देश्य

19.1 भूमिका

इकाई अठारह में हमने फणीश्वरनाथ रेणु के जीवन और सृजित साहित्य का अध्ययन किया। इकाई उन्नीस में हम रेणु कृत मैला आँचल उपन्यास के सार एवं उद्देश्य का अध्ययन करेंगे।

19.2 उद्देश्य

इकाई उन्नीस का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि

1. 'रेणु' कृत मैला आंचल उपन्यास का सार क्या है ?
2. मैंला आंचल उपन्यास का उद्देश्य क्या है ?

19.3 मैला आँचल उपन्यास का सार

इस इकाई में पहले तो अंचल और आंचलिकता की परिभाषा पर विचार किया गया है। फिर हिंदी के आंचलिक उपन्यासों की परंपरा का संक्षिप्त उल्लेख किया गया है। प्रमुख रूप से ''मैला आंचल'' में आंचलिक पहलू किन-किन रूपों में प्रस्तुत हुए हैं, इस पर इकाई में चर्चा की है। ''मैला आंचल'' में रेणु ने एक बहुत ही महत्वपूर्ण तकनीक का प्रयोग किया है, जिसके द्वारा आंचलिक परिवेश के सौंदर्य, उसकी सजीवता और मानवीय संवेदनाओं को उजागर किया है। दृश्यों को चित्रित करने के लिए लेखक ने गीत, लय-ताल, वाद्य (नगाड़ा), ढोल, मनार, खंजडी नृत्य, लोकनाटक जैसे उपकरणों का बखूबी इस्तेमाल किया है। ध्वनि का जैसा, जितना सर्जनात्मक उपयोग 'मैला आंचल' में हुआ है, उतना शायद ही हिंदी के किसी अन्य उपन्यास में हुआ हो। 'ढाक दिन्ना, ताक ढिन्ना', 'डा डिग्गा'। 'रि-रित्ता धिन-ता' आदि की अनुगूंज सारे उपन्यास में सुनाई देती है। ध्वनियों के द्वारा लेखक ने पूरे परिवेश को वाणी दी है। लोकगीतों की कड़ियां स्थान-स्थान पर लेखक की मनोभावना व विचार को ही अभिव्यक्त करती है।

मठ के वातावरण को चित्रित करने के लिए प्रातःकाल का कीर्तन, 'बीजक पाठक साहेब बन्दगी', का अभिवादन और 'सतगुरू हो! सतगुरू । को बार-बार दोहराने का उपयोग सफलता से किया गया है।

राजनीतिक पार्टियों की गतिविधियों की सरगर्मी को दिखाने के लिए तरह-तरह के नारों से सहायता ली गई है। कहीं 'किसान राज कायम हो। 'मजदूर राजू कायम हो।' 'गरीबों की पार्टी सोशलिस्ट पार्टी, सोशलिस्ट पार्टी जिंदाबाद' की ध्वनि है तो कहीं जै वो गन्ही महतमा की जैहो' की गूंज सुनाई पड़ती है। जलसे-जुलूस और ! 'मीटिंगों' में भी ध्वनि और भाषणों का योगदान है। नारों को कहीं-कहीं गीतों में ढालने का उपक्रम भी है।

'मैला आंचल में आंचलिक पहलू उभारने के लिए लेखक ने अंचल के भौगोलिक परिस्थितियों के चित्रण से लेकर सामाजिक-सांस्कृतिक पर्यावरंण के चित्रण तक बड़ी गहराई व लगाव से प्रस्तुत किया है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना जरूरी है कि आंचलिकता और स्थानीय रंगत में अंतर होता है। स्थानीय रंग वाले उपन्यासों में उसका वातावरण कथा और चरित्र तत्वों में अविछिन्न नहीं होता। आंचलिक उपन्यास में उसका वातावरण उपन्यास के कथ्य और चरित्रों से अनिवार्यतः जुडा होता है। 'मैला आंचल' में मौजूद मेरीगंज गांव भौगोलिक, सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से अन्य किसी गांव से भिन्न है। इसकी भिन्नता को आपने इस इकाई में रेखांकित अंचल की विशेषताओं के द्वारा समझा ही है। बोली-बानी की भिन्नना तथा गीतों, रीतिरिवाजों आदि के सूक्ष्म ब्योरों द्वारा मिथिला अंचल की लोक संस्कृति की सांस्कृतिक व्याख्या के साथ-साथ बदलते हुए यथार्थ के परिप्रेक्ष्य का भी आपने इस इकाई में अध्ययन किया। मेरीगंज में मनाए जाने वाले तीज-त्यौहारों, गांव में मनाए जाने वाले ऋतुपर्यो, लोकव्यवहार के विविध रूपों व मानवीय संबंधों के विशिष्ट रूपों के वर्णन के माध्यम से रेणु ने 'मैला आंचल' में अपने प्रिय अंचल का इतना गहरा व व्यापक चित्र खींचा है कि सचमुच यह उपन्यास हिंदी में आंचलिक औपन्यासिक परंपरा की सर्वश्रेष्ठ कृति बन गया है।

19.3.1 मैला आंचल उपन्यास का उद्देश्य

1946 में बिहार के सुदूर पिछड़े गांव में पुलिस या सेना के जवानों के पहुंचने का क्या प्रभाव होता है इसका चित्रण उपन्यास के प्रारंभ में मिलता है। बिना किसी पड़ताल के गांव में बिजली की तरह खबर फैलती है कि 'मलेटरी ने बहरा चेथरू को गरबक कर लिया है।' खबर फैलने के पीछे पृष्ठभूमि यह है कि 1942 के जन आंदोलन के समय इस गांव में तो न कोई घटना घटी, न ही सेना-पुलिस आई, लेकिन जिले भर की घटनाएँ बढ़-चढ़ कर अफवाहों के रूप में यहाँ खूब फैली और इन बढ़ी-चढ़ी खबरों या अफवाहों से भारत में ब्रिटश औपनिवेशिक शासन का त्रासजनक चित्र गांव वासियों में फैलता है। इसीलिए वर्दीधारी चाहे जिस कारण में गांव में आए हैं, उनका प्रथम प्रभाव एक दमनकारी सत्ता के तंत्र रूप में ही पड़ता है। रेणु ने इस प्रभाव को एक नाटकीय रूप देकर 'मैला आंचल' के प्रारंभ में ही चित्रित किया है।

डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के बंगाली अधिकारी 'मलेरिया सेंटर' खोलने के लिए गांव में सुरक्षा कर्मियों के साथ आ गए हैं। गांव में खबर फैलती है गिरफ्तारियाँ की और गांव के लोग गांव के स्वतंत्रता सेनानी बालदेव गोप को खुद ही बांध ले आते हैं, क्योंकि बालदेव दो साल जेल में रहा है, खद्दर पहनता है और 'जै हिंद' बोलता है। इस घटना का नाटकीय अंत होता है, बालदेव के अतिरिक्त सम्मान से, क्योंकि बंगाली अफसर का किरानी जीत्तन बाबू पहले कांग्रेस दफ्तर का किरानी था और वह बालदेव की प्रशंसा के पुल बांध देता है।

आंचलिकता का पहला रंग उघड़ता है 'गाँववासियों के पिछड़ेपन के चित्रण के रूप में, जहाँ अभी शिक्षा और जागृति के चिन्ह नहीं हैं और 'सरकार वहादुर' की मानसिक गुलामी से लोग बंधे हैं। पिछड़ेपन के चित्रण के साथ गांव की पृष्ठभूमि का अंकन भी रेणु ने किया है। यह गांव है मेरीगंज, जो दौतहट स्टेशन से सात कोम पूरब, बूढ़ी कोशी नदी के पार है।'

इस गांव का पहले कुछ और नाम था। उन्नीसवीं सदी के आखिर और बीसवीं सदी के शुरू में इस क्षेत्र में नील की खेती के लिए अंग्रेजों ने यहाँ गांव-कस्बों-जंगलों-मैदानों में कोठियां बनाई। बीसवीं सदी के शुरू में आए डब्लू. जी. मार्टिन ने इस गांव में कोठी बनवाई और गांव का नाम बदलकर अपनी नयीनवेली दुल्हन मेरी के नाम पर रखा 'मेरीगंज'। गांव का नाम तो हो गया मेरीगंज, लेकिन मेरी यहाँ कुल एक सप्ताह ही रह पाई और 'जडैया' बुखार से चल बसी। मार्टिन को तब पता चला कि गांव में पोस्ट आफिस से पहले डिस्पेंसरी खुलवाना जरूरी है। मेरी की याद में मार्टिन ने डिस्पेंसरी के लिए जमीन दी, जमीन आसमान एक किया, लेकिन डिस्पेंसरी न खुलवा सका और पागल होकर मर गया। ब्रिटिश उपनिवेश ने जिस प्रकार की शासन व्यवस्था स्थापित की, इसका प्रभाव आज भी देखा जा सकता है। और पैंतीस बरस बाद अब गांव में मलेरिया सेंटर। डिस्पेंसरी खुलने जा रही थी।

रेणु की सजनात्मकता का कमाल इस बात में है कि उन्होंने अपना कथानक इस प्रकार बुना है कि आंचलिकता के चित्रण के रूप में मेरीगंज का भोगौलिक चित्र ही नहीं, वहाँ का सामाजिक-सांस्कृतिक चित्र भी उद्घाटित होता है, लेकिन इससे भी बढ़ कर औपनिवेशक शामन-व्यवस्था का, नग्न चित्र भी साथ-साथ उद्घाटित होता है।

मेरीगंज के सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन का चित्रण करते हुए रेणु गांव में बारह वर्ण होने की बात करते हैं। इस गांव में तीन जातियां प्रमुख हैं- राजपूत, कायस्थ व यादव। इन के अंतर्विरोधों को रेणु ने बड़ी सूक्ष्मता से चित्रित किया है जिस पर आगे चर्चा की जाएगी।

सामाजिक भेदभाव

गांव में कबीरपंथी डेरा है, जिसके महंत सेवादास इलाके के ज्ञानी साधु समझे जाते हैं। लेकिन लछमी नाम की लड़की को लेकर महंत की बदनामी भी है। महंत अंधा हो जाता है और गांव वालों को विश्वास है कि लछमी जैसी अबोध बालिका को अपनी दासी बनाने के कारण यह अंधा हुआ है। इस महंत के चेले रामदास को भी जनविश्वास में लछमी पर आंख रखने वाला लंपट ही समझा जाता है। लेकिन यही महंत जब रात के सपने की बात कहकर जनता

को गांव में खुल रहे अस्पताल के पक्ष में कर लेता है व साथ ही गांववासियों के लिए भण्डारे की घोषणा कर देता है तो गांव वालों का नजरिया उसके प्रति बदल जाता है। पूड़ी–जलेबी और दही–चीनी के भण्डारे में जनमत बदल जाता है। गांव के अनेक ऐसे गरीब टोले हैं, जिन्होंने जीवन में कभी पूडी–जलेबी चखी भी नहीं। इस भंडारे में गांव का जातीय भेदभाव भी उद्घाटित होता है। ब्राह्मण टोली वालों का अलग, राजपूतों का अलग और नीची जातियों का खान–पान अलग।

'मैला आंचल' में लेखक का सर्वाधिक ध्यान अंचल की जन–चेतना को चित्रित करने पर केंद्रित है। गांव में अस्पताल बनने की प्रक्रिया, राष्ट्रीय आंदोलन की पृष्ठभूमि, राष्ट्रीय आंदोलन के संदर्भ में औपनिवेशिक दमन और दमन के सामने सामान्य जन का कुछ झुकना व कुछ प्रतिरोध करना इन सभी स्थितियों को रेणु ने पूर्णिया जिला के जनसामान्य के प्रति हार्दिक संवेदना महसूस करते हुए चित्रित किया है। साथ ही साथ मिथिला अंचल की लोक संस्कृति भी सहज रूप से अंकित होती चलती है।

कथा का आरंभ डॉ. प्रशांत कुमार के गांव आने से होता है, लेकिन डॉ. के गांव पहुंचने से पहले लेखक गांव की सामाजिक–सांस्कृतिक स्थितियों का एक रेखाचित्र पृष्ठभूमि के रूप में उकेर देता है। मिथिला क्षेत्र में सभागाछी अर्थात् विवाहार्थी मैथिलों के मेले का जिक्र भी लेखक ने 'जोतखी जी' के नकली दांत लगवाने के हंसी खेल भरे प्रसंग में कर दिया है। गांव की जाति भेद की चेतना ब्राह्मण टोली द्वारा डॉ. की जाति के प्रति जिज्ञासा दिखाने खाना खाने के प्रति विरोध दिखाने से प्रकट होती है।

डॉ. प्रशांत कुमार के गांव पहुंचने के पहले ही महंत सेवादास की मृत्यु हो जाती है और यहाँ पहली बार मिथिला की लोक संस्कृति अपने धार्मिक पाठ वाले लोकगीतों में प्रकट होती है। सबसे पहले बीजक का पाठ शुरू होता है, महंत को मिट्टी दी जाती है, उनकी देह पर सफेद चादर ओढ़ाई जाती है, तब महंत का चेला रामदाम निरगुन गाता है।

कांचहि बांस के पिंजड़ा
जामें दियरो न बाती हो
अरे हंसा उड़ल आकाश
कोई संगी न साथी हो!

महंत की मृत्यु के बाद दासी व कोठारिन लछमी और स्वतंत्रता सेनानी बालदेव जी में निकटता और बढ़ जाती है। लछमी अपने बीजक की प्रति बालदेव को रोज पाठ करने के लिए देती है। मेरीगंज के डेरे के चित्रण में मिथिला क्षेत्र में संत कबीर व कबीर पंथ के प्रभाव का भी पता चलता है। हालांकि कबीर जैसे विद्रोही संत ने जीवन में तमाम धार्मिक व सामाजिक विकृतियों और निरूपताओं के प्रति विद्रोह किया, लेकिन चार सौ बरस बाद उनके नाम पर चलाए गए पंथ में वही सब विकृतियां प्रवेश करती दिखाई देती हैं, जिनके विरुद्ध कबीर की वाणी अपनी प्रखरता में गूंजी थी। यही स्थिति स्वतंत्रता आंदोलन के संदर्भ में भी उद्घाटित होती है। महात्मा गांधी के नेतृत्व में बालदेव व वावनहाथ जैसे लाखों ईमानदार कार्यकर्ताओं ने जो आंदोलन चलाया, वह गांधी जी के जीवन काल में और बाद में किंन विकृतियों का शिकार हुआ है यह भी 'मैला आंचल' में अच्छी तरह उद्घाटित हुआ है।

डॉ. प्रशांत कुमार के उपन्यास में प्रवेश से आंचलिकता, जातीयता और राष्ट्रीयता के उलझे सवाल और गति प्राप्त करते हैं। मेरीगंज में नाम पूछने के बाद लोग जात पूछते हैं और प्रशांत के शब्दों में उसकी जाति है – डॉ. बंगाली है या बिहारी? नहीं, वह 'हिंदुस्तानी : है।

डॉ. वास्तव में अनाथ बालक है, जिसे डॉ. अनिल कुमार बनर्जी की पत्नी स्नेहमयी ने पाल–पोस कर बड़ा किया है। कोशी नदी से वह उपाध्याय परिवार को मिला था, जिसने उसे परित्यक्ता स्नेहमयी को सौंप दिया था। 1942 के जन–आंदोलन में डाक्टर ने हिस्सा लिया था और 1946 में कांग्रेसी मंत्रिमंडल में रिहाई के उपरांत विदेश जाने की बजाय

उसने मेरीगंज में मलेरिया सेंटर में रिसर्च करने का फैसला किया था। वही प्रशांत अब मार्टिन के सपने और अपने आदर्श को पूरा करने मेरीगंज आया है। यहाँ मेरीगंज आकर ही उसे यथार्थ की, लोकजीवन की वास्तविकताओं का भी बोध होता है। प्रशांत को विदा करने आई उसकी मित्र ममता उसे बाबा विश्वनाथ का प्रसाद देकर भारतीय वैज्ञानिक व्यवहार के अंतर्विरोध को भी प्रकट कर देती है। ममता स्वयं भी डॉ. है, लेकिन मंगल कामना उसे बाबा के प्रसाद में ही दिखाई देती है। मेरीगंज अंचल की कई विशेषताओं को रेणु ने अपने प्रमुख पात्र डॉ. प्रशांत के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

'गांव के लोग बड़े सीधे दिखते हैं, सीधे का अर्थ यदि अनपढ़, अज्ञानी और अंधविश्वासी हो तो वास्तव में सीधे हैं वे। जहाँ तक सांसारिक बुद्धि का सवाल है, वे हमारे और तुम्हारे जैसे लोगों को दिन में पाँच बार ठग लेंगे। और तारीफ यह है कि तुम ठगी जाकर भी उनकी सरलता पर मुग्ध होने के लिए मजबूर हो जाएगी। यह मेरा सिर्फ सात दिन का अनुभव है। संभव है पीछे चलकर मेरी धारणा गलत साबित हो। मिथिला और बंगाल के बीच का यह हिस्सा वास्तव में मनोहर है। औरतें साधारणत: सुंदर होती है, उनके स्वास्थ्य भी बुरे नहीं।

पिछड़े क्षेत्रों के ग्रामीणों संबंधी यह धारणा केवल मेरीगंज ही नहीं, देश के किसी भी क्षेत्र पर लागू हो सकती है। लेकिन यहाँ अंचल की विशिष्टता भी प्रकट होती है। इसके मनोहारी रूप में यानि प्राकृतिक पर्यावरण की दृष्टि में और औरतों की सुंदरता यानि सामाजिक-सांस्कृतिक पर्यावरण की दृष्टि में। लेखक ने अपने पात्र डॉ. प्रशांत के जरिये अपनी भावनाओं व विचारों को व्यक्त करने का प्रयास भी किया है।

डॉ. का गाँव में पहला चुनौतीपूर्ण रोगी है – तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद की बेटी कमला जो एक स्तर पर मानसिक रोगी है, लेकिन इस रोग की अभिव्यक्ति कई बार शारीरिक स्तर पर भी होती है। कमला युवा लड़की है, जिसका अनेक कारणों से अभी विवाह नहीं हो पाया है। दो तीन जगह बात पक्की होकर टूट गई और अब कोई लड़का तैयार न होने से कमला को अपने अस्वीकृत किए जाने का मानसिक आघात है, जो तहसीलदार की अकेली लाडली बेटी होने से तिरिक्त संवदेनशील होने से अधिक तीव्रता प्राप्त करता है। डॉ. द्वारा इसका इलाज रेडियो के गीत से शुरू होता है और कमला खिल-खिलाने लगती है।

स्त्री-पुरुष संबंध के प्रति दृष्टिकोण

'मैला आंचल' में चित्रित अंचल में लगता है कि स्त्री-पुरुष संबंधों को लेकर जन-चर्चाएं जैसी भी हों, कुंठाएं उतनी नहीं हैं। इन संबंधों में महंत सेवादाय लछमी संबंध, महंत रामदाम-रामप्यारी संबंध, फुलिया-सहदेव मिश्र संबंध, रामप्यारी की मां के संबंध इत्यादि शामिल हैं। कुछ हद तक इन संबंधों में उन्मुक्तता का प्रभाव नजर आता है। लेकिन यह मिथिला की लोक संस्कृति का विशिष्ट लक्षण नहीं हो सकता, कोई लोक संस्कृति स्त्री के शोषण की परंपरा या रीति को मान्यता नहीं देती। स्त्री के प्रति विकृत व दमनकारी रवैए का विरोध भी होता है हर शोषण के विरोध में उठी आवाज को रेणु ने अभिव्यक्ति दी है। महंत सेवादास के बाद रामदास का महंत बन गया था। महंत बनते ही मठ की दासिन लक्ष्मी को अपने वश में करके उसके शरीर को भोगना चाहता है, कोई न कोई बहाना बनाकर वह लक्ष्मी को पास बुलाना चाहता है। लेकिन सेवादास द्वारा लक्ष्मी की किशोरावस्था में ही किए शारीरिक शोषण को वह कैसे भुला पाती? तब वह अनाथ और असहाय बच्ची थी, यौवन से पहले ही उसके शरीर पर उसके दादा जितने बड़े सेवादास ने अत्याचार किए थे। वह रोज रात उसके शरीर को नोचता खसोटता और एक निरीह बालिका सिवाय रोने के कुछ नहीं कर पाती थी। यादवटोली का किसन महंत के इस कुकर्म के बारे में कहता है, 'अंधा महंत अपने पापों का प्राच्छित कर रहा है। बाबाजी होकर जो रखेलिन रखता है, वह बाबाजी नहीं। ऊपर बाबाजी भीतर दगाबाजी। क्या कहते हो? रखेलिन नहीं, दासिन है? किसी और को सिखाना। पांच वर्ष तक मठ में नौकरी किया है, हमसे बढ़कर और कौन जानेगा मठ की बात? और कोई देखें या नहीं देखें, ऊपर परमेश्वर तो है।

मंहत जब लछमी दासिन को मठ पर लाया था तो वह एकदम अबोध थी, एकदम नादान। एक ही कपड़ा पहनती थी। कहां वह बच्ची और कहां पचास बरस को बूढ़ा गिद्ध। रोज रात में लछमी रोती थी-ऐसा रोना कि जिसे सुनकर

पत्थर भी पिघल जाते थे। रोज सुबह लछमी दूध लेने बथान पर आती थी, उसकी आंखे कदम के फूल की तरह फूली रहती थीं। रात में रोने का कारण पूछने पर चुपचाप टुकुर-टुकुर मुंह देखने लगती थी....... ठीक गाय की बाछी की तरह, जिसकी मां मर गई हो.... मंहत द्वारा लछमी के यौन शोषण के प्रति गांव के लोगों के मन में गुस्सा था। विरोध का स्वर बहुत तीव्र नहीं था लेकिन मंहत की इस घिनौनी हरकत पर लोग उसकी आलोचना करते हुए दिखते हैं, 'मंहत सेवादास इस इलाके के ज्ञानी साधु समझे जाते थे, सभी शास्त्र-पुराण के पंडित! मठ पर आकर लोग भूख-प्यास भूल जाते थे। बड़ी पवित्र जगह समझी जाती थी। लेकिन जब मंहत दासिन को लाया, लोगों की राय बदल गई।' जिस लछमी को मंहत सेवादास ने लड़ाई-झगड़े और मुकदमे करके कानूनी तौर पर हासिल किया था। जब सेवादास के वकील ने मंहत को समझाकर कहा था तब मंहत साहब ने वकील को विश्वास दिलाते हुए कहा था- 'वकील साहब, लक्ष्मी बेटी की तरह रहेगी...'।

लेकिन मंहत ने अपनी लालसा को ज्यादा महत्व दिया बजाए इसके कि लक्ष्मी को एक बाप की तरह सुरक्षा प्रदान करता। एक पुरुष सत्तात्मक समाज स्त्री के बारे में कितना नृशंस और अत्याचारी हो सकता है, इसकी यह मिसाल है।

रेणु ने मिथिला अंचल की नारी की स्थिति की वास्तविकता को चित्रित किया है। नारी को सम्मान-जनक स्थान देने के पक्ष में वहां का पुरूष समाज आज भी तैयार नहीं है। चाहे वह सामाजिक अधिकार हो अथवा आर्थिक या सांस्कृतिक, हर बात में पुरूष की मर्जी को अहमियत दी जाती है।

फुलिया एक विधवा बेटी है, उसके दूसरे विवाह की चिंता करने के स्थान पर उसके द्वारा शरीर बेचकर आई कमाई पर उसके माता-पिता अपने घर का खर्च चला रहे हैं। उसके लिए दिवाने खलासी को टालते जा रहे हैं। फुलिया स्वयं भी खलासी से शादी करना चाहती है लेकिन मां-बाप के आगे वह कुछ नहीं बोल पाती। अपनी मामी के सामने वह दिल की बात खोल देती है, 'मामी, काली किरिया, किसी से कहना मत। खलासी जी इतने दिनों से दौड़ रहे हैं। बाबा कोई बात साफ-साफ नहीं कहते हैं। आखिर वह बेचारा कब तक दौड़ेगा।

यहां नहीं तो कहीं और ढूंढेगा। दुनिया में कहीं और तंत्रिमा की बेटी नहीं है क्या?' फुलिया की असहायता यहां पर व्यक्त हुई हैं। फुलिया की इस स्थिति को अन्य लोग भी समझते हैं, गांव की उसकी बूढ़ी काकी चिंता करते हुए दिखती है, यह चाहती है कि फुलिया की खलासी से शादी हो जाए तो उसका भी घर बस जाएगा। इसीलिए फुलिया की मां से वह कहती है 'अरे फुलिया की माये! तुम लोगों को न तो लाज है और न धरम। कब तक बेटी की कमाई पर लाल किनारी वाली साड़ी चमकाओगी? आखिर एक हद होती है किसी बात की। मानती हूँ कि जवान बेवा बेटी दुधार गाय के बराबर है। मगर इतना मत दूहो कि देह का खून भी सूख जाए।'

असहाय श्री की दयनीय स्थिति व पूरी त्रासदी को बयान करता है यह वक्तव्य। बालदेव और लछमी व कमला और डॉ. प्रशांत कुमार के संबंध भी प्रेम संबंधों के दायरे में आते हैं। यहाँ तक कि कंवारी कमला तो मां तक बनती है, लेकिन गांव के जन-जीवन में वैसा तूफान नहीं आता है। कालीचरण और मास्टरनी मंगलादेवी में भी प्रेम संबंध हैं। कुछ तो मिथिला के जन-जीवन में कृष्ण कथा व विद्यापति आदि के प्रेम गीतों के प्रभाव से व कुछ स्वयं लेखकीय दृष्टि में स्त्री-पुरुष संबंध चाहे उनका कोई भी स्वरूप हो, वे उन्मुक्त यौन संबंध ही क्यों न हों, उतने अगृहणीय, अनैतिक या असंदर प्रतीत नहीं होते, जितने सामान्य उत्तर भारतीय नैतिक जीवन के लगते हैं। जहाँ पर स्त्री का दैहिक शोषण प्रेम रहित है, उन संबंधों को कुछ हद तक लेखक ने घृणित संबंधों के रूप में चित्रित कर प्रेम संबंधों के प्रति अधिक उन्मुक्त व तार्किक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है।

लोक गीतों में अभिव्यक्त लोक संस्कृति

मिथिला क्षेत्र की लोक संस्कृति में होली के समय जोगिया व भउजिया गान बहु प्रचलित हैं। इन लोकगीतों व अन्य लोक परंपराओं का चित्रण उपन्यास में अनेक स्थलों पर हुआ है। गाड़ीवान भउजिया गाते चलते हैं।

चढ़ली जवानी मोश संग कड़के से

कब होइहैं गबना हमार रे 'भउजिया'

कमला की चूंकि कोई भौजी नहीं है, सो दिल का हाल किससे कहे? डॉ. के प्रति उसके मन में गहरा आकर्षण पैदा हो गया है। डॉ. को इस अंचल की लोक संस्कृति के प्रति भारी जिज्ञासा है। गाँव के समय-समय पर होने वाले मेलों-त्यौहारों में वह खूब रूचि लेता है। खम्हार... खुलने के दिन गाँव में विदापत नाच है, डॉ. की 'विदापत नाच' के प्रति जिज्ञासा से बालदेव हैरान है कि डॉ. इतना 'खराब' नाच क्यों देखेंगे। मृदंग बज रहा है

धिनक धिनक धा तिरकिट धिन्ना

धिनक धिनक धा तिरकिट धिन्ना

नाच में विकटा यानि विदूषक की भी भूमिका है। विदापत नाच में काम देवता मदन की भी अराधना है। डॉ. इस लोकगान से दंग है, तहसीलदार से वह रचयिता के संबंध में पूछता है और तहसीलदार का जवाब है 'आप भी डॉ. बाबू क्या पूछते हैं, तहसीलदार साहब हंसते हैं इनकी रचना के लिए भी क्या कोई तुलसीदास और बाल्मीकि की जरूरत है? खेतों में काम करते हुए तुक पर तुक मिला कर गढ़ लेता है।

विदापत नाच देखने पर डॉ. को कोमल गीतों की पंक्तियां याद आती हैं 'पिया भइले डुमरी के फूल रे पियवा भइले। डॉ. को गांव का लोकगान देखकर बहुत देर से उलझे प्रश्न का उत्तर भी मिल जाता है। डॉ. की उलझन थी विद्यापति के गीतों की रचना के संबंध में और उसे समाधान मिलता है जिंदगी भर बेगारी खटने वाले, अनपढ़ गंवार और अर्धनग्नों के कवित्त में कवि! तुम्हारे विद्यापति के गान हमारी टूटी झोपड़ियों में जिंदगी के मधुरम बरसा रहे हैं। ओ कवि! तुम्हारी कविता ने मचलकर एक दिन कहा था

'चलो कवि वनफूलों की ओर

वनफूलों की कलियां तुम्हारी राह देखती हैं।'

रेणु के मिथिला अंचल की लोक संस्कृति के इस संवदेनशील चित्रण के कारण ही शायद नेमिचंद्र जैन ने कहा था 'भारतीय देहात के मर्म का इतना सरस और भावप्रवण प्रस्तुतिकरण हिंदी में संभवत: पहले कभी नहीं हुआ था।' ('अधूरे साक्षात्कार) बिहार और उत्तर प्रदेश में होली का त्यौहार सर्वाधिक जोश-खरोश में मनाया जाता है और इन प्रांतों का सांस्कृतिक चित्र इस त्यौहार के चित्र के बगैर अधूरा है। सो रेणु ने भी 'मैला आंचल' में मेरीगंज में मनाई जाने वाली होली का खूब रंगीन चित्रण किया है। फुलिया नैहर में होली मनाना चाहती है, वह गाती है।

नयना मिलानी करी ले रे सैंया, नयना मिलानी करी ले!

अब की बेर हम नैहर रहबौ, जे दिल चाह से करी ले।

होली ऐसा त्यौहार है, जिसमें स्त्री-पुरूष में रोमांस खुलकर प्रकट होता है, यहाँ तक कि थोड़ी बहुत छेड़छाड़ भी सामाजिक रूप से स्वीकृत है

अरे बहियाँ पकडि झकझोरे श्याम रे

फूटल रेसम जोड़ी चूड़ी

मासकि गयी चोली, भींगावल साड़ी

आंचल उड़ि जाये हो ऐसो होरी मचायो श्याम रे!

भारतीय देहात में सब कुछ सरस व मर्मस्पर्शी ही नहीं है, अशिक्षा और मानसिक पिछड़ेपन के कारण बहुत कुछ यंत्रणादायी भी है। डॉ. ने मेरीगंज समेत पन्द्रह गांवों का स्वास्थ्य की दृष्टि से जो अध्ययन किया है, परिणाम बड़े कष्टकारी है। बला की खूबसूरत निरमला मात्र एक बूंद आई ड्राप के अभाव में अंधी हो गई है। एक भद्र महिला, अधेड़ स्त्री, गनेश की नानी व सरबती की मां को गांववासी अपने अंधविश्वास में डाइन का दर्जा दे देते हैं।

डॉ. के हाथों गणेश व उसकी नानी दोनों का उद्धार होता है। गणेश को वह रंग लेता है और उसकी नानी को मौसी बनाकर उसके घावों पर मरहम लगाता है। लेकिन गणेश की नानी की गांववालों द्वारा हुई हत्या को वह नहीं रोक पाता।

उपन्यास में कुछ स्थलों पर लेखक ने समााज में हो रहे परिवर्तनों को तथ्यात्मक रूप में अंकित किया है। जैसे 'कपड़ा, राशन पर मिलता है। सारे गांव के लोग अर्धनग्न हैं। मर्दों के पैन्ट पहनने का रिवाज शुरू होने की सूचना है और बारह वर्ष तक के बच्चे नंगे हीं रहते हैं।'

होली में गाए जाने वाले 'जोगिड़ा लोकगीत में थोड़ी अश्लीलता भी रहती है, मगर इसका सामाजिक व्यंग्य अधिक गहरा होता है। 'गोदान' का होली प्रसंग भी गोबर द्वारा गांव के शोषकों का चेहरा उघाड़ कर निर्मित हुआ था। 'मैला आंचल' के जोगीड़ा का भी यही स्वर है।

जोगीड़ा सर

जोगी जी ताक धिन-धिन

चर्खा कातो खद्दड़ पहनो, रहे हाथ में झोली

दिन दहाडे करो डकैती बोल सुराजी बोली

1947 से पहले ही कांग्रेस का यह हाल रेणु ने चित्रित किया है। लेकिन कांग्रेस के इस पतन से सच्चे सुराजी बावनदादू जैसे लोग दुःखी हैं। डेढ़ हाथ का अज्ञात कुलशील, जन्मजात साधू! रेणु के 'मैला आंचल' के सभी जन-सेवक चरित्र अज्ञात कुलशील ही हैं- डॉ. प्रशांत और बावनदास दोनों अज्ञात कुलशील हैं। दोनों ही अंचल को राष्ट्र से जोड़ते हैं। डॉ. ग्रामवामिनी भारत माता से अनुप्रणित है।

आंचलिक संस्कृति के जो अन्य मंच रेणु ने चित्रित किए हैं, उनमें मछली मारने का, सिख वैशाख-जेठ में 'तड़वन्ना' में तीन आने लवनी का चित्र, माने ताड़ी पीकर नशे में गाना बजाना और इस गाने-बजाने में क्रांतिकारी भाव भी शामिल हो जाता है।

अरे जिंदगी है किरांती से किरांती में बिताये जा

दुनिया के पूंजीवाद को दुनिया से मिटाये जा।

गाँव में 'जाट-जटिन' का खेल भी खेला जाता है। वर्षा के भी अनेक गीत मेरीगंज में प्रचलित हैं और रेणु ने साल भर का कोई ऐसा विशिष्ट अवसर नहीं छोड़ा है, जिसका लोकगीतों से रंगा चित्रण उन्होंने 'मैला आंचल' में न किया हो। केवल पारंपरिक त्यौहार या लोकगीत ही नहीं, राजनीतिक या सामाजिक घटनाओं के सांस्कृतिक रूपों को भी उन्होंने अनोखे रूप से चित्रित किया है। भगत सिंह ने असेंबली में बम फेंका और मिथिला अंचल का गांव झूम उठा 'बम फोड़ दिया फटाक से मस्ताना भगत सिंह

और जवाहर लाल का वर्णन,

भारत का डंका लंका में

बजवाया वीर जमाहिर ने।

भगत सिंह पर तो स्वाधीनता दिवस पर नौटंकी भी बनाई जाती है। लेकिन सुराज के बाद हिंदू-मुस्लिम दंगे भी हो रहे हैं और बालदेव को पन्द्रह बीस बरस पुराना स्वतंत्रता संग्राम का इस अंचल में प्रचलित साम्प्रदायिक: सद्भाव का गीत याद आता है

अरे, चमके मन्दिरवा में चांद

मसजिदवा में बंसी बजे

मिली रहू हिंदू-मुसलमान

मान - अपमान तजो

उपन्यास के अंत में जेल से रिहा होकर डॉ. प्रशांत फिर गांव आता है और प्रण करता है 'मैं फिर काम शुरू करूंगा। यहीं इसी गांव में। आंसू से भीगी धरती पर प्यार के पौधे लहलहाएंगे। मैं साधना करूंगा ग्रामवामिनी भारत माता के मैले आंचल तले!'

इस प्रकार रेणु ने भारत माता के एक अंग के रूप में मेरीगंज को आधार बना कर 'मैला आंचल' का सृजन किया है। यह सृजन इसलिए अपूर्व रूप से सुंदर व मोहक है। क्योंकि रेणु का अपने अंचल से, उसके जन से, उसके मन से गहरा आत्मीय लगाव रहा है। 'मैला आंचल' का सृजन संदर्भ आंचलिक है, लेकिन इस सृजन की विश्व दृष्टि देश प्रेम से परिपूर्ण राष्ट्रीय दृष्टि है। इसलिए अंचल और राष्ट्र एक स्तर पर एक दूसरे में घुल मिल जाते हैं। रेणु अपनी भूमिका में कही गयी बातों को उपन्यास में सही मिद्ध कर देते हैं।

स्वय आकलन हेतु प्रश्न

प्र. 1 मैला आंचल उपन्यास के लेखक कौन हैं ?

प्र. 2 डॉ. प्रशांत किस उपन्यास के नायक हैं।

19.4 सारांश

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि 'मैला आंचल' का कथानायक एक युवा डॉक्टर है जो अपने शिक्षा पूरी करने के बाद एक पिछड़े गाँव को अपने कार्य-क्षेत्र के रूप में चुनता है तथा इस क्रम में ग्रामीण जीवन के पिछड़ेपन, जनता की पीड़ाओं और संघर्षों से भी उसका साक्षात्कार होता है।

19.5 कठिन शब्दावली

गौना - पति के साथ रहने हेतु विदा होकर आना

कनिया - वधु

19.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

प्र. 1 उ. फणीश्वर नाथ रेणु

प्र. 2 उ. मैला आंचल

19.7 संदर्भित पुस्तकें

फणीश्वर नाथ रेणु, मैला आंचल

19.8 सात्रिक प्रश्न

प्र. 1 मैला आँचल उपन्यास का सार अपने शब्दों में लिखिए।

प्र. 2 मैला आंचल की भाषा शैली की समीक्षा कीजिए।

*****

इकाई–20

मैला आंचल : एक अध्ययन

संरचना

20.1 भूमिका

20.2 उद्देश्य

20.3 मैला आंचल : एक अध्ययन

- हिंदी कथा साहित्य
- आंचलिकता
- कथानक
- समष्टिमूलक यथार्थवाद
- चरित्र चित्रण
- संवादात्मकता
- वातावरण चित्रण
- भाषा

स्वयं आकलन प्रश्न

20.4 सारांश

20.5 कठिन शब्दावली

20.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

20.7 संदर्भित पुस्तकें

20.8 सात्रिक प्रश्न

इकाई-20
मैला आंचल : एक अध्ययन

20.1 भूमिका

इकाई उन्नीस में हमने मैला आंचल उपन्यास के सार एवं उद्देश्य का अध्ययन किया। इकाई बीस में हम मैला आंचल का समीक्षात्मक अध्ययन करेंगे। समीक्षात्मक अध्ययन के अंतर्गत आंचलिकता, कथानक, चरित्र-चित्रण इत्यादि का अध्ययन किया जाएगा।

20.2 उद्देश्य

इकाई बीस का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जलने में सक्षम होंगे कि -

1. मैला आंचल उपन्यास का अध्ययन करेंगे।
2. आंचलिकता क्या है ?
3. समष्टिमूलक यथार्थवाद क्या है ?

20.3 मैला आंचल - एक अध्ययन

फणीश्वरनाथ 'रेणु' अप्रतिम गद्य-शिल्पी के रूप में विख्यात हैं। यों तो लिखना उन्होंने 1945 के आसपास से ही आरंभ कर दिया था किन्तु ख्याति उन्हें 1954 ई. में 'मैला आंचल' के प्रकाशन के बाद ही प्राप्त हुई। 'मैला आंचल' के प्रकाशन से हिंदी-उपन्यास के इतिहास में एक नई परंपरा की शुरूआत हुई। इसे आंचलिक उपन्यास कहा गया। निश्चय ही यह उपन्यास अपनी रचना-दृष्टि एवं शिल्प की मौलिकता में अनुपम है।

हिंदी कथा-साहित्य के क्षेत्र में चालीस के दशक में एक नया नाम फणीश्वरनाथ रेणु का जुड़ा। रेणु ने हिन्दी साहित्य को अमूल्य धरोहर कथा-साहित्य के रूप में दी। उन्होंने यथार्थ को उसके जीवन्त रूप में अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया हैं। वह अपनी धरती, अपनी मिट्टी से जुड़े हुए साहित्यकार है। उनके पात्र उनके जीवन के पात्र हैं। अपने साहित्य में रेणु ने गांवों की समस्याओं, राजनीतिक उथल-पुथल, अर्थ-संकट आदि का खुलकर वर्णन किया है। उपन्यासों में ग्रामीण उसकी सांस्कृतिक धरोहर के साथ चित्रित करके भारत की लुप्त प्राय संस्कृति की झलक दी है। हिन्दी साहित्य में उनका सबसे बड़ा योगदान रहा है कि उन्होंने कथा-साहित्य में आंचलिकता का समावेश किया। रेणु से पूर्व भी ग्रामीण परिवेश और ग्रामीण समस्याओं को आधार बनाकर साहित्य-सृजन हो रहा था। परन्तु रेणु ने आंचलिकता को प्रमुखता दी। उनका साहित्य अपने परिवेश की सच्ची तस्वीर प्रस्तुत करता है। उनके कथा-साहित्य में अंचल विशेष से जुड़े विविध पक्षों को देखा जा सकता है। 'मैला आंचल' फणीश्वरनाथ रेणु का प्रथम आंचलिक उपन्यास है। इस उपन्यास को उन्होंने आंचलिकता की परिधि में रखकर लिखा है। इसमें उन्होंने चित्रित अंचल के विविध पक्षों को उजागर किया है। 'मैला आंचल' की भूमिका में उन्होंने कहा है कि इसमें फूल भी हैं शूल भी, धूल भी है गुलाल भी, कीचड़ भी है चन्दन भी, सुन्दरता भी है कुरूपता भी मैं किसी से भी दामन बचाकर निकल पाया। इन पंक्तियों के द्वारा उन्होंने सिद्ध कर दिया है कि उपन्यास में विस्तार कितना अधिक है। उपन्यास में जीवन से जुड़े विविध पक्षों को दर्शाया गया हैं। रेणु जीवन के इन विविध अनुभवों से दामन बचाकर निकल नहीं पाये। क्योंकि वह जाने समाज और व्यक्ति से कहीं गहरे जुड़े हैं। व्यक्ति के जीवन को यही सतही न मानते हुए उसके हर्ष-विवाद, अच्छाई बुराई आदि किसी को भी अनदेखा नहीं कर पाए हैं। उन्होंने जो अनुभव किया उसे पूरी ईमानदारी के साथ अभिव्यक्त भी कर दिया। वहीं दूसरी ओर समाज में विद्यमान अनेक विद्रूपताओं, विसंगतियों को भी उपन्यास में स्थान दिया है। किसी अंचल को व्यापकता और गहराई के साथ उपन्यास में प्रस्तुत करने की कला रेणु के पास थी और उस कला का परिमार्जित रूप हमें 'मैला आंचल' में मिलता है।

- **आंचलिकता**

आंचलिक उपन्यास को समझने से पूर्व 'अंचल' शब्द के अर्थ को समझना आवश्यक हैं। 'अंचल' शब्द का सामान्य अर्थ है किसी वस्त्र का कोना, छोर या पल्ला। इसी 'अंचल' शब्द से आंचलिक शब्द बना है। किन्तु साहित्य में आंचलिक शब्द विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त होता है। साहित्य के क्षेत्र में आंचलिकता से अभिप्राय देश के किसी अंचल अर्थात प्रात या भाग से माना जाता है। कहने का अर्थ है कि देश का कोई भी विशेष भाग जिसकी अपनी संस्कृति हो, अपनी एक अलग बोलचाल की भाषा हो अपनी समस्याएं हो इस तरह से एक सामान्य देश भी जिसकी अपनी विशिष्टता हो अंचल कहलाता है। डा. त्रिभुवन सिंह ने 'अंचल' के विषय में कहा है कि अंचल का तात्पर्य उस विशिष्ट भूभाग से लिया जाता है जहा धार्मिक, सामाजिक व सांस्कृतिक मान्यताओं में एकरूपता हो। 'अंचल' का अर्थ होता है क्षेत्र जो अपनी कतिपय विशेषताओं के कारण किसी सम्पूर्ण वस्तु का अंग होते हुए भी अपना विशिष्ट महत्व रखता है। ये विशेषताएं भाषा और संस्कृति होती है जिनके निर्माण में वहां की प्रकृति का बड़ा हाथ होता है। मनुष्य के स्वभाव शक्ति और व्यवहार के निर्माण में यही प्रकृति कार्य करती है। अतः अचल भौगोलिक दृष्टि से वह भूभाग है जिसकी अपनी प्राकृतिक और सामाजिक महत्ता होती है।

हिंदी साहित्य में आंचलिक उपन्यासों की परंपरा स्वतंत्र्योत्तर काल में ही विकसित हुई है। स्वतंत्रता आदोलन केवल अंग्रेजों की दास्ता से मुक्ति का आंदोलन ही नहीं था बल्कि देश की सम्पूर्ण सांस्कृतिक चेतना के एकीकरण का भी आंदोलन था। यह स्वतंत्रता आदोलन उपेक्षित और पीड़ित वर्ग के उद्धार का आंदोलन भी था। प्रजातंत्र में व्यक्ति से महत्वपूर्ण समष्टि पर ध्यान दिया गया है। जन साधारण की सोच को केंद्र में रखा जाने लगा। हिंदी के आंचलिक उपन्यासों का मूल स्वर भी यही रहा है। हिंदी साहित्य में प्रेम चंद से ही आंचलिकता देखी जा सकती है। प्रेम चंद ने ग्रामीण परिवेश का उपन्यासों में चित्रण करके एक नई भावभूमि प्रदान की। 'गोदान' में यह प्रवृत्ति अधिक बलवती दिखाई दती है। यहां उन्होंने यथार्थ को प्रमुख मानकर गांवों के जीवन के साधारण और वास्तविक चित्र अंकित किए हैं। नागार्जुन के साहित्य में भी मिथिला अंचल को चित्रित किया गया है। इतने पर भी रेणु का 'मैला आंचल' हिंदी का पहला प्रौढ़ आचलिक उपन्यास माना जाता है। इससे पूर्व अंचल विशेष की सभी विशेषताओं को इतने व्यवस्थित ढंग से पहले प्रस्तुत नहीं किया गया है। पाठक को उपन्यास पढ़ते ही अंचल का सजीव चित्रण उपस्थित हो उठता है। डॉ. बच्चन सिंह ने स्वीकार किया है कि 'फणीश्वरनाथ रेणु' के उपन्यास ही सही अर्थो में आंचलिक है। सत्य तो यह है कि 'मैला आंचल' और 'परती परिकथा' में ग्रामांचलों के जितने विशद और व्यापक चित्र देखने को मिलते हैं, उतने अन्य तथाकथित आंचलिक उपन्यास में नहीं। इन दोनों उपन्यासों में ग्रामांचल की छोटी-छोटी घटनाओं, कथाओं, आचार-विचार, रीति-नीति, राजनीतिक-नैतिक अवधारणाओं, पारस्परिक सम्बन्धों के चित्र मिलते हैं जो पूरे अंचल के सन्दर्भ में संश्लिष्ट और गत्यात्मक हो गये हैं। रेणु जी ने प्रत्येक स्पन्दन को महसूस करते हुए उससे पाठक का परिचय कराया है। 'मैला आंचल' के पश्चात् हिन्दी साहित्य में आंचलिक उपन्यास का प्रचलन शुरू हो गया।

- **कथानक**

उपन्यास में कथावस्तु का विशेष महत्त्व रहता है जिसमें एक मुख्य कथा आरम्भ से लेकर अन्त तक चलती है और अनेक गौण कथाएं भी होती हैं। इसके विपरीत आंचलिक उपन्यासों में कथानक उसका अंचल ही होता है। पूरे विश्लिष्ट उपन्यास का ताना-बाना अंचल के इर्द-गिर्द बुना जाता है। यहा घटनाओं से अधिक महत्वपूर्ण अंचल की प्रस्तुति करना होता है। जहां उपन्यासों में कथानक में कोई कथा होती है वहीं आंचलिक उपन्यास में अंचल को ही कथा के रूप में चुना जाता है। जहा तक 'मैला आंचल' का सम्बन्ध है तो यह उपन्यास कथानक की नई संभावना पैदा करता है। इस उपन्यास पर कथानक न होने का आरोप लगता है। विद्वानों में विवाद रहा है। परन्तु यह आरोप वास्तविक नहीं है। मनुष्य की वास्तविकता को भागवत सत्य ही व्यक्त कर सकता है। इस कारण सामाजिक संस्थाओं की उपयोगिता कम हो जाती है। इस तरह देखा जाए तो साहित्य में कथानक आवश्यक नहीं है। महत्त्वपूर्ण व्यक्ति और समाज को

खोलकर प्रस्तुत करने की है। फणीश्वरनाथ रेणु व्यक्ति और समाज के सम्बन्ध को अनिवार्य मानकर चलते हैं। उन्होंने कथानक के द्वारा समाज के पुराने ढांचे को तोड़ा है। अभी तक जिस तरह उपन्यास का कथानक का विषय चुना जाता रहा था। रेणु ने उस परम्परा से हटकर एक नई ओर कथानक की दिशा को मोड़ दिया। इतना अवश्य स्वीकार किया जा सकता है कि रेणु ने कहीं पर भी कथानक की अवमानना नहीं की है। आमतौर पर उपन्यास के कथानक में घटना, चरित्र व विचारों के बीच कार्य–कारण सम्बन्ध होता है जिसके द्वारा कथानक आगे विकास करता चला जाता है। 'मैला आंचल' में ऐसा नहीं हुआ है। यहां चरित्र के आधार पर किसी प्रकार की नैतिकता को नहीं दिखाया गया है। उपन्यास में अंचल विशेष को आधार बनाकर उसे पूर्णता के साथ चित्रित किया गया है। 'भूमिका' में स्वयं रेणु ने कहा है कि यह है मैला आंचल एक आंचलिक उपन्यास कथानक हे पूर्णिया। पूर्णिया बिहार राज्य था एक जिला है, इसके एक ओर है नेपाल दूसरी ओर पाकिस्तान और पश्चिम बंगाल विभिन्न सीमाओं से इसकी बनावट मुकम्मल हो जाती है, जब हम दक्खिन में सन्थाल, परगना और पश्चिम में मिथिला की सीमा–रेखाएं खींच देते हैं मैंने इसके एक हिस्से के एक ही गांव को पिछड़े गांवों का प्रतीक मानकर इस उपन्यास–कथा का क्षेत्र बनाया है। इस तरह स्पष्ट हो जाता है कि उपन्यास के कथानक के केन्द्र में पूर्णिया जिला है जिसके एक गांव मेरीगंज को कथा गांव का केन्द्र बनाया गया है। यहां रेणु ने यह स्पष्ट कर दिया है कि यह एक गांव का वर्णन ही नहीं है बल्कि यह भारत के पिछड़े गांवों का प्रतीक बनकर आया है।

'मैला आंचल' में सारी कथा मेरीगंज के इंर्द–गिर्द ही रहती है। गांव के नामकरण, उथल–पुथल, हर्ष–उल्लास, विषाद आदि को उपन्यास में चित्रित किया गया है। गांव की दशा का खुलकर चित्रण किया गया है। उपन्यास में मेरीगंज की भौगोलिक स्थिति को भी स्पष्ट किया गया है। ऊपर बताया जा चुका है। पूर्णिया जिले की भौगोलिक स्थिति किस प्रकार की है। इसी तरह मेरीगंज गांव की भौगोलिक वास्तविकता से उपन्यास में परिचय कुछ इस प्रकार कराया गया है – 'ऐसा ही एक गांव है मेरीगंज। रौतहट स्टेशन से सात कोस पूरन, बूढी कोशी को पार करके जाना होता है। बूढ़ी कोशी के किनारे–किनारे बहुत दूर तक ताड़ और खजूर के पेड़ों से भरा हुआ जंगल है। इस अंचल के लोग इसे 'नवाबी तड़बन्ना' कहते है। किस नवाब ने इस ताड़ के बन को लगाया था, कहना कठिन है, लेकिन वैशाख से लेकर आषाढ़ तक आस–पास के हलवाहे–चरवाहे भी इस वन में नवाबी करते हैं। तीन आने लबनी ताड़ी, रोक साला मोटर गाडी अर्थात ताड़ी के नशे में आदमी मोटरगाड़ी को भी सस्ता समझता है। तड़बन्ना के बाद ही एक बड़ा मैदान है, जो नेपाल को तराई से शुरू हो कर गंगा जी के किनारे खत्म हुआ है। लाखों एकड़ जमीन वध्या धरती का विशाल अंचल। इसमें दूब भी नहीं पनपती है। बीच–बीच में बालूचर और कहीं–कहीं बेर की झाड़ियां कोस भर मैदान पार करने के बाद, पूरब की ओर काला जंगल दिखाई पड़ता है, वही है मेरीगंज कोठी।'

'मैला आँचल' में मेरीगंज के नामकरण की कथा को भी विस्तार के साथ बताया गया है। पैंतीस वर्ष पूर्व डब्ल्यू–जी, मार्टिन ने मेरीगंज कोठी की नींव रखी। उन्होंने इसका नाम मेरीगंज अपनी नवविवाहिता पत्नी के नाम पर रखा उसकी पत्नी का नाम मेरी मार्टिन था। जब से मेरीगंज नाम रखा गया। गांव का कोई भी व्यक्ति पुराने नाम लेता था तो उसको दण्डित किया जाता था। अब स्थिति यह है कि किसी को भी गांव का पुराना नाम याद नहीं है। मार्टिन की पत्नी गांव में आकर सप्ताह भर में ही मलेरिया का शिकार हो गई। मार्टिन उसे पूर्णिया भी लेकर गए परन्तु मेरी को बचा नहीं पाए। इसके बाद उन्होंने प्रयास किया कि गांव में डिस्पेंसरी होनी चाहिए। कोठी को अब लोग 'भूतहा जंगल' कहते हैं – 'कोठी के बगीचे में, अंग्रेजी फूलों के जंगल में आज भी मेरी की कब्र मौजूद है। कोठी की इमारत ढह गई है, नील के हौज टूट–फूट गए हैं, पीपल बबूल तथा अन्य जंगली पेड़ों का एक घना जंगल तैयार हो गया है लोग उधर दिन में भी नहीं जाते। कल भी आम का बाग तहसीलदार साहब ने बंदोबस्त में ले लिया है, इसलिए आम का बाग साफ–सुथरा है किंतु, कोठी के जंगल में तो दिन में भी सियार बोलता है। लोग उसे भूतहा जंगल कहते हैं। ततमाटोले का नंदलाल एक जार ईंट लाने गया, ईंट में हाथ लगाते ही खत्म हो गया था। जंगल से एक प्रेतनी निकली और नंदलाल को कोड़े से पीटने लगी–सांप के कोड़े से नंदलाल वहीं ढेर हो गया। बगुले की तरह उजली प्रेतनी।'

मेरीगंज गांव में तीन मुख्य दल हैं कायस्थ, राजपूत और यादव। ब्राह्मणों की संख्या कम होने की वजह से तृतीय शक्ति है। गांव के अन्य जाति के सभी लोग इन्हीं तीनों बलों में सुविधानुसार बंट गए हैं। गांव में मुख्य रूप से धान, पाट और खेसारी की खेती की जाती है। रब्बी की फसल भी होती है। पूरे गांव में दस आदमी पढ़े-लिखे हैं। युवा पीढ़ी में पढ़ने वालों की संख्या पन्द्रह हैं। इस तरह उपन्यास में मेरीगंज गांव की पूरी व्यवस्था को चित्रित किया गया है। रेणु ने मुख्य रूप से मेरीगंज गांव के पग-पग का वर्णन किया है और पग-पग पर होने वाली घटनाओं को भी चित्रित किया है। गांव में जुड़ी अनेक छोटी-बड़ी घटनाएं उपन्यास में दर्शायी गई हैं, परन्तु इन घटनाओं के द्वारा अंचल की विशेषताओं को ही चित्रित करने का ही प्रयास किया गया है। गांव के लोगों के छोटी इच्छाओं की पूर्ति ही उन्हें संतुष्टि दे देती है। अंचल के राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सास्कृतिक पक्षों को भी खुलकर प्रस्तुत किया गया है। गांव के सादगी भरे जीवन को रेणु ने डाक्टर प्रशान्त कुमार के द्वारा कहलवाया है – 'गांव के लोग बड़े सीधे दिखते हैं सीधे का अर्थ यदि अनपढ़, अज्ञानी और अंधविश्वासी हो तो वास्तव में सीधे हैं। जहाँ तक सांसारिक बुद्धि का सवाल है, वे हमारे और तुम्हारे जैसे लोगों को दिन में पांच बार ठग लेंगे। और तारीफ यह है कि तुम ठगी जाकर भी उनकी सरलता पर मुग्ध होने के लिए मजबूर हो जाओगी। यह मेरा सिर्फ सात दिन का अनुभव है। संभव है, पीछे चलकर मेरी धारणा गलत साबित हो। मिथिला और बंगाल के बीच का यह हिस्सा वास्तव में मनोहर है। औरतें साधारणत: सुन्दर होती हैं, उनके स्वास्थ्य भी बुरे नहीं।'

इस प्रकार 'मैला आंचल' में कथानक का केन्द्रीय विषय मेरीगंज गांव है। गांव के जीवन के विविध पक्षों को उजागर करना हो लेखक का उद्देश्य रहा है। गांव के सुन्दर असुन्दर सभी रूपों को उपन्यास में उभारा गया है। ग्रामीण जीवन की अनेक विसंगतियों को उसकी पूर्णता के साथ दर्शाया गया है। लेखक ने आंचल के किसी बीभत्स पक्ष को छिपाने का प्रयास नहीं किया है। बल्कि अंचल को उसकी पूर्णता के साथ प्रस्तुत किया हो अंचल को कथानक के रूप में चुने जाने पर भी उपन्यास में अनेक घटनाओं का वर्णन मिलता है। परन्तु ये सभी घटनाएं उस अंचल को किसी विशेषता या स्थिति से ही अवगत कराती है। कह सकते हैं कि रेणु ने उपन्यास में अंचल से जुड़ी घटनाओं को ही चित्रित किया है। और साथ ही गांव में हो रहे परिवर्तन को भी रेणु चित्रित करना नहीं भूले हैं। इस तरह 'मैला आंचल' में कथानक का अभाव नहीं है, बल्कि कथानक को एक नवीन रूप में प्रस्तुत किया गया है। जोकि परम्परा प्रेरित उपन्यास के कथानक. से अपने आपको विलग कर देता है।

- **समष्टिमूलक यथार्थवाद**

आंचलिक उपन्यास में व्यक्ति से अधिक महत्त्व समाज को दिया जाता है। समाज को उसकी समग्रता में प्रस्तुत करना आवश्यक है। साथ ही जहां समाज को प्रस्तुत किया जाता है वहीं उस समाज में यथार्थ का समावेश किया जाता है। ताकि अंचल विशेष के समाज का यथार्थ रूप पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत हो सके। यथार्थ चित्रण होने से अंचल वास्तविकता के अधिक करीब हो जाता है और पाठक सहजता से अंचल से जुड़ जाता हैं। आंचलिक उपन्यासों में कोई विशिष्ट समाज अपनी विविधताओं के साथ उपस्थित किया जाता है। इस प्रकार के उपन्यासों की गति अनेक दिशाओं में होती है। भले ही अनेक दिशाओं में से कोई एक दिशा अधिक प्रमुखता पा ले। रेणु का मैला आंचल उपन्यास पूर्णिया जिले के अंचल से सम्बद्ध है। इसमें समाज की गरीबी और जहालत भरी जिन्दगी का पहलू कुछ अधिक प्रमुखता से चित्रित है। इस उपन्यास का डॉ. प्रशान्त, मलेरिया और काला आजार से त्रस्त लोगों की सेवा करने मेरी गंज आता है। किन्तु यहाँ आने पर उसने कुछ ही दिनों बाद यह महसूस किया कि यहां इसान हैं ही कहाँ? सभी तो जानवरों को जिन्दगी जी रहे हैं। डॉ. प्रशान्त ने अपनी रिपोर्ट में गांव की दरिद्र अव्यवस्था व गरीबी का चित्रण किया है और इन्हें ही बीमारी का कारण भी बताया है- 'यहां के लोग सुबह को बासी भात खाकर, पाट धोने के लिए गंदे गड्ढों में घुसते हैं और करीब सात घंटे तक पानी में रहते हैं। गंदे गड्ढों को देखने से ऐसा लगता है कि पानी के आध इंच धरातल की जांच करने पर एक लाख से ज्यादा मच्छर के अंडे जरूर पाएं जाएंगे। किन्तु यहां के मच्छर गंदे गड्ढों में बहत कम अंडे देते पाए गए हैं। इनका कोई कोई ग्रुप तो इतना सफाई पसन्द होता है कि निर्मल और स्वच्छ तालाबों को छोड़कर और

कहीं अंडे देता ही नहीं।... बेचारे खरगोशों को क्या पता कि उनकी जीभ में जो दाने निकल आते हैं कानों के अंदर जो खुजलाहट होती है, कोमल से कोमल घास की पत्तियां भी खाने में अच्छी नहीं मालूम होती हैं, ये काला आजार के लक्षण है। डॉ. प्रशान्त ने यह स्वीकार लिया है कि पहले इन जानवरों को इंसान बनाना आवश्यक है। इन रोगों की जड़ गरीबी और जहालत है।

'मैला आंचल' की जीवनदृष्टि समष्टि मूलक है तथा वह समाज पर ही केन्द्रित है। समाज के यथार्थ को उपन्यास में खोलकर रख दिया गया है। अंचल की सामाजिक जीवन व्यवस्था के विविध रूपों को प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास में स्थानीयता को स्थान दिया गया है। अंचल के चारों ओर ही कथा का ताना-बाना बुना गया है। अंचल को उसकी व्यापकता के साथ यथार्थवादी धरातल पर दर्शाया गया है। डा. सावित्री सिन्हा ने आंचलिक उपन्यास के लिए यथार्थता को आवश्यक माना है। 'मैला आंचल' में रेणु ने आंचलिक उपन्यास के यथार्थ चित्र में आदर्श की स्थिति को भी साथ रखा है। उपन्यास में धरती के पुत्रों की पुकार को वाणी देने का प्रयास किया गया है। यहाँ के लोगों की छोटी-छोटी खुशियों को मार्मिकता के साथ प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास में बताया गया है कि यदि इन लोगों के पास थोड़ा पैसा भी आ जाता है तो इनका व्यवहार इस प्रकार का हो जाता है - 'इस इलाके के मंझले दर्जे के किसानों के पास यदि थोड़ी, पूंजी हो गई, तंबाकू, धान, पाट और मिर्जा का भाव एक साल चढ़ गया, घर में शादी-गमी हुई नहीं तो वह तुरन्त टनमना जाते हैं। यदि मालिक जवान हो तो तुरन्त औन-पौन करने लगता है। हर मुनियां, फर्श, शतरंजी, शामियाना, जाजिम, लैट, पंचलैट, पहाड़ियां घोड़ा, शंपनी, टेबल-कुर्सी, बेंच खरीदकर ढेर लगा देता है। इससे भी जब गरमी कम नहीं होती है तब बंदूक के लैसन के लिए आफिसरों को गाली देना शुरु करता है। लालबाग मेला के समय रात-रात भर मुजरा सुनता है और दिनभर आफिसरों के साथ कचहरी में घूमता है। बन्दूक के लैसन के बाद नौटंकी कम्पनी खोलता है। इससे भी मगज ठंडा नहीं होता तो कोई खूनी केस होकर समापत्तन।

संक्षेप में आंचलिक उपन्यास की जीवन दृष्टि समष्टिमूलक होती है। इसमें केंद्रीय तत्व समाज का चित्रण यथार्थपरक दृष्टिकोण से होता है। मैला आंचल में व्यक्ति से अधिक महत्व समाज को दिया जाता है। समाज के विविध आयामी जीवन और उसकी समस्याओं का यथार्थवादी चित्र खींचा गया है। रेणु जी ने उपन्यास में अंचल को उसके समग्र रूप में देखा है। उस अंचल की अनेक वास्तविकताओं का हृदयगाही अंकन किया है। इस तरह उपन्यास के अन्तर्गत समष्टि मूलक यथार्थवाद का पूर्णतया निर्वाह किया गया है।

• चरित्र चित्रण

आमतौर पर उपन्यास के केन्द्र में मुख्य पात्र रहता है जिसके चारों ओर कथा चलती है और साथ ही गौण पात्रों को भी रचा जाता है। जहां तक आंचलिक उपन्यास का संबंध है तो इन उपन्यासों में चरित्र चित्रण की दृष्टि से मुख्य विशेषता है कि पात्र बहुलता रहती है। समाज के विविध पहलूओं को चित्रित करते हुए अनेक पात्रों की आवश्यकता रहती है। 'मैला आंचल' में अनेकानेक पात्रों को सृजित किया गया है। अनेक घटना स्थितियों को उजागर करने के लिए बहुत से पात्रों की आवश्यकता को उपन्यास में पूरा किया गया हैं।

आंचलिक उपन्यास में चरित्र-चित्रण की दूसरी विशेषता है कि यहां उपन्यास नायक अंचल होता है। व्यक्ति विशेष को उपन्यास का नायक नहीं बनाया जाता है। उपन्यास में नायक की भूमिका का निर्वाह अंचल ही करता है। अचंल के चारों ओर ही कथानक को बुना जाता है। समाज को नायक के रूप में चित्रित करके उसके विविध पक्षों-विपक्षों को चित्रित किया जाता है। समाज को प्रस्तुत करने के लिए आंचलिक उपन्यास में बहुत से पात्रों को लिया जाता है। पात्रों को सृजित करते हुए भी यहां कोई भी पात्र मुख्य नहीं होता है। 'मैला आंचल' में मेरीगंज गांव को नायक के रूप में चित्रित किया है। गांव की अनेक विसंगतियों, सांस्कृतिक धरोहर आदि को दर्शाया गया है। इसके लिए रेणु ने बहुत से पात्रों को चुना है। उपन्यास में गांव का पूरा चित्र ही सजीव हो उठता है। अंचल के यथार्थ चित्रण करते हुए कहा गया है कि यहां विटामिनों की किस्में, उनके अलग-अलग गुण और आवश्यकता पर लम्बी और चौड़ी फहरिस्त बनाकर बंटवाने वालों की बुद्धि पर तरस खाने से क्या फायदा!... मच्छरों की तस्वीरें, इससे बचने के उपायों

को पोस्टरों पर चित्रित इसके अथवा मैजिक लालटेन से तस्वीरें दिखाकर मलेरिया की विभीषिका को रोकने वाले किस देश के लोग थे?... यहाँ तो उन मच्छरों की तस्वीरें देखते ही लोग कहते हैं 'पुरैनियां जिला को लोग मच्छर के लिए बेकार बदनाम करते हैं, देखिए पश्चिम का मच्छर कितना बड़ा है, एक हाथ लंबा देह, चार हाथ मूड़ं बाप रे!'

आंचलिक उपन्यास के चरित्र-चित्रण की एक अन्य विशेषता है कि सभी पात्र गौण होते हैं। कारण है कि मुख्य पात्र अंचल होता है। इसके अतिरिक्त उपन्यास में जितने भी पात्र होते हैं वह सभी गौण पात्र कहे जाते हैं। वह मुख्य पात्र अर्थात् अंचल की विशेषताओं को उजागर करने के लिए आते हैं। 'मैला आंचल' में पूर्णिया अंचल के मेरीगंज गांव को ही पात्र के रूप में लिया गया है। उपन्यास के आरम्भ से लेकर अन्त तक मेरीगंज गांव को ही चित्रित किया गया है। इस चित्रण में अनेक पात्रों को चुना गया है। ये सभी पात्र अंचल की विशेषताओं को प्रस्तुत करने में सहायक बने हैं। चरित्र चित्रण की एक अन्य विशेषता पात्रों का प्रतिनिधि स्वरूप है। आंचलिक उपन्यासों में व्यक्ति को चित्रित नहीं किया जाता, ऐसा नहीं है। परन्तु आंचलिक उपन्यासों में व्यक्ति-वैचित्र्य का तत्व गौण रूप में होता है। अधिकांश पात्र वर्गपात्र ही होते हैं। वर्गगत पात्र बनकर ही समाज के विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व कर सकते हैं। 'मैला आंचल' में राजपूत टोली के मुखिया के चरित्र को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है- 'ठाकुर रामकिरपाल सिंह राजपूत टोली के मुखिया है। इनके दादा महारानी पावती की स्टेट के सिपाही और विश्वनाथ प्रसाद के दादा तहसीलदार। कहते हैं कि जब महारानी पंचावती और राज पारबंगा में दीवानी मुकदमा चल रहा था तो विश्वनाथ प्रसाद के दादा राज पारवंगा स्टेट की ओर मिल गए थे। स्टेटवालों को महारानी के सारे गुप्त कागजात हाथ लग गए. और महारानी मुकदमे में हार गई। काशी जाने से पहले महारानी ने रामकिरपाल सिंह के नाम अपनी बची हुई तीन सौ बीघे जमीन की लिखा-पढ़ी कर दी थी। रामकिरपाल सिंह कहते हैं कि उनके दादा दानपत्तर लिख दिया था। यस्थटोली के लोग राजपूतटोली को 'सिपहिया टोली' कहते हैं?

आंचलिक उपन्यासों में कुछ ऐसे पात्र भी होते हैं जो कि उस अंचल या गांव से सम्बन्धित नहीं होते हैं। उन्हें भी आंचलिक पात्र मान लिया जाता है। 'मैला आंचल' में डॉ. प्रशान्त ऐसा ही पात्र है। यह पात्र मेरीगंज का नहीं हैं बाहर से आया है। डॉ. प्रशान्त ही अपने कुल और जाति के प्रति अनभिज्ञ है। उसे अपने माता पिता के बारे में नहीं पता है। जिसने पाला वही उसके लिए सब कुछ है। उपन्यास में डॉ. प्रशान्त के जन्म के बारे में बताया गया है- प्रशान्त अज्ञात कुलशील है। उसकी मां ने एक मिट्टी की हांडी में डालकर बाढ़ से उमड़ती हुई कोशीमैया की गोद में उसे सौंप दिया था। नेपाल के प्रसिद्ध उपाध्याय परिवार ने नेपाल सरकार द्वारा निष्कासित होकर, उन दिनों सहरसा अंचल में 'आदर्श आश्रम' की स्थापना की थी। एक दिन उपाध्याय जी बाढ़ पीड़ितों की सहायता के लिए रिलीफ की नाव लेकर निकली झाऊ की झाड़ी के पास एक मिट्टी की हांडी देखी-नई हांडी। उनकी स्त्री को कौतूहल हुआ, 'जरा देखो, उस हांडी में क्या है? नाव झाड़ी के पास पहुंची, पानी के हिलोर से हांडी हिली और उससे एक ढोड़ा सांप गर्दन निकालकर 'को-फों' करने लगा सांप धीरे-धीरे पानी में उतर गया और हांडो से नवजात शिशु के रोने की आवाज आई, मानो मां ने थपकी देना बंद कर दिया... बस, यही उसके जन्म की कथा है, जिसे हर आदमी ने अपने-अपने ढंग से सुना है। प्रशान्त गांव ना व्यक्ति नहीं है परन्तु उसका अंचल से घनिष्ठता से जुड़ा होने की वजह से अंचल का पात्र स्वीकार किया जा सकता है। प्रशान्त गांव में आकर यहां से लोगों से आत्मीयता के धरातल मिलता है, जुड़ता है। वह उनकी सच्चे दिल से मदद करना चाहता है। उसके लिए गांव के लोगों की निस्वार्थ सेवा मुख्य है। वह अपनी इच्छा से गांव में मलेरिया और काला आजार जैसी बीमारी का इलाज करने आता है। वह गांव के भोले-भाले लोगों से प्रभावित है और वह गांव से आत्मीयता से जुड़ गया है। उसकी मनः स्थिति को रेणु ने इस प्रकार व्यक्त किया है।

डाक्टर पर यहां की मिट्टी का मोह सवार हो गया। उसे लगता है, मानो वह युग-युग से इस धरती को पहचानता है। यह अपनी मिट्टी। नदी तालाब, पेड़-पौधे, जंगल-मैदान, जीव-जानवर, कीड़े-मकोड़े, सभी में वह एक विशेषता देखता है। बनारस और पटना में भी गुलमुहर की डालियां फूलों से लद जाती थी। नेपाल की तराई में पहाड़ियों पर पलास और अमलतास को भी गले मिलकर फूलते देखा है, लेकिन इन फूलों के रंगों ने उस पर पहली बार जादू डाला है..

आम से लदे हुए पेड़ों को देखने से पहले उसकी आंखे इंसान के उन टिकोलों पर पड़ती है, जिन्हें आमों की गुठलियों के सूखे गूदे की रोटी पर जिन्दा रहना है... और ऐसे इंसान? भूख, अतृप्त इंसानों की आत्मा कभी भ्रष्ट नहीं हो या कभी विदोह नहीं करे, ऐसी आशा करनी ही बेवकूफी है। डाक्टर यहां की गरीबी और बेबसी को देखकर आश्चर्यचकित होता है। वह संतोष कितना महान है जिसके सहारे यह वर्ग जी रहा है? आखिर वह कौन सा कठोर विधान है, जिसने हजारों-हजार क्षुतियों की अनुसंधान में बांध रखा है? अत: 'मैला आचल' में चरित्र-चित्रण में विविधता मिलती है। आंचलिक उपन्यासों की तरह ही चरित्रों का निर्माण किया गया है। बहुत से पात्रों के होते हुए भी यहां अंचल को ही नायक बना कर उसका विस्तृत विवेचन किया गया है। पूर्णिया जिले के मेरीगंज गांव की कथा को व्यापकता व गहराई से दर्शाया गया है कि पाठक अनायास ही उस अंचल की खुशी में हर्षित और वहां की पीड़ा को अनुभव कर आह पर उठता है। अंचल को पात्र के रूप में प्रस्तुत करते हुए भी जिन अन्य पात्रों को लिया गया है, उन्हें भी पूरी तन्मयता के साथ उजागर किया गया है।

- **संवादात्मकता**

आंचलिक उपन्यासों में संवादों का विशेष ध्यान रखा जाता है। किसी विशेष अंचल से जुड़े होने के कारण यहां पर संवादों में भी उस अंचल या गांव की झलक मिलना आवश्यक है। संवादों में उस गांव की बोल चाल व व्यवहारिक संवाद योजना को प्रस्तुत करना आवश्यक है। 'मैला आचल' संवाद-योजना की दृष्टि से सफल आंचलिक उपन्यास माना जाता है। इस उपन्यास में रेणु ने अंचल का वार्तालाप शैली क्या ध्यान में रखा है।

'मेला आंचल' में संवादों की यह विशेषता यही है कि संवाद पूर्णिया जिले के आधार पर ही निर्धारित किए हैं। सवादों की योजना पात्रों के अनुकूल ही की गई है। जहां पर डाक्टर प्रशान्त को गांववालों से बातचीत करते दिखाया गया है वहां पर डाक्टर के द्वारा व्यवस्थित व सधी हुआ वार्तालाप है। साथ ही गांव के लोगों द्वारा अनगढ़ और ग्रामीणता के आधार पर ही वार्तालाप करते हुए दिखाया गया है। एक उदाहरण इस प्रकार है-

''घबराइए नहीं, दवा दे रहा हूँ। यहां ठीक नहीं होगा तो पटना जाना पड़ेगा।''

'' हां, दूसरा रोगी! क्या नाम है?''

''राम चलित्तर शाह''

''क्या होता है?''

''जी! कुछ खाते ही के हो जाता है। पानी भी..''

''कब से?''

''सात दिन से...''

''अरे! सात दिन से!....जरा इधर आओ?'

''जी? बेमारी तो घर पर है।''

''घर कहाँ ?''

''जी सरसौनी बिजलिया। यहां से कोस दसके हैं।''

'मैला आंचल' में जहां गांव का आदमी विस्तार के साथ अपनी बात रखता है तो सहज ही अंचल की संवादात्मकता देखी जा सकती हैं

'बेतार कहता था, 'उसी में सब कुछ होगा-हल, चौंगी, विधा, कोड़कमान, कादी-गोरा और धनकटनी भी! आदमी की क्या जरूरत? पानी का पंपू आवेगा। इंदर भगवान की खुशामद की जरूरत नहीं कमला नदी में पंपू लगा दिया, मिसिन इसटाट कर दिया और हथिया सूंड की तरह सब पानी सोखकर खेत पटा देगा'... जब इंदर भगवान को ही नून

नेबू चटा रहे हैं तहसीलदार साहेब, तो आदमी उनके हुजूर में क्या है?' आंचलिक संवादों का प्रयोग करते हुए सहजता और स्वाभाविकता को संवादों में देखा जा सकता है। रेणु जी ने दो व्यक्तियों के संवादों को छोटे रूप में ही प्रस्तुत कर दिया है। इससे संवादों में एक तारतम्य आ गया है। इन संवादों में अनावश्यक वार्तालाप को स्थान नहीं दिया गया है। बातचीत कम से कम शब्दों में की जा रही है और बोलने वाला व सुनने वाला सहजता से बात को आगे बढ़ाने में सहयोग देते हैं। मंगलादेवी और कालीचरण के संवादों में यह विशेषता द्रष्टव्य है-

''नहीं पियूंगी।''

''पी लीजिए मास्टरनी जी! दवा...''

''कालीबाबू, एक बात कहूं?''

''कहिए!''

''आप मुझे मास्टरनी जी मत कहिए।''

''तब क्या कहूँ ?''

''क्यों? मेरा नाम नहीं?''

''मंगला देवी?''

''तो?''

''सिर्फ मंगला''

''दवा पी लीजिए।''

''मंगला कहिए।''

''मंगला''

अत: 'मैला आंचल' में संवाद योजना अपनी विशिष्ट पहचान बनाता है। संवादों में गांव की वार्तालाप शैली को ध्यान में रखा गया है। संवादों के अन्तर्गत अनेक ऐसी बातों को भी स्पष्ट किया गया है जो कि अंचल की विशेषताएं हैं। संवादों में अंचल की सहजता और सरलता विद्यमान है जिससे अंचल को पूरी आत्मीयता के साथ प्रस्तुत किया जा सका है। कहीं संवादों में विस्तार है तो कहीं संक्षिप्त व छोटे संवादों को चुना गया है। ऐसा करके विषय को रोचक बना दिया गया है। आंचलिक उपन्यासों के आधार पर 'मैला आंचल' के संवाद खरे उतरते हैं।

- **वातावरण-चित्रण** -

आंचलिक उपन्यासों में देशकाल का तत्त्व विशेष रूप से उभरकर सामने आता है। कारण है कि इन उपन्यासों में अंचल को विविध दृष्टिकोणों से देखा जाता है। उसके अनेक पक्षों के चित्रण में देशकाल का विस्तार से वर्णन किया जाता है। क्षेत्रीयता या विशेष अंचल से सम्बद्ध समाज में वहां की परिस्थितियों को खोलकर प्रस्तुत किया जाता है। जब वातावरण को विस्तार से दर्शाया जाता है तभी आंचलिक उपन्यासों में अंचल को करीब से, आत्मीयता से व्यंजित किया जाता है। विशेषत: पिछड़े हुए समाज का जीवन नैसर्गिक पर्यावरण के साथ घनिष्ठतया सम्बद्ध होता है। 'मैला आंचल' में देशकाल का विस्तृत विवेचन किया गया है। मेरीगंज गांव की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक परिस्थितियों को खोलकर प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास में गांव में विद्यमान राजनीतिक उथल-पुथल को दर्शाना रेणुजी का लक्ष्य रहा है। गांव में आजादी से पूर्व ही राजनीतिक दल बनने लगे थे। कम्युनिस्ट पार्टी का गठन हो चुका था। सोशलिस्ट पार्टी के विषय में रेणु जी ने लिखा है - 'बोलिए एक बार प्रेम से सोशलिस्ट पार्टी की है। यही पार्टी असली है। किसानों की पार्टी, गरीबों की पार्टी। सभा स्थल पर ही तीन सौ मैंबर बन गए। संथालटोली का एक आदमी भी गैर-मैंबर नहीं रहा। सब लाल! सिर्फ सरदार टुडू का तेरह साल का लड़का रह गया। है। वह रोता है सरदार टुडू सैनिक

जी के पास जाकर अपील करता है, 'इश्का नाम लेबरी में नहीं लिखा जाएगा? क्यों उमेर कम नहीं, देखिए, इश्को मोंच का रेख आ रहा है। गांव में सोशलिस्ट पार्टी का प्रभाव बहुत अधिक है। सैनिक जी अपने भाषण में लाल झंडे की महत्ता बताते हुए कहते हैं कि यह जो लाल झंडा है.... आपका है, जनता का झंडा है, अवाम का झंडा है. इन्कलाब का झंडा है। इसकी लाली उगते हुए आफताब की लाली है, यह खुद आफताब है। इसकी लाली इसका लाल रंग क्या है?.... रंग नहीं। यह गरीबों, महरूमों मजलूमों, मजदूर की खून में रंगा हुआ झंडा है?

'मैला आंचल' में कांग्रेस का प्रभाव भी दिखता है। कांग्रेस के प्रभाव को देखते हुए तहसीलदार साहब कांग्रेसी बन जाते हैं। गांव में चरखा सेन्टर खुल रहा है। इसके अतिरिक्त गांव में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ भी है। राजपूत टोली पर इसका प्रभाव है। आजादी के पश्चात् राजनीतिक व्यवस्था में परिवर्तन आता है। कांग्रेस में स्वार्थपरता की भावना बढ़ती हुई दिखाई गई हैं, बावनवास कांग्रेस के प्रति पूर्ण निष्ठावान है। ऐसी विषम स्थिति में वह कह उठता है कि 'भारत माता अब भी रो रही है।'

उपन्यास में सामाजिक व्यवस्था का खुलकर वर्णन किया है। अंचल के लोगों के खान-पान, उत्सव, रीति-रिवाजों का चित्रण देशकाल की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हो जाता है गांव में अस्पताल खुलने की खुशी में महंत सेवादास भंडारे का ऐलान करता है। उस समय लोगों की प्रतिकिया स्वरूप खान-पान की जानकारी मिलती है- 'पूड़ी-जलेबी और है। अंचल दही-चीनी के भंडारे की घोषणा के बाद जनमत बदल रहा है।

....कैसा भी हो, आखिर साधु है। किसने आज तक इतना बड़ा भोज किया। तहसीलदार ने अपने बाप के श्राद्ध में जाति-बिरादरीवालों को भात और गैर जाति के लोगों को दही-चूड़ा खिलाया था। सिंघजी ने अपनी सास के श्राद्ध में अपनी जाति के लागों को पूरी मिठाई और अन्य जाति के लोगों दही चूड़ा खिलाया था। खेलावन के यहां, पिछले साल मां के श्राद्ध में जैसा भोज हुआ सो तो सबों ने देखा ही है फिर, कार्तिक सारे गांव के लोगों को, औरत-मरद बच्चों को, आज तक किसने खिलाया है? चीनी मिलती नहीं। भगमान भगत ने कहा बाकी है कि बिलेक में एक बोरा चीनी का दाम है एक नमरी। चरमन चीनी-दो नमरी! यहां जहां एक ओर गांव के खान पान के विषय में बताया गया है वहीं दूसरी ओर समाज में विद्यमान जातिगत भेदभाव को भी बताया गया है। शहरों की तुलना में गांव में जातिगत भेदभाव को अधिक स्थान दिया जाता है।

'मैला आंचल' में आर्थिक दुर्दशा का मार्मिक चित्रण किया गया है। गांव में गरीबी की काली चादर छाई हुई है। गांव में गरीबी इतनी ज्यादा है कि लोग बीमार होने पर दवा के पैसे भी नहीं जुटा पाते हैं। गांव में मलेरिया, काला आजार, गठिया आदि अनेक बीमारियाँ हैं। बच्चों को समुचित इलाज नहीं मिल पाता है और वह बिना दवा के ही मर जाते हैं। प्रशान्त ममता को खत लिखते हुए यहाँ की आर्थिक बदहाली को स्पष्ट करता है-

डी.डी.टी. और मसहरी की बात तो बहुत हुई, देह, में कड़वा तेल लगाना भी स्वर्गीय भोग-विलास में गण्य है। तेल फुलेलतों जमींदार लोग लगाते हैं। स्वर्ग की परियां तेल फुलेल लेकर पुण्य करने वालों की सेवा करती हैं...। खेतों में फैली हई काली मिट्टी की संजीवनी इन्हें जिलाए रहती है। शस्य-श्यामला, सुजला-सुफला... इनकी मां नहीं?

अब तो शायद धरती पर पैर रखने का भी अधिकार नहीं करेगा। कानून बनने के पहले ही कानून को बेकार करने के तरीके गढ़ लिए जाते हैं। सुई के छेद से हाथी निकाल लेने की बुद्धि ही आज सही बुद्धि है। और लोग तो बकवास करते हैं, विभ्रम रोग से पीड़ित हैं। जिसके पास हजारों बीघे जमीन है...वह पांच बीघे जमीन की भूख से छटपटा रहा है। बेजमीन आदमी आदमी नहीं, वह तो जानवर है।

गांव में धार्मिक रूढ़िवादिता को उजागर किया गया है। गांव के आश्रम में धर्म के नाम पर अनाचार ही हो रहा है। गांव के सीधी-सरल जनता महतों की वास्तविकता से परिचित होते हुए भी कुछ न कहने को बाध्य हैं। धर्म के ठेकेदार भी धर्म का भय दिखाकर अपनी स्वार्थ-पूर्ति में संलग्न है। 'मैला आंचल' में सांस्कृतिक वातावरण को भी अभिव्यक्ति दी गई। है। अंचल विशेष की सांस्कृतिक धरोहर को उपन्यास में स्थान दिया गया है। अनेक पर्वो की चर्चा

की गई है। होली के त्यौहार आने पर गांव की खुशी वर्णन से परे है। गांव में अन्य त्योहारों से अधिक महत्व होली को दिया जाता है। पूरे उल्लास के साथ होली का पर्व मनाया जाता है। होली के विषय में कुछ इस प्रकार से कहा गया है। 'महंगी पड़े या अकाल हो, पर्व-त्यौहार को मनाना ही होगा। और होली? फागुन महीने की हवा ही बावरी होती है। आसिन कार्तिक के मलेरिया और काला आजार से टूटे हुए शरीर में फागुन की हवा संजीवनी फूंक देती है। रोने कराहने के लिए बाकी ग्यारह महीने तो हैं ही, फागुन-भर तो हंस लो, गा लो। जो जीये सो खेले फाग। दूसरे पर्व महीने त्यौहार को तो टाल भी दिया जा सकता है। दीवाली में एक दो दीप जला दिए, बस छुट्टी लेकिन होली तो मुर्दा दिलों को भी गुदगुदी लगाकर जिलाती है। बौरे हुए आम के बाग से हवा आकर बच्चे-बूढ़ों को मतवाला बना जाती है।

सांस्कृतिक वातावरण को व्यक्त करते हुए लोक-कथाओं का विवेचन भी किया गया है। लोरिक या कुमर बिज्जेमान की गीत कथा, सारगा सदाब्रिज की लोक कथा का वर्णन किया गया है। गांव में औरतें व पुरुष अनेक गीतों को गाते हैं जोकि उनकी सांस्कृतिक पहचान कराते हैं। होली के अवसर पर गीत गाए जाते हैं। डाक्टर प्रशान्त के कहने पर गांव में बिदापत नाच्च आयोजन किया जाता है। इसमें लोक गीत की तर्ज पर विद्यापति के गीत गाए जाते हैं जिसमें सुर-ताल पर भी ध्यान रहता

'घिनागि घिन्ना, तिरनागि तिन्न।
घिनक घिनता तिटकत ग-द-धा।
आहे चलहु सखिसुख घाम, चलहु!
आहे कन्हैया जहां सखि हे,
रास रचाओल हे! चहलु हे चलहु!
घिभा तिभा नाधि धिभा!
आहे सिर बिरनाबनु कुंज गलिन के
कान्हु चरावत धेनु,
आहेमुड़ली जेरेढ बिरीछी के ओरे,
आहे अबे ग्रिहे...
धिरिनागिधिरिनागि घोरिनागि....

आहे! अब ग्रिहे रहलोनि जाए, चलहु हे चलहू।

वर्षा खंडित होने पर जाट जट्टिन के खेल का उल्लेख भी किया गया है। स्त्रियों द्वारा खेले जाने वाले इसकी देखने का अधिकार भी स्त्रियों को है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि 'मैला आंचल' में देशकाल वातावरण का विस्तार से वर्णन किया है। वातावरण व्यक्ति को अनेक दृष्टिकोणों से दर्शाया गया है। वातावरण चित्रण में भी लक्ष्य अचल विशेष को सम्पूर्णता के साथ प्रस्तुत करना है। गोपाल राय की यह पंक्तियां यहां उचित ही ठहरती हैं 'यह निर्विवाद है कि रेणु ने आर्थिक शैक्षिक और वैज्ञानिक दृष्टि, ठीक से नितांत पिछड़े भारत का 'मैला आंचल' में विश्वसनीय का चित्रण किया है। उन्होंने उसके भौतिक पिछड़ेपन के साथ-साथ उसकी सांस्कृतिक समृद्धि को भी अनदेखा नहीं किया है। 'मैला आंचल' की कथा भूमि मेरीगंज के निवासियों का भौतिक पतन जितना नग्न और कड़वा है उतना ही दप संगीतमय है उनका सांस्कृतिक जीवन उनके पर्व त्योहार, गीत और नृत्य साबुन से गूंजते हुए उनके कृषि अनुष्ठान।

● **भाषा** - आंचलिक उपन्यासों में भाषा का विशेष स्थान है। भाषा के द्वारा ही अंचल की विशेषताएं प्रस्तुत हो सकती हैं। व्यक्ति बोलकर या भाषा के द्वारा ही अपने परिवेश का परिचय देता है। इस कारण आंचलिक उपन्यासों में भी भाषा

में विविधता का होना भाषा का एक मुख्य गुण है। 'मैला आंचल' में अंचल की विविधता और उसकी समस्याओं आदि को प्रस्तुत करने के लिए उसी के अनुरूप भाषा का चयन किया है। ऐसा करके पाठक का रचना के साथ तादात्म्य बना रहता है। उपन्यास की भाषा में गतिशीलता विद्यमान है। रेणु जी ने एक भाषा का प्रयोग नहीं किया है। भाषा में विविधता के कारण कथ्य अधिक स्वाभाविक बन जाता है। आवश्यकतानुसार कहीं पर सीधी सरल भाषा का प्रयोग किया है। इस भाषा का प्रयोग करके उपन्यास में सहजता का निर्वाह किया है। आमतौर पर ऐसे स्थानों पर लेखक स्वयं कुछ कह रहा होता है। उदाहरण स्वरूप इन पंक्तियों को देखा जा सकता है।

गांव के लोग अर्थशास्त्र का साधारण सिद्धान्त भी नहीं जानते। 'सप्लाई' और डिमाण्ड के गोरखधंधे में वे अपना दिमाग नहीं खपाते। अनाज का दर बढ़ रहा है, खुशी की बात है, पाट का दर बढ़ रहा है, बढ़ता जा रहा है और भी खुशी की बात है। पन्द्रह रूपये में साड़ी मिलती है तो बारह रूपये मन धान भी तो है। हल का फाल पांच रूपये में मिलता है, दस रूपये में कड़ाही मिलती है तो क्या हुआ? पाट का भाव भी तो बीस रूपये मन है। खुशी की बात है।'

रेणु जी ने कहीं पर परिनिष्ठित साहित्यिक भाषा का व्यवहार भी किया है। आवश्यकतानुसार तत्सम शब्दों का प्रयोग भी किया है जैसे नन्दन, निपुत्तर, स्कल्ला, पढलपनि, जोतरखीजो, बतगान, खुरसी, सरब संघटन, नगन, दिसा, आसरम आदि। अंचल या ग्रामीण परिवेश को कथ्य चुने जाने के कारण ग्रामीण भाषा का प्रयोग भी मिलता है। अशिक्षित ग्रामीण व्यक्ति अनगढ़ भाषा का प्रयोग किया गया है। इस तरह भाषा के प्रयोग से उपन्यास वर्ण्य-विषय से करीब से जुड़ जाता है।

'सचमुच प्यारू डाक्टर का पुराना नौकर है। टेबल कुर्सी ठीक से लगा दिया है। तीन पैर वाली लोहे की सीढ़ी पर पानी का ढोल रख दिया, सीढ़ी में ही लगी हुई रोल कड़ी में ललमुनिया का कठौत बिठा दिया है। ढोल में कल लगा हुआ है। कल टीपने से पानी गिरने लगता है। बक्से से गमछा निकालकर वहीं लटका दिया है। खस्सी बकरी की अतड़ी का भीतरी हिस्सा जैसा रोयादार होता है, वैसा ही गमछा है साबुन? साबुन नहीं है? अरे कपड़ा धोने वाला साबुन नहीं, गमकौआ साबुन चाहिए। भगत की दुकान में गमकौआ साबुन कहां से आवेगा? कटिहार में मिलता है।'

ग्रामीण परिवेश में रहते हुए भी व्यक्ति शहरी वातावरण से प्रभावित हो जाता है। ऐसे में वह अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग करता है जो कि उसकी बातचीत में स्वाभाविकता लाती है। ऐसी स्थिति में अंग्रेजी का प्रयोग उचित लगता है क्योंकि शब्दों को सहजता के साथ प्रस्तुत किया गया है। उदाहरणार्थ 'ऐसे ही सभी वरकर अपनी फील्ड में वर्क करें तब तो? दो महीने में इतने गांव को अकेले ही आरगेनाइज कर लिया है। चवन्निया मेंबर कितना बनया है? पांच सौ? तब तो तुम... आप जिला कमिटी के मेम्बर हो गये।

'मैला आंचल' में कहीं-कहीं शिष्ट भाषा से अलग शब्दों का प्रयोग भी किया गया है जैसे आबावते, खोप सहित कबूतराय नमः, बैसकोप, एकत से रहे, भारतबरश, हिन्दुस्थान आदि। उपन्यास में कई जगह ऐसे शब्दों का प्रयोग भी किया गया है जिनके सही शब्द नीचे पाव-टिप्पणी में भी दिए गए। है जैसे हासाम (आसाम), मलत (मदद, नमरी (सौ रूपए का नोट), सठबरसा (साठ वर्ष तक समझदारी का न आना), हौदा (होज), चाई (धूर्त), पवन (हवा), रोकसती (रुखसत), झपैत (छुपाने वाला), रहस (रहस्य), ऊपरी आदमी (परदेशी), जनी (मजदूर) आदि।

'मैला आंचलं' में जिस तरह के पात्रों को लिया गया है। उसी प्रकार उनकी भाषा भी निर्मित की गई है। असहजता से बचने के लिए भाषा का चुनाव करना जरूरी होता है। कामरेड राजबल्ली तुतलाकर बोलते है। इसलिए उनके द्वारा प्रयोग में लाई जा रही है भाषा में तुतलाहट विद्यमान है।

'अ-अ-अरे! काम-काम-रेड, उससे सफल-प-लप-लपजों में कह दीजिए कि फो-फो-फोट्टी-टी-टू के मुभमेंट में अहिंसा के भरोसे रहते तो आ-आ-आ-जग-ग-ही नसीब नहीं होती है। उससे साफ लप-लप-लफ्जों में कह दीजिए कि तुम रि-रि-ऐक्शनरी हो। डि-डि-डि-डिम-डिमोर-लाइज्ड हो। यह ले जाइए, 'डा-डा-डा डायले डायलेक्टि......... द...वं द्वंद्वात्मक भौतिकवाद', 'स-स-समाजवाद ही क्यों, दो किताबें इसमें सब कुछ लिखा हुआ है। लाल-प-प-पताका' की एक कापी ले जाइए! इसका ग्राह-ग्राह-आ-हग्राहक बनाइए। लाल झंडा ले लिया है। न?

'मैला अंचल' की भाषा में भोजपुरी प्रभाव भी दृष्टव्य है। उपन्यास में भाषा को ध्वन्यात्मकता द्वारा प्रभावशाली बनाया गया है। ऐसी भाषा से अंचल की महक का आभास होता है।

जैसे 'टन टनाक, टन टनाक! सजाई-जुई मोकनी हथिनी जा रही है।

ढन-ढन ढनांग ढनांश! कीर्तनियों का घड़ी घट बोल रहा है।

भो औपों.... भें ओं पों! अंगरेजजी बाजा!

तक तक तक तक धिनाग धिनाग! अमहरा का चानरवोल बजा।

पीं पीं पीं ई ई ई पीं पीं पीं... चानखोल वालों की पीपहीगा रही है।

चांदों बनिां साजिलो, दुई लाख घोड़ा,

एक लाख हाथी साजिलो, दुई लाख घोड़ा

चार लाख पैदल, दुलहा वाला लखिंदर!

पीपही पर बिहला नाच का बरात वाला गीत बजा रहा है।

संक्षेप में देखा जाए तो मैला आंचल की भाषा में अनेकरूपता विद्यमान है। जैसी स्थिति है वैसी ही भाषा का निर्वाह किया गया है। उपन्यास की भाषा एक नया आयाम उपन्यासों की भाषा के सम्मुख रखती है। भाषा में विविधता होने पर भी भाषा पाठकों पर अपना प्रभाव डालने में सक्षम है। भाषा के अनेक सुन्दर चित्रों से रेणु ने उपन्यास को अद्वितीयता प्रदान की है। भाषा में विविधता को लाने के लिए कहीं पर भी बनावटीपन को नहीं अपनाया गया है। बल्कि उपन्यास में ग्रामीण भाषा का प्रयोग इस बात को इंगित करता है कि वह अपने अंचल से कितनी करीब है। भाषा में अपने ग्रामीण कथ्य को प्रस्तुत करने की अद्‌भुत क्षमता है।

स्वयं आकलन हेतु प्रश्न

प्र. 1 हिंदी में आंचलिक उपन्यास कि जनक कौन हैं ?

प्र. 2 मैला आंचल में किस गांव का चित्रण हुआ है ?

20.4 सारांश

रेणु जी की कालजयी कृति 'मैला आंचल' हिन्दी का श्रेष्ठ और सशक्त आंचलिक उपन्यास है। नेपाल की सीमा से सटे उत्तर-पूर्वी बिहार के एक पिछड़े ग्रामीण अचल को पृष्ठभूमि बनाकर रेणु ने इसमें वहां के जीवन का जिससे वह स्वयं भी घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए थे। अत्यंत जीवंत और मुखर चित्रण किया है।

20.5 कठिन शब्दावली

हलवाले - हल चलाने वाला

कोस - दूरी का माप

सिरगनेस - प्रारंभ

20.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

प्र. 1 उ. फणीश्वरनाथ रेणु

प्र. 2 उ. मेरीगंज गांव

20.7 संदर्भित पुस्तकें

फणीश्वरनाथ रेण, मैला आंचल

20.8 सात्रिक प्रश्न

प्र. 1 मैला आंचल की आंचलिकता पर प्रकाश डालिए।

प्र. 2 मैला आंचल उपन्यास की तात्विक समीक्षा कीजिए।

*****

इकाई–21
मैला आंचल उपन्यास के पात्रों का चरित्र चित्रण

संरचना

21.1 भूमिका

21.2 उद्देश्य

21.3 मैला आंचल उपन्यास के पात्रों की चारित्रिक विशेषताएं

- डॉ. प्रशांत की चारित्रिक विशेषताएं
- कालीचरण के चरित्र की विशेषताएं
- विश्वनाथ के चरित्र की विशेषताएं

स्वयं आकलन प्रश्न

21.4 सारांश

21.5 कठिन शब्दावली

21.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

21.7 संदर्भित पुस्तकें

21.8 सात्रिक प्रश्न

इकाई-21

मैला आंचल उपन्यास के पात्रों का चरित्र चित्रण

21.1 भूमिका

इकाई बीस में हमने 'मैला आंचल' उपन्यास का समीक्षात्मक अध्ययन किया। इकाई इक्कीस में हम मैला आंचल उपन्यास के पात्रों का चारित्रिक अध्ययन करेंगे। चारित्रिक अध्ययन के अंतर्गत डॉ. प्रशांत, कालीचरण व विश्वनाथ की चारित्रिक विशेषताओं का अध्ययन करेंगे।

21.2 उद्देश्य

इकाई इक्कीस का अध्ययन करने के पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि

1. मैला आंचल उपन्यास के पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं का अध्ययन करेंगे।
2. डॉ. प्रशांत के चरित्र की विशेषताओं को जानेंगे।
3. कालीचरण की चारित्रिक विशेषताओं का अध्ययन करेंगे।

21.3 मैला आंचल उपन्यास के पात्रों की चारित्रिक विशेषताएं

डॉ. प्रशांत की चारित्रिक विशेषताएं

उत्तर - मेरीगंज गांव के मलेरिया सेंटर के इंचार्ज के रूप में उपन्यास में डॉक्टर प्रशांत कुमार का महत्त्वपूर्ण स्थान है। एक ओर जहाँ वे एक सेवाव्रती डॉक्टर हैं, वहीं दूसरी ओर अन्य पात्रों की तरह यौन-भावना के भी शिकार होते हैं। गांव के तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद की पुत्री कमला का वे इलाज करते हैं। प्रतिदिन देखने और दवा देने से परिचय और प्रेम-सबंध बढ़कर शारीरिक संबंध में परिणत होता है। कमला गर्भवती होती है। उसके पुत्र होता है। अंत में प्रशांत और कमला के विवाह के साथ कथानक समाप्त होता है।

'मैला आंचल' आंचलिक उपन्यास है। इसके प्रत्येक पात्र का आंचल मैला है। अत: इस मैले आंचल में रहकर डॉक्टर प्रशात भी बेदाग नहीं रह सकता। वस्तुत: उसके चरित्र के रूप में भारतीय साहित्य के आदर्श नायक को खोज नहीं की जा सकती। मैला आचल के अनुरूप उनका चरित्र-चित्रण यथार्थवादी है। यदि कथानक में नायक और नायिका की खोज करनी है, तो डॉक्टर प्रशांत निश्चय ही नायक का पद प्राप्त करते हैं और कमली को नायिका का स्थान दिया जा सकता है।

डॉ. प्रशांत की जाति का कोई पता नहीं है। उनको उपाध्याय जी ने काशी नदी में पाया था। प्रशांत के जीवन के संबध में निम्नलिखित कहानी सुनी जाती है-

''प्रशांत अज्ञात कुलशील है। उसकी मां ने एक मिट्टी की हांडी में डालकर बाढ़ से उमड़ती कोशी मैया की गोद में उसे सौंप दिया था। नेपाल के प्रसिद्ध उपाध्याय परिवार ने नेपाल सरकार द्वारा निष्कासित होकर, उन दिनों सहरसा अंचल में 'आदर्श आश्रम' की स्थापना की थी। एक दिन उपाध्याय जी बाढ़-पीड़ितों की सहायता के लिए रिलीफ की नाव लेकर निकले। झाऊ की झाड़ी के पास एक मिट्टी की हांडी देखी-नयी हांडी। उनकी स्त्री को कौतूहल हुआ। जरा देखो न, उस हांडी में क्या है? नाव झाड़ी के पास पहुँची। पानी की हिलोर से हांडी हिली और उससे एक ढोढ़ा सांप गर्दन निकालकर 'फों-फों' करने लगा। सांप धीरे-धीरे पानी में उतर गया और हांडी से नवजात शिशु के रोने की आवाज आयी, मानो मां ने थपकी देना बंद कर दिया, बस यही, उनके जन्म की कथा है। जिसे हर आदमी अपने ढंग से सुनाता है।''

'आदर्श आश्रम' की एक दुखिया युवती अपने इकलौते पुत्र की तरह प्रशांत का पालन-पोषण करती है। प्रशांत उपाध्याय परिवार के सदस्य है। प्रशांत पर उपाध्याय परिवार का पूरा प्रभाव पड़ता है। 'हिन्दू-विश्वविद्यालय' से आई.

एस.सी. पास करने के पश्चात् पटना मेडिकल कॉलेज में प्रशांत दाखिल होते हैं। डॉक्टरी पास करने के पश्चात् जब प्रशांत हाउस सर्जन का काम कर रहा था, सन् 1942 में देश-व्यापी आदोलन छिड़ जाता है। उपाध्याय परिवार के साथ में प्रशांत भी गिरफ्तार होता है। जेल में वह विभिन्न राजनैतिक दलों और कार्यकर्ताओं के संपर्क में आता है। सन् 1946 ई. में काग्रेसी मंत्रिमण्डल का गठन होता है। सरकार प्रशांत को स्कॉलरशिप देकर विदेश भेजना चाहती है। परंतु वह पूर्णिया के पूर्वी अचल में, जहाँ मलेरिया और कालाआजार प्रतिवर्ष मृत्यु की बाढ़ ले आते हैं, वहाँ मलेरिया सेंटर पर जाने का संकल्प करता है। प्रशात की नियुक्ति मेरीगंज के मलेरिया सेंटर पर हो जाती है। उसकी सहपाठिन ममता उसे विदा करती है।

उपन्यास के आधार पर उसके चरित्र को निम्नलिखित विशेषताएँ हैं -

1. जनसेवक- मेरीगंज में डॉ. प्रशांत के चरित्र का विकास एक सच्चे जनसेवक के रूप में होता है। वह मलेरिया सेंटर पर बड़ी लगन से जनता की सेवा में लग जाता है। अपनी सहपाठिन ममता को पत्र में वह लिखता है-

'' काम शुरू कर दिया है। सुबह सात बजे से ही रोगियों की भीड़ लग जाती है। अभी जनरल सर्वे कर रहा हूँ, खून लेकर परीक्षा कर रहा हूँ।''

तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद की युवा पुत्री कमली बीमार है। उसे बेहोशी के दौरे पड़ते है। प्रशांत उसका इलाज शुरू कर देता है और प्राय: प्रतिदिन उसे देखने जाता है। वह उसे मीठी दवा ही नहीं देता, अपितु अपने पोर्टबल रेडियो से उसके दिमाग को झकझोर कर दूसरी ओर करने की चेष्टा करता है।

2. प्रकृति-प्रेमी- डॉ. प्रशांत जन-कल्याण करना चाहता है। वह मनुष्य के जीवन को क्षय करने वाले रोगो के मूल का पता लगाकर नई दवा का आविष्कार करना चाहता है। वह गांव की अपूर्व प्रकृति को देखकर मुग्ध है। वह देखता है कि शस्य श्यामला भारतमाता ग्राम ही में निवास करती है-

''भारतमाता ग्रामवासिनी।

खेतों में फैला है श्यामल।

धूल भरा मैला-सा आंचल।''

ग्राम-परिवेश का सूक्ष्म अध्ययनकर्ता- डॉ. प्रशांत अपने पास के पंद्रह ग्रामों का अध्ययन करता है। उसे इंसान भयातुर दिखाई पड़ते हैं। बीमार और निराश लोगों की आंखों की भाषा को वह समझता है। उसे ग्रामों में बेहद दयनीयता और दरिद्रता का निवास मिलता है। किशोर-किशोरियों और युवतियों के कुम्हलाए चेहरे दिखते हैं।

4. प्रणय भाव-डॉ. प्रशांत का प्रणय-संबंध कमली से बढ़ता जाता है। होली आती है। हुड़दंग में वह अबीर की पूरी झोली कमली पर उलट देता है। कमली के सिर, मुंह गालों और नाक पर लाल अबीर बिखर जाता है। रेणु जी लिखते है- ***''डॉक्टर की जिंदगी का एक नया अध्याय शुरू हुआ है। उसने प्रेम, प्यार और स्नेह का बायोलाजी के सिद्धांतों से ही हमेशा मापने की कोशिश की थी। वह हंसकर कहा करता था: ''दिल नाम की कोई चीज आदमी के शरीर में है, इसे नहीं मालूम। पता नहीं आदमी 'लंग्स' को दिल कहता है, या 'हार्ट'। जो भी हो, 'हार्ट', 'लंग्स' या 'लीवर' का प्रेम से कोई संबंध नहीं है... अब वह मानने को तैयार है कि आदमी का दिल होता है। शरीर को चीर-फाड़कर हम जिसे नहीं पा सकते। वह 'हार्ट' नहीं, वह अगम, अगोचर जैसी चीज है, जिसमें दर्द होता है। लेकिन जिसकी दवा ऐड्रिलिन नहीं उस दर्द को मिटा दे। आदमी जानवर हो जाए।... दिल वह मंदिर है जिसमें आदमी के अंदर का देवता वास करता है।''***

5. रोमांटिक व परिश्रमी- डॉ. प्रशांत किसी को दुलार भरी थपकियों के सहारे सो जाना चाहता है। वह चाहता है कि गहरी नींद में सो जाए। परतु जीवन में कभी विश्राम नहीं मिला। वह दिन-रात एक करके मलेरिया, हैजा और कालाजार के उन्मूलन में लगा हुआ है।

6. गांव की मिट्टी का मोह– डॉक्टर प्रशांत को गांव की मिट्‌टी का मोह सवार हो जाता है। उसे लगता है, मानो वह युग-युग से इस धरती को पहचानता है। यह अपनी मिट्टी है। यह 'आम से लदे पेड़ों को देखने से पहले उसकी आंखें इंसान के उन टिकोलों पर पड़ती है जिन्हें आमों की को सूखी गुठलियों के सूले गूदे की रोटी पर जिंदा रहना है. .. और ऐसे इन्सान हैं? भूखे अतृप्त इन्सानों की आत्मा कभी भ्रष्ट न हो या कभी विद्रोह न करे। ऐसी आशा करना ही बेवकूफी है। कफ डॉक्टर यहाँ की गरीबी और बेबसी देखकर आश्चर्यचकित होता है। से जकड़े हुए दोनों फेफड़े, ओड़ने को वस्त्र नहीं, सोने को चटाई नहीं, पुआल भी नहीं। 'भीगी हुई धरती पर लेटा अमोनिया का रोगी मरता नहीं है जी जाता है।... कैसे?''

एक तो आफत में जान फंस गई है। कांग्रेस का भी कोई काम नहीं कर सकता हूँ... उधर कालीचरण कांग्रेस के मेंबरों को भी सोशलिस्ट बना रहा है।''

बालदेव से कपड़े की पर्ची का काम छीन लिया जाता है। ***....शायद उनका बिलेक कपड़ा था। पाप कितने दिनों तक छिपेगा।'***

बलदेव के लिए कोई काम नही रहता।

4. मठाधीश- बालदेव कोठारिन लछमी' के साथ मठ से अलग हो जाता है। बांस-फूस के तीन गलों का दूसरा मठ बन जाता है। स्वयं बलदेव नए मठ का मठाधीश बन जाता है। अब वह बघ्घी में तान से निकलता है। बालदेव में बहुत बड़ा परिवर्तन आ जाता है-

''बालदेव अब कितने साफ-सुथरे रहते हैं। बगुला के पंखों की तरह खादी की लुंगी और मेर्जई दप-दप करते हैं। देह भी थोड़ा साफ हो गया है। लछमी अपने हाथों से सेवा करती है।''

5. संदेहशील- बालदेव रामकिसुंन आश्रम में लौटकर आते हैं। वे लछमी के पास काशी के एक विद्यार्थी को देखते हैं। वे सोचते हैं कि उनकी अनुपस्थिति में वह घर पर क्यों आया। क्योंकि लोग क्या सोचते होंगे? विद्यार्थी को देखकर बलदेव लछमी पर बात-बात में बिगड़ रहे थे। लछमी के उत्तर देने पर बलदेव तमककर कह देता हैं- **''हम तुम्हारे पालतू कुत्ता नहीं। हम अभी चन्ननपट्टी चले जायेंगे, अभी।''**

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि, चन्ननपट्टी का बलदेव मेरीगंज में यादव टोली में आकर रहता है। वह अन्य नेताओं की तरह ही स्वार्थलिप्त है। वह, भाषण खूब झाड़ लेता है। उसके द्वारा भ्रष्टाचार को भी बढ़ावा मिलता है। कपड़े के राशन की पर्चियां-वह अपने ही लोगों को देता है। मठ की कोठारिन लछमी से उसका यौन-संबंध स्थापित होता है, और वह लछमी के साथ अलग रहने लगता है। इस प्रकार वह कथानक में मैला आंचल का एक बड़ा दाग है।

- **कालीचरण - कालीचरण के चरित्र की विशेषताएं**

उत्तर-कालीचरण यादव टोली का प्रमुख व शक्तिशाली युवक है। गांव में उसका दबदबा है। उससे सभी डरते हैं। वह हर समय लड़ने-मरने को तैयार रहता है। गांव में जो बलवा होता है, उसमें वह जेल भी जाता है। चर्खा सेन्टर की मंगला देवी से उसका यौन सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। बीमार-दशा में वह उसे अपने घर ले जाता है और इलाज करता है। उपन्यास के आधार पर उसके चरित्र की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं-

1. जोशीला जवान-कालीचरण जोश और क्रोध में आकर अपना होश खो देता है। बलदेव उसे समझाते हुए कहते है-

''कालीचरण तुम बहुत बहादुर नौजवान हो, लेकिन जोश में होश भी रखना चाहिए।''

कालीचरण सोशलिस्ट पार्टी का नेता है। वह पार्टी के बारे में कांग्रेसी वासुदेव से कहता है

''यही पार्टी असली पार्टी है, गरम पार्टी है। किरान्तीदल का नाम नहीं सुना था? बम फोड़ दिया फटाक से मस्ताना भगतसिंह। यह गाना नहीं सुने हो। वही पार्टी है। इसमें कोई लीडर नहीं, सभी साथी हैं, सभी लीडर

हैं। सुना नहीं। हिंसाबात को बुरजुआ लोग बोलता है। बलदेव जी तो बुरजुआ है। पूँजीवादी है। इस किताब में सब कुछ लिखा हुआ है। बुरजुआ, बेटी बुरजुआ पूँजीवाद, पूँजीपति, जालिम जमींदार कमाने वाला स्वापेसा इसके चलते जो कुछ भी है। अब बलदेव जी की लीडरी नहीं चलेगी। हर समय? हिंसाबात कुछ करो तो बस अनसन। कपड़ा की मेम्बरी किसी तरह मिल जाय, तब देखना।

2. अच्छा वक्ता–कालीचरण पक्का सोशलिस्ट पार्टी का नेता है। व्याख्यान देने में पटु हैं। युगों से पोड़ित, दलित और उपेक्षित लागों को कालीचरण की बात बड़ी अच्छी लगती है–

''मैं आप लोगों के दिल में आग लगाना चाहता हूँ। सोये हुओं को जगाना चाहता हूँ। सोशलिस्ट पार्टी आपकी पार्टी है। सोशलिस्ट पार्टी चाहती है कि आप अपने हकों को पहचाने। आप भी आदमी हैं। आपको आदमी का सभी हक मिलना चाहिए। मैं आपको मीठी-मीठी बातो में भुलाना नहीं चाहता। वह कांग्रेस का काम है। मैं आग लगाना चाहता हूँ।''

3. रंगीन स्वभाव–कालीचरण पक्का सोशलिस्ट लीडर है। कालीचरण बहादुर होने के साथ में रंगीन स्वभाव का भी है। होली का हुकूद निकलता है। इसमें कालीचरण का दल बहुत बड़ा है गांव के छोटे-छोटे दल भी कालीचरण के दल में मिल गए हैं। कालीचरण डॉ. प्रशान्त का सहायक बन गया। वह और उसका दल एक-एक आदमी को पकड़कर उसको सुई लगवाता है।

4. प्रेमी हृदय–कालीचरण एक प्रेमी हृदय व्यक्ति है। वह मंगला देवी से प्रेम करता है। मंगला देवी चर्खा सेन्टर में है। व बीमार पड़ जाती हैं। कालीचरण उसको यादव टोली के कीर्तन के घर में ले आता है। कीर्तन-घर में ही सोशलिस्ट पार्टी का ऑफिस है। निम्नलिखित कथोपकथन मंगला देवी और कालीचरण के प्रणयाकर्षण को प्रकट कर देता है।

''दवा पी लीजिए।''

''नहीं पिऊंगी''

''पी लीजिए मास्टरनी जी। दवा''

''काली बाबू, एक बात कहूँ?''

''कहिए''

''आप मुझे मास्टरनी जी न कहिए।''

''तब क्या कहूँ?''

''क्या मेरा नाम नहीं है?''

''मंगला देवी''

''नहीं''

''तो?''

''सिर्फ मंगला।''

''दवा पी लीजिए।''

''मंगला कहिए।''

''मंगला''

कालीचरण का व्रत टूट गया। उसके पहलवान गुरू ने कहा था- ***''पट्ठे जब तक अखाड़े की मिट्टी देह में पूरी तरह रचे नहीं, औरतों से पांच हाथ दूर रहना।''***

पांच हाथ दूर रहकर मंगला देवी की सेवा नहीं की जा सकती थी। बिछावन और कपड़े बदलते समय देह पोंछ देने के समय कालीचरण को गुरूजी की बात याद आ जाती थी परन्तु वह विवश था। सैनिक जी की स्त्री के व्यवहार से क्षुब्ध होकर कालीचरण मंगला के विषय में सोचता है।

''मंगला देवी भी तो औरत ही है। कहाँ मंगला और कहाँ यह भूतनी। गले की आवाज एकदम खिखिर (लोमड़ी) की तरह है। खेंक-खेंक बातें करती है तो लगता है मानो दांत काटने के लिए दौड़ रहा है। शायद यह भी कोई रोग ही है।''

4. सोशलिस्ट- कालीचरण पक्का सोशलिस्ट है। वह कांग्रेस को अमीरों, पूँजीपतियों और जमीदारों की पार्टी कहता है। वह 'लाल पताका' अखबार में छपी हुई खबर को सही मानता है। बावनदास कहता है कि कांग्रेसी सरकार ने जमीदारी प्रथा को खत्म कर दिया। इस पर वह बावनदास को उत्तर देता है:

''जब तक 'लाल पताका' अखबार में खबर छपी नहीं हो, इस पर विश्वास मत करो। कामरेड! यह सब कांग्रेस आई है। खैर, मैं कल ही सेक्रेटरी साहब से पूछ आता हूँ। तुम लोगों ने मेम्बरी का पैसा जमा नहीं किया आफिस में। सब कामरेड को खबर दे दो। इस बार आखिरी तारीख है, इसके बाद 'लाल पताका' में नाम निकल जाएगा।''

कालीचरण के नेतृत्व में सोशलिस्ट पार्टी का विशाल जुलूस निकलता है। डाकू चलित्तर को आश्रय देने का अपराध उस पर लगता है। इस पर उसे पार्टी की बदनामी होने के भय से ग्लानि होती है वह सोचता है:

''काली को जेल का डर नहीं, पार्टी की कितनी बड़ी बदनामी हुई। अरे 'लाल पताका के बड़े लीडर लोग कैसे मुंह दिखलायेंगे? सब चौपट कर दिया।''

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि कालीचरण यादव टोली का एक बलिष्ठ युवक है। विचारधारा से वह समाजवादी है। वह सोशलिस्ट आन्दोलनों में भाग लेता है और कांग्रेस आई की आलोचना करता है। वह सहृदय दयालु और प्रेमी भी है। जैसा कि मंगला देवी के प्रति उसके व्यवहार से प्रकट है। वह अंचल का एक महत्वपूर्ण युवक है।

- **विश्वनाथ प्रसाद के चरित्र की विशेषताएं**

उत्तर-तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद कथानक की नायिका कमली के पिता हैं। वे बीमार कमली का इलाज मलेरिया सेन्टर के डॉ. प्रशान्त कुमार से कराते हैं। डॉ. प्रशान्त से शारीरिक सम्बन्ध हो जाने पर कमली गर्भवती हो जाती है, परन्तु अन्त में उनके चरित्र में परिवर्तन होता है। वे डॉ. प्रशान्त को जमाता के रूप में स्वीकार कर लेते हैं और डॉ. प्रशान्त के प्रभाव से किसानों की छीनी हुई भूमि में से प्रत्येक किसान को पांच बीघा भूमि लौटा देते है।

उपन्यास के आधार पर उनके चरित्र की निम्नलिखित विशेषताएँ प्रकट होती हैं-

1. परिवर्तनशील पात्र- विश्वनाथ प्रसाद राजा पारबंगा की तरफ से जष्ठमीदार नियुक्त है। जष्ठमीदार के रूप में उनका चरित्र, परिवर्तनशील है। अपने प्रभाव से उन्होंने काफी जमींदारी भी बढ़ा ली है। इस प्रकार वे एक जमींदार भी हैं। उनके रूप में उपन्यासकार ने जमींदारों पर किसानों का शोषण दिखाकर और फिर अन्त में भूमि-वितरण आन्दोलन के अन्तर्गत भूमिहीनो को भूमि वितरण दिखाया है। विश्वनाथ प्रसाद की स्थिति आलोच्य उपन्यास में जमींदारी समाप्त होने का संकेत देती है।

2. चालाक - अन्य जमींदारों की तरह विश्वनाथ प्रसाद भी साहबों को डाली देकर खुश करके अपना उल्लू सीधा करते हैं और डाली का खर्चा भी गरीब जनता से वसूल करते हैं

''तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद एक सेर घी, पांच सेर बासमती चावल और एक खसी लेकर डरते हुए मलेटरी वालों को डाली पहुंचाने चले। विरंची को साथ ले लिया। बोले-हिसाब लगाकर देख लो. पूरे पचास रुपये का सामान है। यह रुपया एक हफ्ता के अन्दर ही अपने टोले और लोबिन के टीले से वसूल कर जमा कर देना।''

साहब के सामने विश्वनाथ प्रसाद ठाकुर रामकिरपाल सिंह से बाजी मार लेते हैं। साहब उनकी सहायता करने का निर्देश देते है।

3. वात्सल्यमय पिता-वस्तुत: तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद के चरित्र की सर्वप्रमुख विशेषता यही है कि वे वात्सल्यमय पिता है। उनकी पुत्री कमली बीमार रहती है। वे उसे घर पर दिखाने क लिए डॉक्टर प्रशान्त को ले जाते हैं। कमली ही उनकी लड़की है और लड़का भी। वे उसका बड़ा ध्यान रखते हैं। डॉक्टर प्रशान्त के विश्वनाथ प्रसाद के यहाँ प्रवंश होने से विश्वनाथ प्रसाद की कथा कमली के कारण विकसित होने लगतो है। विश्वनाथ प्रसाद को जब कमली के गर्भ रह जाने का पता लगता है. तो उनकी हालत बड़ी दयनीय हो जाती है। वे घर से बाहर निकलना बन्द कर देते हैं। कमली ने अपने पत्र में प्रशान्त को लिखा है-**''बाबूजी पागल हो गये है, न जाने कब क्या हो जाय।''**

प्रशान्त के घर आने पर वे उस पर बन्दूक तान लेते हैं और अन्त में डॉ. प्रशान्त को बाँहों में भरकर रो पड़ते हैं- **''मेरा बेटा! बाबू!.... मेरा बेटा।''**

कथानक के अन्त में विश्वनाथ प्रसाद के चरित्र में बहुत बड़ा परिवर्तन उपस्थित होता है। वे कमरे से बाहर आकर कहते हैं।

''सुमरित दास! लोगों से कह दो... हर एक परिवार को पांच बीघा की दर से जमीन मैं लौटा दूंगा। सांझ पड़ते-पड़ते सब कागज-पत्तर ठीक कर लेता हूँ... और सन्थाल टोली में जाकर कहो-वे लोग भी आकर रसीद ले जायें। एक-एक पैसा सलामी या नजराना, कुछ भी नहीं! अरे मैं क्यों दूंगा? दे रहा है नया मालिक! मालिक साहब का हुक्म है, सुनते हो नहीं। रो रहा है वह। वह हुक्म दे रहा है। लौटा दो। दे दो, खेलावन को उसकी जमीन का सब धान दे दो।'' इस प्रकार उनके द्वारा भूमि-वितरण कराकर लेखक ने जमींदारी प्रथा की समाप्ति का संदेश दिया है।

4. प्रभावशाली जमींदार- विश्वनाथ प्रसाद को रैयतों पर विशेष जोर जुल्म करने की जरूरत नहीं पड़ी। उनके पूर्वजों ने रैयतों के दिल और दिमाग पर तहसीलदारी की ऐसी धाक जमा रखी थी कि उन्हें विशेष कुछ नहीं करना पड़ता था। तहसीलदार साहब डॉक्टर प्रशान्त का प्रवेश शुभ मानते हैं। वे सोचते है- **''डॉक्टर जब से उस परिवार में घुला-मिला है, रोज अलाये-बलाये की आमदनी होती रहती है जिस बात से सारे गाँव को नुकसान हुआ, उसमें भी नफा ही रहा तहसीलदार को। मुकदमे में मुल्ले फंस गये और इतना बड़ा सेशन केस दूसरों के सिर पर ही खेप लिया। अपने घर से तो एक पैसा गया की नहीं ऊपर से पांच हजार के करीब फायदा ही हुआ। खेलाबन, रामकिरपाल सिंह वगैरह की जमीन मिली तो मुफ्त में ही। कमला ठीक कहती है-डॉ. जिन्न है।''**

स्वयं आकलन हेतु प्रश्न

प्र. 1 मैला आंचल उपन्यास में बिहार के किस जिले का वर्णन है।

प्र. 2 विश्वनाथ किस उपन्यास का पात्र है।

21.4 सारांश

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि डॉ. प्रशांत जन कल्याण करना चाहता है। वह मनुष्य के जीवन को क्षय रोग से बचाना चाहता है। इस कार्य को पूर्ण करने के लिए डॉ. प्रशांत पंद्रह गांव का अध्ययन करता है। डॉ. प्रशांत ग्रामीण जीवन से जुड़े हुए व्यक्ति है। गांव के लोगों दुख-दर्द को वे अपना दुख-दर्द समझते हैं।

21.5 कठिन शब्दावली

खतनी - परिश्रम

बावरी - पगली

वास - निवास

21.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

प्र. 1 उ. - पूर्णिया जिला

प्र. 2 उ. - मैला आंचल

21.7 संदर्भित पुस्तकें

फणीश्वरनाथ रेणु, मैला आंचल

21.8 सात्रिक प्रश्न

प्र. 1 डॉ. प्रशांत की चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

प्र. 2 विश्वनाथ के चरित्र चित्रण पर प्रकाश डालिए।

*****

इकाई–22
मैला आंचल उपन्यास का व्याख्या भाग

संरचना

22.1 भूमिका
22.2 उद्देश्य
22.3 मैला आंचल उपन्यास का व्याख्या भाग
स्वयं आकलन प्रश्न
22.4 सारांश
22.5 कठिन शब्दावली
22.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर
22.7 संदर्भित पुस्तकें
22.8 सात्रिक प्रश्न

इकाई-22
मैला आंचल उपन्यास का व्याख्या भाग

22.1 भूमिका

इकाई इक्कीस में हमने मैला आंचल उपन्यास के पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं का अध्ययन किया। इकाई बाईस में हम मैला आंचल उपन्यास की व्याख्या भाग का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

22.2 उद्देश्य

इकाई बाईस का अध्ययन करने पश्चात हम यह जानने में सक्षम होंगे कि -

1. मैला आंचल उपन्यास के व्याख्या भाग का अध्ययन करेंगे।
2. मैला आंचल उपन्यास के प्रसंग का अध्ययन करेंगे।

22.3 मैला आंचल उपन्यास का व्याख्या भाग

यद्यपि 1942 के जन आन्दोलन के समय इस गांव में न तो फौजियों का कोई उत्पात हुआ था और न आन्दोलन की लहर इस इस गांव तक पहुंच पायी थी, किन्तु जिले भर की घटनाओं की खबर अफवाहों के रूप में यहाँ तक जरूर पहुंची थी। मोलगाही टीशन पर गोरा सिपाही एक मोदी की बेटी को उठाकर ले गये। इसी को लेकर सिख और गोरे सिपाहियों में लड़ाई हो गयी। गोली चल गयी। ढोलबाजा में पूरे गाँव को घेरकर आग लगा दी गई एक बच्चा भी बचकर नहीं निकल सका। मुसहरू ससुर ने अपनी आँखों में देखा था-ठीक आग में भूनी गयी मछलियों की तरह लोगों की लाशें महीनों पड़ी रही। कौआ भी नहीं खा सकता था। मलेटरी का पहरा था, मुसहरू का ससुर का भतीजा फारबिस साहब का खानसामा है। वह झूठ बोलेगा? पूरे चार साल के बाद अब इस गांव की बारी आई है। दुहाई माँ काली! दुहाई बाबा लरसिंह!

शब्दार्थ - **टीशन** - स्टेशन। **मिलिट्री** - मिलिट्री। **खानसामा** -रसाईया।

प्रसंग- प्रस्तुत गंद्यांश फणीश्वरनाथ रेणु द्वारा रचित 'मैला आंचल' से प्रथम खंड के पहले परिच्छेद से उद्धृत है। उपन्यास के आरंभ में ही लेखक ने परिचय देने की चेष्टा की है कि बिहार राज्य के पूर्णिया जिले के मेरीगंज नामक गांव में किसी प्रकार का उत्पात अब तक नहीं हुआ था। गांव में डिस्ट्रिक बोर्ड के लोग अस्पताल बनवाने के संबध में आते हैं और वे बहरा चेथरू को बुलाकर ले जाते हैं और साथ में लोबिनलाल की बाल्टी भी ले जाते हैं। गांव भर में यह अफवाह फैल जाती है कि मिलिट्री के लोगों ने बहरा चेथरू को गिरफतार कर लिया है। प्रस्तुत पंक्तियों में इस प्रसंग में गांव में फैली अफवाहों का चित्रण किया गया है।

व्याख्या - फणीश्वरनाथ 'रेणु' 'मैला आंचल' के कथा-क्षेत्र मेरीगंज का परिचय देते हुए लिखते हैं कि 1942 के जन-आदोलन के समय गाँव में न तो किसी प्रकार का आंदोलन हुआ और न ही फौजियों ने किसी प्रकार अत्याचार किया। आंदोलन के समय की जिले भर की खबरें गांव में केवल अफवाहों के रूप में आती रहती थी। उपन्यासकार यहां इस प्रकार की खबरों का सार बताते हैं। सन 1942 में एक समाचार आया था कि मोगलाही स्टेशन पर अंग्रेजी सिपाही एक मोदी की लड़की को उठाकर ले गए थे। इस घटना के परिणामस्वरूप सिंह और अंग्रेज सिपाहियों के बीच संघर्ष हुआ और गोली चला दी। आगे उपन्यासकार फौजियों के संबंध में एक अन्य अत्याचार की अफवाह को प्रस्तुत करते हैं। ढोल बाजा नामक स्थान पर पूरे गांव को सिपाहियों ने घेरकर आग लगा दी जिसके कारण सारा गांव नष्ट हो गया तथा सभी प्राणी जलकर भस्म हो गए थे। मूसहरू के ससुर का कहना है कि उसने अपनी आंखों से यह सारा दृश्य देखा था। उस दृश्य का वृतांत बताते हुए वह कहता है कि जिस प्रकार प्रकार की स्थिति आग में भुनी हुई मछलियों की हो जाती है वैसी ही भुनी और जली लाश कई माह तक पड़ी रही। मिलिट्री के सिपाही उन लाखों पर पहरा दे रहे

इसलिए कौए भी उन्हें नहीं रख सके। मुसहरू के ससुर का भतीजा फारबिस साहब (फॉरेस्ट आफिसर) का रसोइया है। इसलिए उसके झूठ बोलने का प्रश्न ही नहीं उठता। सन 1942 के चार वर्ष पश्चात अब मेरीगंज की बारी आई है। मिलिट्री के गांव में आने का अर्थ है अत्याचारों का आरंभ। इसलिए गांव वाले काली मां की तथा बाबा लरसिंह (नरसिंह) की दुहाई बोलते हैं।

विशेष -

1. सन् 1946 से उपन्यास की कथा का आरंभ होता है।
2. मेरीगंज में सन् 1942 में पूर्ण शांति रहने की सूचना मिलती है।
3. मेरीगंज में जन-आदोलन का कोई प्रभाव नहीं पड़ा था, केवल कुछ अफवाहें ही वहां तक पहुंच पाई थी।
4. मेरीगज के निवासी गोरे सिपाहियों के उत्पात की आशंका से भयभीत है।
5. रेणु ने आंचल विशेष को भाषा का प्रयोग किया है।

पूर्णिया जिले में ऐसे बहुत से गाँव और कस्बे हैं, जो आज भी अपने नामों पर नीलहे साहबों का बोझ ढो रहे हैं। वीरान जंगलों और मैदानों में नील कोठी के खण्डहर राही बटोहियों को आज भी नीलयुग की भूली हुई कहानियाँ याद दिला देते हैं......गौना करके नयी दुलहिन के साथ घर लौटता हुआ नौजवान अपने गाड़ीवान से कहता है- 'जरा यहाँ गाड़ी धीरे-धीरे हाँकना, कनियां साहेब की कोठी देखेगी। यही है मकै साहेब की कोठी। वहाँ है नील गहने का हौज।'

शब्दार्थ -नीलहे साहब - नीच का कार्य करने वाले साहब। **राही** - पथिक। **बटोहिए** - रास्ता चलते हुए। **कनिया** - दुलहन। **महने** - मथने। **वीरान** - सुनसान (एकान्त)।

प्रसंग - प्रस्तुत गद्यांश 'मैला आंचल' शीर्षक उपन्यास के प्रथम खंड के दूसरे परिच्छेद के आरंभ से लिया गया है। इस उपन्यास के रचयिता फणीश्वरनाथ रेणु प्रथम परिच्छेद में मेरीगंज का परिचय देते हुए यह बता चुके हैं कि यह गांव सन 1942 के जन आंदोलन से बिल्कुल भी प्रभावित नहीं हुआ था अब अब उसके चार वर्ष की पश्चात यहां मलेरिया सेंटर खुल रहा है। प्रस्तुत गंद्याश में उपन्यासकार नील-युग की याद दिलाते हैं।

व्याख्या - उपन्यासकार कहते हैं कि पूर्णिया जिले में ऐसे अनेक गाँव तथा कस्बे हैं, जिनके नाम आज भी गत वर्षो में नील का व्यापार करने वाले निलहे साहबों द्वारा रखे हुए ही चल रहे हैं। मेरीगंज भी ऐसा ही एक गाँव है। बीरान जंगलों में नीले साहबों की कोठियों के खंडहर आज भी विद्यमान है. जो रास्ते पर से गुजरते पथिकों को नीलयुग की याद दिला जाते हैं. अर्थात् उस युग की भूली-बिसरी कहानियों का स्मरण करा जाते हैं। इस संबध में वह एक उदाहरण देते हुए कहते हैं कि गौना करके लौटता हुआ कोई नौजवान गाड़ी वाले को मकै साहब की कोठी के खंडहरों के पास गाड़ी रोक देने के लिए कहता है, जिससे कि उसकी दुलहन नीलहे साहब की कोठी को देख सके। वह बड़े गर्व के साथ अपनी नव-ब्याहता पत्नी को संकेत से बताता है कि यह मकै साहब की कोठी है तथा दूर वहाँ नीले मथने का हौज है।

विशेष -

1. नीलयुग बीत चुका है परतु नीलहे साहबों द्वारा गाँवों के लिए गए नामकरण आज भी प्रचलित है।
2. मेरीगंज का नामकरण नीले के एक व्यापारी डब्ल्यू, जी. मार्टिन ने अपनी पत्नी मेरी के नाम पर किया था।
3. 'मकै साहब' मार्टिन के नाम का ही विकृत रूप है।
4. रेणु ने आँचल विशेष की भाषा का प्रयोग किया है।

पहले झगड़ा का सिरगनेस से दो ही औरतों से होता है। झगड़े के सिलसिले में एक एक कर पास पड़ोस की औरतों के प्रसंग आते-जाते हैं और झगड़े वालियों की संख्या बढ़ती जाती है। झगड़े से उनके काम काज में भी कोई बाधा नहीं पहुंचती है। काम के साथ-साथ झगड़ा भी चल रहा है। जब सारे गांव की औरतें झगड़ने लगती है, तब कोई किसी की बात नहीं सुनती, सब अपना-अपना चरखा ओंट लगती है...

प्रसंग- प्रस्तुत गद्यांश आंचलिक उपन्यास फणीश्वरनाथ रेणु के बहुचर्चित उपन्यास 'मैला आंचल' में उद्धृत है। आंचलिक उपन्यासों की यह विशेषता रहती है कि इसमें अंचल को केन्द्र में रखा जाता है। उपन्यास में पूर्णिया जिले को कथानक के रूप में लिया गया है। पूर्णया के गांव मेरीगंज से जुड़ी अनेक समस्याएं, खान-पान, रहन-सहन, जीवन-शैली आदि का चित्रण उपन्यास में किया गया है। प्रस्तुत पंक्तियों में ग्रामीण औरतों के स्वभाव को चित्रित किया गया है। गांव का अपना अलग वातावरण होता है। वहां के लोगों के अपने निजी स्वार्थ होते है और उनका आपस में व्यवहार उन लोगों की अपनी सोच पर आधारित होता है। यहां रेणु जी स्पष्ट करते हुए बताते हैं कि -

व्याख्या - जब गांव की औरतें आपस में लड़ती है तो। सबसे लड़ाई की शुरुआत दो औरतों से होती है। वे आपस में झगड़ा शुरु करती है। कारण कुछ भी हो सकता है। बातचीत में से ही लड़ाई का बिन्दु निकल आता है। जब दो औरतें झगड़ा आरम्भ करती हैं तो झगड़े धीरे-धीरे आस-पास की अन्य औरतों की चर्चा शुरू हो जाती हैं उन्हें भी लड़ाई विषय बनाया जाने लग जाता है। इस तरह आस-पड़ोस की औरते झगड़ने आती हैं तो लड़ने वाली औरतों की संख्या दो से अधिक हो जाती है और धीरे-धीरे बढ़ते विवाद में उनकी संख्या में भी वृद्धि होती जाती है। व्यापक स्तर पर झगड़ा होने पर भी उन ग्रामीण औरतों के काम करने में किसी प्रकार का व्यवधान नहीं आता है। उनका लड़ाई के साथ-साथ काम भी चलता रहता है। काम और झगड़ा साथ-साथ चलते हैं। काम और झगड़ा दोनों आपस में एक दूसरे के क्षेत्र में बाधक नहीं होते हैं। ऐसे धीरे-धीरे उपस्थित गांव की सभी स्त्रियां लड़ाई में भागीदार बन जाती हैं जब विवाद ज्यादा ही बढ़ जाता है। ऐसे में कोई स्त्री किसी अन्य स्त्री की बात सुनी ही नहीं। अपने काम में लगी रहती है।

विशेष - ग्रामीण स्त्रियों के स्वभाव को चित्रित किया गया है।

- गांव में स्त्रियों के बीच झगड़ा दो औरतों के कारण होता है परन्तु धीरे-धीरे औरतों की संख्या बढ़ती जाती है।
- औरतें काम और झगड़ा साथ-साथ करती हैं।
- 'सिरगनेज' शब्द वास्तव में 'श्री गणेश' है जिसे ग्रामीण परिवेश के कारण 'सिरगनेस' कहा गया है।

सोने के अनाज से भरे हुए, धरती के गुप्त भण्डार का उद्घाटन करने वालों पर धरती माता का कोप होना स्वाभाविक है। यही कारण है कि आज जमीन के मालिकों ने, जमी के व्यवस्थापकों ने और धरती के न्याय ने धरती पर इनका किसी किस्म का हक नहीं जमने दिया है। जिस जमीन पर उनके झोंपड़े हैं वह भी उनकी नहीं। हल में जुता हुआ बैल दिन भर खेत चास करता है, इसलिए बैलों को भी धरती का हकदार कबूल किया जाए? यह कैसी बात है?

प्रसंग- उपर्युक्त पंक्तियां हिन्दी साहित्य के प्रथम आंचलिक उपन्यास 'मैला आंचल' से ली गई हैं, जिसके लेखक फणीश्वरनाथ रेणु हैं। अंचल विशेष की अनेक विशेषताओं को प्रस्तुत करने में 'मैला आंचल' समर्थ है। मेरीगंज गांव के लोगों की जीवन से जुड़े विविध पक्षों रूपों को रेणुजी ने प्रस्तुत किया है। गांव के लोगों की दयनीय व मार्मिक स्थिति का हृदयगामी वर्णन इसमें मिलता है। इन पंक्तियों में रेणुजी ने किसान की दयनीय स्थिति का अंकन किया है। जोकि सालभर अथक परिश्रम करता है। उसे अपने जीवन में कुछ प्राप्त नहीं होता है। उसे दो वक्त की रोटी के लिए भी बहुत मेहनत करनी पड़ती है। उनका कहना है कि -

व्याख्या - प्रकृति हमेशा असहाय को ही प्रताड़ित करती है। जो किसान धरती के गुप्त खजाने का प्रकटीकरण करता है। यह गुप्त खजाना स्वर्ण रूपी अनाज है। किसान दिन रात मेहनत करके धूप-पसीने की परवाह किए बिना खेतों में काम करता है। उसे न भूख की चिंता होती है और न ही तपती हई धूप की। ऐसे निरीह व असहाय किसान

पर ही धरती अपना कोप दिखाती है। यह स्वाभाविक भी लगता है क्योंकि जो दबा हुआ होता है उसे और अधिक दबाया जाता है। शायद इसी वजह से जमीन मालिकों जमीन व्यवस्थापकों और धरती के अन्याय सभी ने धरती पर किसानों का किसी प्रकार का हक नहीं बनने दिया। गरीब किसान का उस धरती पर जरा भी हक नहीं होता है जिसके गर्भ से वह खजाने रूपी अन्न उगाते हैं। धरती के करीब होते हुए भी वे उससे दूर होते हैं। किसान के अन्याय की अभी सीमा नहीं है। जिन झोपड़ों में वह रहता उस टुकड़े भर जमीन पर भी उसका हक नहीं होता है। त्रासद स्थिति यह है कि हल में जो बैल जुते होते हैं और दिन भर खेत जोतते हैं इसलिए यह बैल भी धरती के देनदार बन जाते हैं। यह कितनी विचित्र बात हैं जो किसान अनेक लोगों को अन्न उपलब्ध करता है उसका धरती कोई सरोकार नहीं होता है। धरती के न्याय ने भी धरती पर उसका हक नहीं कायम होने दिया है। जो गरीब है उसके पास धरती के नाम पर कुछ नहीं है। समाज के ठेकेदारों ने ऐसी व्यवस्था बना ली है कि मेहनत से अनाज उगाने वाले खेत की धरती में किसान का कोई हिस्सा नहीं होता है।

विशेष-

- किसान की दयनीय स्थिति को चित्रित किया गया है।
- किसान मेहनत करके धरती में छिपे सोने रूपी अन्न को उगाता है।
- किसान का उस धरती पर कोई हक नहीं होता है।
- जिस धरती पर किसान के झोपड़े होते हैं, वह भी उसकी नहीं होती है।
- हल में जुता बैल भी धरती का हकदार होता है।
- किसान की बदहाल जिन्दगी का परिचय मिलता है।
- जमीन के व्यवस्थापकों और मालिकों ने किसान का धरती किसी प्रकार हक होने ही नहीं दिया है।
- भाषा स्वाभाविक व सहजता लिए हुए है परन्तु इसके द्वारा भी गंभीर विषय को प्रस्तुत किया गया है।

गरीब पीसे नहीं जाएंगे, गरीबों की भलाई होगी। एक पाटी रहने से काम नहीं होता हैं जब दलों में मुकाबला और हिड़िस होता है तो फायदा पब्लिक का ही होता है। उस बार रौतहट मेला में विदेसिया नाच वाला आया था। मन लगाकर न नाच करता था और न गाना ही अच्छी तरह गाता था। तीसरे दिन बलवाही नांच का भी एक दल आ गया। दोनों में मुकाबला हो गया। शाम ही से दोनों ने नाच शुरू किया, कितना गजल, कौवाली, खेमटा और दादरा गाया इसका ठिकाना नहीं। सूरज उगने तक दोनों बलवाले नाचते ही रहें तब मेला मनेजर बाबू ने दोनों दलों के लोगों को समझा-बुझाकर नाच बंद करवाया था।

प्रसंग - प्रस्तुत गद्यांश फणीश्वरनाथ रेणु द्वारा रचित इसी आंचलिक उपन्यास 'मैला आंचल' से लिया गया है। आंचलिक उपन्यास में अंचल विशेष का खोलकर प्रस्तुतीकरण किया जाता है। अंचल को नायक माना जाता है। उसकी सभी विशेषताओं को उपन्यास में वर्णित किया जाता है। सन्दर्भ यह है कि जो जोतरवीजी कह रहे हैं कि कांग्रेस और सोशलिस्ट पार्टी दोनों ही आपस में लड़ रहे हैं। गांव में कांग्रेस और सोशलिस्ट पार्टी का प्रभाव है। वह दोनों आपस में विचारधाराओं के अंतर के कारण परस्पर लड़ती है। वह गांव में अधिक से अधिक अपने मेम्बर बनाना चाहती हैं। इन दोनों पार्टियों के बीच आम गरीब जनता पिस रही है। इस स्थिति से फायदा लोगों उठाता हुए रेणु जी स्वीकार करते हैं कि-

व्याख्या - जब गांव में दो राजनीतिक पार्टियां आ जाएंगी। तो फिर गरीब लोगों की स्थिति सुधर सकती है। वह चक्की-के दो पाटों के बीच पिस नहीं पाएंगे, क्योंकि दोनों ही राजनीतिक दल गांव के लोगों को अपनी ओर खींचना चाहेंगे। ऐसे में गरीब का हित ही पूरा होगा। वह उन दो पार्टियों के बीच पिसेंगें नहीं बल्कि उनका तो भला हो जाएगा। यह दोनों ही पार्टियों उन्हें अपनी ओर आकर्षित करने के लिए प्रलोभन देंगी जिसमें गरीब की भलाई ही छिपी है। जब

दो पार्टियां आपस में मुकाबला या प्रतियोगिता करती हैं तो उसमें फायदा जनता का ही होता है। दो के झगड़े में हमेशा ही तीसरा फायदा उठाता है। जबकि लड़ने वाली राजनीतिक पार्टियां हों तो फिर उसमें जनता का हित कहीं अधिक हो जाता है। जबकि ये राजनीतिक दल स्वार्थ पूर्ति तो अपनी ही करना चाहते है। एक पूर्व घटित घटना की ओर संकेत करते हुए इस स्थिति को अधिक स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि जब रौतहट मेला में विदेसिया नाच वाले आये थे। वह ऊपरी तौर पर नाच-गाना करते थे। लोग न तो मन से नाच करते थे और न ही अच्छे ढंग से गाते ही थे। परन्तु जब तीन दिनों पश्चात् बलवा का नाच वाला दल गांव में आ जाता है तब अचानक स्थिति बदल जाती है। स्थित रेखाचित्र में बदलाव यह है कि दोनों गाने वाले दलों में मुकाबला शुरू हो जाता है। शाम होते ही दोनों दल नाच-गाना शुरू कर देते हैं। उन दोनों ही दलों ने बहुत-सी गजले कव्वाली, खेमटा और दादरा गाया, जिसका किसी कोई अन्दाजा नहीं है। अब मन न लगाकर नाचने गाने का प्रश्न ही नहीं उठता था। नाचने गाने में सुबह हो जाती थी और दोनों ही दल बिना विलम्ब के रात भर नाचते गाते थे ऐसी अवस्था में मेले के मैनेजर बाबू ने आकर स्थिति को संभालते हुए दोनों को समझाया और तब कहीं जाकर नाच-गाना बंद हुआ। जिस तरह नाच वाले मुकाबला या प्रतियोगिता होने पर अच्छे से अच्छा प्रदर्शन करना चाहते थे। तो उन राजनीतिक में भी तो प्रदर्शन का महत्त्व है। इसलिए गांव में दो पार्टिया होने से अच्छा ही परिणाम होगा क्योंकि इसी माध्यम से जनता की भलाई भी हो सकती है।

विशेष -

- गरीब को दो पाटों के बीच पिसते दर्शाया गया है।
- दो पार्टी के आने से गरीब जनता को भलाई हो सकती है।
- दो नाचने वाले गुट भी आपस में प्रतियोगिता की भावना रखते हैं।
- गांव में दो पार्टियों के होने से उनमें आपसी मुकाबला होगा।
- 'हिडिस' शब्द का अर्थ 'प्रतियोगिता' है।
- 'बलवाही नाच' का अभिप्राय बाउल सुर में गीत विषय गाकर नाचने वाला दल है।
- अंग्रेजी शब्द 'मैनेजर' को 'मनेजर' कहा गया है।
- भाषा सरल है।

भक्त और कवि के दृष्टि - बिन्दुओं में अन्तर अनिवार्य है। भक्त के निकट उसका इष्ट ही विश्व है। जो उसने देना उचित समझा उसे अपने तथा संसार के लिए सुखपूर्वक स्वीकार कर लेना ही भक्त की विशेषता है। इष्ट के दान का सम्बन्ध में नाप-तोल का विवेचन भक्ति को व्यवसाय का रूप दे देता है। पर कवि स्थिति इससे भिन्न है। उसके लिए लोग समष्टि हो इष्ट है, पर लोक के दान को निरीह भाव से अंगीकार कर लेना उसे अभीष्ट नहीं होता है। वह लोक निर्माण भी अपनी कल्पना के अनुरूप चाहता है।

प्रसंग- प्रस्तुत अवतरण महादेवी वर्मा द्वारा लिखित 'पथ के साथी' से लिया गया है। महादेवी छायावादी कविता के क्षेत्र में विशिष्ट स्थान रखती हैं। उन्होंने अपने जीवन से जुड़े अनेक व्यक्तियों के रेखाचित्र लिखे, जिन्हें उन्होंने अपनी स्मृतियों के आधार पर लिखा है। ये उनका संस्मरणात्मक रेखाचित्र है। 'पथ के साथी' में उन्होंने अपने सहयोगी साहित्यकारों के रेखाचित्र खींचे हैं। प्रस्तुत पंक्तियां मैथिलीशरण गुप्त के रेखाचित्र से ली गई है। यहां महादेवी ने भक्त और कवि की दृष्टि में विभेद करते हुए स्पष्ट किया है कि -

व्याख्या - भक्त और कवि की दृष्टियों में अन्तर होना अनिवार्य है। भक्त और कवि दोनों के लिए उनकी अपनी परिधि और सीमाएं होती हैं इसलिए भक्त और कवि दोनों के सोचने विचारने की भिन्न भिन्न दृष्टियां होती है। यह अन्तर आवश्यक भी है। भक्त के लिए उसका सर्वस्व इष्ट देव होता और तब है और उसकी दुनिया उसी के साथ होती हैं भक्त के लिए उसका ईश्वर ही उसका संसार है। उसका एकमात्र लक्ष्य ईश्वर करना का सान्निध्य चाहता है। जो ईश्वर

अपने भक्त को देता है। भक्त अपने लिए और सम्पूर्ण दृष्टि के लिए सहर्ष स्वीकार कर लेता है। यही भक्त की विशेषता है। भक्त के लिए ईश्वर द्वारा दिया प्रत्येक पदार्थ पूजनीय होता है। जो ईश्वर कुछ भी दे वह ईश्वर की कृपा समझ कर स्वीकार कर लेता है। इष्ट देव जो कुछ भी दान में देता है यदि भक्त उसका वस्तु का नाप तोल करता है तो यह भक्त के लिए अशोभनीय कृत्य है। वह दान व्यवसाय में बदल जाता है। लौकिक जगत में लेन देन व व्यापार की बात की जाती है। परन्तु कवि स्थिति भक्त से बिल्कुल भिन्न होती है। कवि के लिए लोक समाज ही उसका इष्ट व पूजनीय है। क्योंकि कवि का संसार लोक से ही जुड़ा होता है। कवि समाज में रहकर ही अनेक कृत्यों व अनुभूतियों से करता है। कवि की रचना के लिए विषय भी समाज में रहते हुए ही मिल पाता है। परन्तु यह भी सत्य है कि लोक या समाज उसे जो कुछ भी दे उसे गिरीह व दयनीय बनकर सहज स्वीकार करना भी उचित नहीं माना जा सकता है। कवि की सोच व्यापक होती है। वह समाज का निर्माण भी अपनी कल्पना के आधार पर ही करना चाहता है। अभिप्राय यह है कि कवि और भक्त दोनों का दृष्टिकोण लोक के प्रति भिन्न होता है। दोनों का अपना अलग संसार होता है जिसमें दोनों अपने अनुसार जीवन जीते हैं।

विशेष -

- भक्त और कवि की दृष्टि में भेद दर्शाया गया है।
- भक्त के लिए इष्ट देव प्रमुख है।
- इष्ट का दान भक्त सहर्ष स्वीकार करता है।
- इष्ट के दान को नाप - तोला नहीं जाना चाहिए, वरना वह व्यवसाय बन जाता है।
- लोक के दान को कवि गिरीह होकर स्वीकार नहीं कर सकता है।
- कवि अपनी कल्पना का लोक-निर्माण चाहता है।
- यहां भाषा सरल और बोधगम्य है।

परम्परा का पालन ही जब स्त्री का परम कर्तव्य समझा जाता था तब वे उसे तोड़ने की भूमिका बांधती है, चिर प्रचलित रूढ़ियों और चिरसंचित विश्वासों को आघात पहुंचाने वाली हलचलों को हम देखना सुनना नहीं चाहते। हम ऐसी हलचलों को अधर्म समझ कर उनके प्रति आंख मींच लेना उचित समझते हैं, किंतु ऐसा करने से काम नहीं चलता। वह हलचल और क्रान्ति हमें बरबस झकझोरती है और बिना होश में लाये नहीं छोड़ती।

प्रसंग - प्रस्तुत पंक्तियां महादेवी वर्मा द्वारा लिखित पहुंचाने वाली संस्मरणात्मक रेखाचित्र 'पथ के साथी' से ली गई हिन्दी साहित्य जगत में महादेवी जी कवयित्री के रूप में जानी जाती हैं। परन्तु उनका गद्य-साहित्य भी विशिष्ट है। उन्होंने समय-समय पर अपने जीवन में आए अनेक लोगों के चित्रों को रेखाचित्रों में चित्रित किया है। 'पथ के साथी' में भी उन्होंने साहित्यकारों की विषय के रूप में चुना है। इन सभी साहित्यकारों ने उन्हें किसी-न-किसी रूप में प्रभावित किया है। उपर्युक्त पक्तियां सुभद्रा कुमारी चौहान की रेखाचित्र से ली गई हैं। यहां महोदवी, सुमद्राकुमारी चौहान की विशेषता को बता रही है कि उन्होंने परम्परा को तोड़ा है। इस विषय में महादेवी कहती हैं कि

व्याख्या- नारी के साथ यह बात हमेशा जोड़ दी जाती है कि उसे परंपरा का निर्वाह करना है और यही उसका परम धर्म है। परन्तु सुभद्राकुमारी चौहान के साथ विपरीत होता है। जब भी उन्हें किसी परम्परा के निर्वाह के लिए कहा जाता था तो वे उस परम्परा का निर्वह नहीं कर पाती थी और उनकी भूमिका वहां उस परम्परा को तोड़ने की रहती थी। समाज में ऐसी व्यवस्था बन चुकी है कि जो हमारी पुरानी रूढ़ियां और विश्वास हैं, व्यक्ति को उनका अन्धानुकरण करना आवश्यक है। यदि कोई उसके विद्रोह में उठ खड़ा तो है तो समाज उन हरकतों और हलचलों को सहन नहीं कर पाता है। वह उन हलचलों को देखना व सुनना ही नहीं चाहता है। क्योंकि वह हलचलों रूढ़ियों और अंधविश्वासों के निर्वाह में बाधक बन जाती है परंतु यह उचित नहीं है कि जो हलचलें हो रही हैं उन्हें बिना सोचे-समझे अधर्म कर

दिया और उनके प्रति अवहेलना का रूख बनाया जाए उनसे आंख फेरना उचित नहीं है। समाज और रूढ़िवादी व्यक्ति की यह धारणा बन गई है कि जो व्यक्ति के चिर-संचित विश्वास और चिर प्रचलित रूढ़ियां हैं उन्हें आंख बंद कर स्वीकार करना चाहिए और कभी उनके विपरीत कोई आवाज उठे तो उसे भी अधर्म मानकर उससे भी आंख मूंद लेनी चाहिए परंतु आंखमींच कर हो रही हलचलों को अनदेखा कर देने से समस्या का समाधान नहीं हो सकता। यह कृत्य ठीक नहीं है। ऐसा करने से काम नहीं चल सकता। परंतु यह भी स्वीकार करना चाहिए कि जब समाज में इस प्रकार की हलचलें, विद्रोह या क्रांतिकारी की गूंज सुनाई देती है तो वह व्यक्ति को कहीं न कहीं प्रभावित अवश्य करती है और उसे बिना सचेत किए नहीं रहती है। अभिप्राय है कि जब रूढ़ियां या अंधविश्वासों के विद्रोह में आवाज उठती है तो यह भी सहज है कि वह समाज और व्यक्ति को हिला देती है।

स्वयं आकलन हेतु प्रश्न

प्र. 1 'परती परिकथा' किसकी रचना है ?

प्र. 2 'रेणु' जी का पूरा नाम लिखिए ?

22.4 सारांश

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि हिंदी साहित्य में आंचलिक उपन्यास लिखने का श्रेय सर्वप्रथम फणीश्वरनाथ रेणु जी को जाता है उनके द्वारा लिखित 'मैला आंचल' उपन्यास हिंदी का प्रथम आंचलिक उपन्यास है। यह वर्ष 1954 में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में बिहार के पूर्णिया जिला के मेरी गंज गांव को कथा का केंद्र बनाया गया है।

उपन्यास लेखने का प्रेम सर्वप्रथम लीकान्ध पेणु जी को जाता है। उनके द्वार होकर मिस आदत उपन्यास हिन्दी का प्रथम आचा एक अन्यास है। यह व उपन्यास वर्ष 1954 में प्राईज हुआ। उस उपमान अबिहार के पूर्णिया जिला के मेरीगंज गाँव की कथा के वेन्द्र बनाया गया है।

22.5 कठिन शब्दावली

मतवाला – मस्त

बायोलॉजी – जीव विज्ञान

पतिता – नीच

22.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

प्र. 1 उ. रेणु

प्र. 2 उ. फणीश्वर नाथ रेणु

22.7 संदर्भित पुस्तकें

फणीश्वरनाथ रेणु, मैला आंचल

22.8 सात्रिक प्रश्न

प्र. 1 मैला आंचल उपन्यास के तत्वों के आधार पर समीक्षा कीजिए।

प्र. 2 मैला आंचल उपन्यास के उद्देश्य को स्पष्ट कीजिए।

*****

समनुदेशन (ASSIGNMENT) हेतु प्रश्न

एम० ए० हिन्दी प्रथम सत्र

पेपर - III

हिन्दी नाटक एवं उपन्यास

MHIN-103

कुल अंक - 20

4 x 5 = 20

निर्देश : विद्यार्थी समनुदेशन (Assignment) के मुख्य पृष्ठ पर अपना नाम, माता-पिता का नाम, अनुक्रमांक/ पंजीकरण संख्या, मोबाईल नंबर पाठ्यक्रम का सम्पूर्ण विवरण साफ व स्पष्ट शब्दों में लिखें।

निम्नलिखित प्रश्नों में से चार प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

प्रश्न 1 'चन्द्रगुप्त' नाटक के आधार पर प्रसाद जी की नाट्यकला की विशेषताएं बताइए।

प्रश्न 2 'चन्द्रगुप्त' नाटक में नारी पात्रों का चरित्रांकन कीजिए।

प्रश्न 3 'अंधायुग' नाटक का मूल उद्देश्य क्या है? स्पष्ट करें।

प्रश्न 4 'गोदान भारतीय किसान का महाकाव्यात्मक उपन्यास है।' इस कथन के औचित्य पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न 5 'गोदान' में प्रेमचंद ने समाज की किन-किन समस्याओं को उठाया है ? स्पष्ट करे।

प्रश्न 6 मेला आँचल को आंचलिक उपन्यास की कसौटी पर कसकर सिद्ध करें कि क्या मैला ऑचल एक आंचलिक उपन्यास है ?

*****

एम.ए. हिन्दी
प्रथम सत्र

प्रश्न पत्र–3
कोर्स कोड : MNIN-103

हिन्दी नाटक एवं उपन्यास

पाठ 1 से 22

संशोधित : डॉ. ऊषा रानी

अन्तर्राष्ट्रीय दूरवर्ती शिक्षा एवं मुक्त–अध्ययन केन्द्र
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, ज्ञान पथ
समरहिल शिमला –171005

विषय सूची

क्र. सं.	पाठ	पृष्ठ संख्या
01.	हिन्दी नाटक का उद्‌भव एवं विकास	3
02	जयशंकर प्रसाद : जीवन एवं सृजित साहित्य	10
03	चन्द्रगुप्त नाटक का सार एवं उद्देश्य	16
04	चन्द्रगुप्त एक विवेचन	27
05	चन्द्रगुप्त नाटक के पात्रों का चरित्र-चित्रण	37
06	चन्द्रगुप्त नाटक का व्याख्या भाग	45
07	धर्मवीर भारती : जीवन एवं सृजित साहित्य	52
08	अंधायुग नाटक का सार एवं उद्देश्य	57
09	अंधायुग नाटक का समीक्षात्मक अध्ययन	66
10	अन्धायुग नाटक के पात्रों का चरित्र-चित्रण	77
11	अंधायुग नाटक का व्याख्या भाग	89
12	हिंदी उपन्यास का उद्‌भव एवं विकास	97
13.	प्रेमचंद : जीवन एवं सृजित साहित्य	103
14.	गोदान उपन्यास का सार एवं उद्देश्य	111
15	गोदान : समीक्षात्मक अध्ययन	119
16	गोदान उपन्यास के पात्रों का चरित्र-चित्रण	132
17	गोदान उपन्यास का व्याख्या भाग	144
18	फणीश्वरनाथ रेणु : जीवन एवं सृजित साहित्य	153
19	मैला आंचल उपन्यास का सार एवं उद्देश्य	158
20	मैला आंचल : एक अध्ययन	167
21	मैला आंचल उपन्यास के पात्रों का चरित्र चित्रण	180
22	मैला आंचल उपन्यास का व्याख्या भाग	188